Ph.D Thesis

काशीनाथ सिंह का रचना संसार

(KASHINATH SINGH KA RACHNA SANSAR)

Thesis
Submitted to

Cochin University of Science and Technology

For the award of the degree

Of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

HINDI

Under the Faculty of Humanities

By

अंजली कृष्णन.

ANJALI KRISHNAN.

Prof.Dr. K. VANAJA Prof.& Head of Department		Prof.Dr. N. MOHANAN Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN – 682022

SEPTEMBER 2015

Certificate

This is to certify that the research work presented in the thesis entitled "**KASHINATH SINGH KA RACHNA SANSAR" is** an authentic record of research work carried out by **ANJALI KRISHNAN** under my supervision at the Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, in partial fulfillment of the requirements for the degree of DOCTOR OF PHILOSOPHY in HINDI and that no part thereof has been included for the award of any other degrees. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the presynopsis seminar and recommended by the Doctoral Committee of the candidate has been incorporated in the thesis.

Dr. N. MOHANAN
Department of Hindi
Cochin University of
Science & Technology
Kochi – 682 022

Place :

Date :

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled "**KASHINATH SINGH KA RACHNA SANSAR"**is the bonafide record of the original work carried out by me under the supervision of**Dr. N. MOHANAN**, Professor, at the Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, and no part has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree.

ANJALI KRISNAN.
Department of Hindi
Cochin University of
Science & Technology
Kochi – 682 022

Place :

Date :

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
पहला अध्याय **समकालीन साहित्य और काशीनाथ सिंह** आधुनिकता – समकालीनता – समकालीन कथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ – सांप्रदायिकता – पारिस्थितिक सजगता – नवऔपनिवेशिक प्रतिरोध – स्त्री विमर्श – दलित चेतना – विस्थापन – वृद्ध विमर्श – लोकचेतना – संस्मरण साहित्य एक परिचय – काशीनाथ सिंह का व्यक्तित्व और कृतित्व – रूचि – अध्यापक काशीनाथ सिंह – लेखन कर्म और लोक जीवन – कहानीकार काशीनाथ सिंह – उपन्यासकार काशीनाथ सिंह – अपना मोर्चा – काशी का अस्सी – रेहन पर रग्घू – महुआचरित – उपसंहार – संस्मरण साहित्य – नाटककार – आलोचना – पुरस्कार – स्थान	
दूसरा अध्याय **काशीनाथ सिंह की कहानियाँ** कहानीकार काशीनाथ सिंह –सामाजिकता – जातिवाद – नारिचेतना – राजनीतिक चेतना –मध्यवर्गीय जीवन – संबंधों में आया बदलाव	
तीसरा अध्याय **उपन्यासकार काशीनाथ सिंह** अपना मोर्चा – काशी का अस्सी – रेहन पर रग्घू – महुआचरित – उपसंहार – सामाजिकता के विभिन्न आयाम – राजनीति – शिक्षा के स्थर पर – समकालीन राजनीति – बाबरी मस्जिद ध्वंस – जातिवाद – चुनाव – उपभोग संस्कृति – उपभोक्तावादी संस्कृति व् बाज़ारवाद – विज्ञापन – मीडिया – संबंधो में आये बदलाव – नारी – दलित विमर्श – अन्य समस्याओं का वर्णन	

चौथा अध्याय **काशीनाथ सिंह का संस्मरण साहित्य तथा अन्य रचनाएँ** संस्मरण साहित्य – स्वरूप एवं परिभाषा – काशीनाथ सिंह का संस्मरण साहित्य – याद हो की न याद हो – घर का जोगी जोगडा – आछे दिन पाछे गए – सामाजिक परिवेश – आर्थिक परिवेश – राजनीतिक परिवेश – साहित्यिक परिवेश – सांस्कृतिक परिवेश – सोद्देश्यता – नाटक – घोआस – आलोचना भी रचना हैं	
पाँचवाँ अध्याय **काशीनाथ सिंह की रचनाओं का संरचना पक्ष** कहानियों की शिल्पगत विशेषताएँ – शैली – किस्सागोई – नाटकीयता – आत्मकथात्मक – प्रतीकात्मक – स्थानीयता – भाषा उपन्यासों की संरचनात्मक विशेषता– शैली – समस्या का वर्णन – भाषा – काशीनाथ सिंह के संस्मरणों का विशेषताएँ –भाषा शिल्प– घोआस की संरचनात्मक विशेषताएँ – आलोचनात्मक लेखों की संरचना पक्ष	
उपसंहार	
संदर्भग्रंथ सूची	

प्राक्कथन

साहित्य का मूलभूत सरोकार जीवन से है| इस से विमुख होकर उसका कोई अस्तित्व नहीं| जब कोई रचना अपने समय और समाज की संवेदना को प्रस्तुत करती है| तब वह प्रासंगिक बनती है| जीवन से गहरे में सम्बंधित होने का कारण ही साहित्य में सामाजिक परिवर्तन के बहुआयामी संदर्भ अनावृत हो उठते है| साहित्यकार का सृजनात्मकता में समसामायिक परिस्थितियों का भूत बड़ा हाथ है| इसलिए कोई भी साहित्यकार समकालीन चेतना से कटकर साहित्य की सृष्टि नही कर सकता| क्योंकि साहित्य का उद्गम और विकास सामाजिक परिस्थितियों की दें है| अतः उसमें समकालीन जीवन यथार्थ की चेतना पूर्णतः जुडी रहती है|

सातवें दशक के बहुचर्चित कथाकार हैं डॉ. काशीनाथ सिंह उनकी रचनाएँ सामाजिक विसंगतियों की दस्तावेज है| उनकी रचनाएँ सामाजिक विसंगतियों की दस्तावेज हैं| उनकी रचना का उद्देश्य अपने समय के संकटों से मानवीयता को बचाना है| उनकी रचना प्रक्रिया की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने जो लिखा लगभग वो सब उनका भोग हुआ यथार्थ है| प्रेमचंद के बाद हिन्दी कहानी को एक नया मोड़ काशीनाथ ने दिया| नयी कहानी और अकहानी के द्वंद के संदर्भ में 1960 में इन्होंने लिखना प्रारंभ किया| इसलिए उनकी रचनाएँ अपने समय के सामाजिक सरोकारों को प्रामाणित करने वाली अवश्य रही हैं| उनकी रचनाओं के जरिए सामाजिक बदलाव के विविध आयानों पर प्रकाश डालने का मेरा छोटा सा प्रयत्न हैं यह शोध प्रबंध| मेरे शोध प्रबंध का विषय हैं “काशीनाथ सिंह की रचना

संसार"| प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय विस्तृत एवं नवीन हैं| अध्ययन की सुविधा के लिए मैंने इसे पाँच अध्यायों में विभक्त किया है|

पहला अध्याय हैं, समकालीन साहित्य और काशीनाथ सिंह| इस अध्याय में सबसे पहले आधुनिकता की चर्चा की गई है| आधुनिकता नयी मानसिकता हैं| मनुष्य की तार्किक संवेदना का दस्तावेज है आधुनिकता का साहित्य| आगे आधुनिकता और समकालीनता के आपसी संबंध को स्पस्ट करते हुए समकालीनता पर विचार किया गया है| इसके बाद समकालीनता और कथा साहित्य की चर्चा की गयी है| समकालीन प्रवृत्तियों एवं प्रमुख रचनाकारों का नातिदीर्ध परिचय भी दिया गया हैं| साथ ही काशीनाथ सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय भी दिया गया है|

दुसरा अध्याय हैं, काशीनाथ सिंह की कहानियों| इस अध्याय में उनकी कहानियों का विस्तृत विश्लेषण हैं| साठोत्तर संधर्भ में कहानी के क्षेत्र में उनका पर्दापण हुआ था| नई कहानी के अस्तित्ववादी माहोल से हिन्दी कहानी को अलग करके जनसाधारण के जीवन यथार्थ से जोड़ने में दत्तचित्त थे| लेकिन उन्होंने अपनी कथा यात्रा को कभी भी सांस्कृतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक विकास क्रम से कटकर प्रस्तुत नहीं किया है| आम आदमी के बीचों बीच सदा खड़े होने का कारण उन्हें कभी भी कथानक की तलाश करने की जरूरत नहीं पड़ी| इस अध्याय में काशीजी की कहानियों का प्रवृत्तगत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है|

तीसरा अध्याय है 'उपन्यासकार काशीनाथ सिंह'| कहानी साहित्य के सामने इस अध्याय में उपन्यासों का प्रवृत्तगत अध्ययन किया गया| जड पारम्परिक अवधारणाओंको चुनौती देना काशीजी का विशिष्ट गुण है| उन्होंने पाँच उपन्यासों का सृजन किया है| इनके

अध्ययन से यह स्पस्ट हो चुका हैं कि काशीजी प्रगतिशील दृष्टिकोण रखने वाले संधर्षशील रचनाकार हैं| उन्होंने अपनी रचनाओं के जरिए समाज में वर्तमान अमानवीय तत्वों के खिलाफ सृजनात्मक संधर्ष किया है| बाजारवाद, विज्ञापन, सांप्रदायिकता, नई अर्थ निति आदि के तहत जीने के लिए विवश जनता के जीवन यथार्थ का विस्तृत विश्लेषण इस अध्याय में किया गया है| वृद्धों की समस्या, दलित समस्या, नारी समस्या, सामाजिकता के विभिन्न आयाम आदि पर भी दृष्टि डाली गयी है|

चौथा अध्याय है 'काशीनाथ सिंह का संस्मरण साहित्य तथा अन्य रचनाएँ'| हिन्दी साहित्य में गद्य की शाखाओं का विकास विविध दिशाओं में हुआ हैं| बीसवीं शताब्दी के अंत तक हिन्दी साहित्य में गद्य के विविध रूप दृष्टिगोचर होता है| संस्मरण का संबंध स्मृति से है| इसलिए संस्मरण को स्मृतिचित्र नाम से भी संबोधित किया जाता है| संस्मरण शब्द का अर्थ है किसी बिती हुई वस्तु घटना या व्यक्ति का स्मरण और उन घटनाओं, स्मृतियों और व्यक्तियों पर पुनर्विचार| इस अध्याय में कतिपय आलोचकों के मतों के तहत संस्मरण साहित्य के स्वरुप एवं परिभाषा को निर्धारित किया है| बाद में युगीन परिवेशों के अनुसार संस्मरण साहित्य में अभिव्यक्त समस्याओं का विश्लेषण हैं| सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से इसका अध्ययन करने की कोशिश की गई है| आलोचना के क्षेत्र में उनका योगदान एक ही पुस्तक है 'आलोचना भी रचना हैं'| इस अध्याय में इस रचना का भी विश्लेष्णात्मक अध्ययन किया गया हैं| बाद में उनका एक मात्र असंगत नाटक 'घोआस' का अध्ययन प्रस्तुत है|

पांचवाँ अध्याय हैं 'काशीनाथ सिंह की रचनाओं का संरचना पक्ष'| इस अध्यय में काशीजी के सम्पूर्ण साहित्य की रचनात्मक शैली को अलग अलग विधाओं के तहत विश्लेषित

किया गया है| पहले कहानियों की शिल्पगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला हैं| कहानियों की भाषा पर भी विशेष रूप से चर्चा की है| उपन्यासों की रचनात्मक विशेषताओं के अध्ययन में समस्याओं के प्रस्तुतिकरण का तारीफ, पात्र परिकल्पना, परिवेश, भाषा, शिल्प, शैली आदि पर चर्चाकी जयी हैं| संस्मरणों की शिल्पगत विशेषताओं में किस शैली का प्रयोग किया है उसका विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया है| भाषागत विशेषताओं की ओर भी ध्यान दिया गया है| असंगत नाटक "घोआस" की संरचनात्मक विशेषताओं की चर्चा के उपरांत आलोचनात्मक लेखों की संरचनापक्ष पर भी विचार किया गया हैं|

उपसंहार में उपर्युक्त पाँचों अध्यायों में प्रस्तुत विचारों के परिप्रेक्ष्य में निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया हैं| अंत में संदर्भ ग्रंथ सूचि भी दी गयी है|

कोई भी कार्य स्वजनों के सहयोग एवं आशीर्वाद के बिना संपन्न नहीं हो सकता| काशीनाथ सिंह का रचना 'संसार' पर अध्ययन करते समय विषय संबंधी सुझाव देने तथा सामग्री उपलब्ध करने में गुरुजनों तथा मित्रों का महत्वपूर्ण सहयोग मुझे प्राप्त होता रहा है, साथ ही परिवार के सदस्यों क स्नेह, आशीर्वाद तथा समय-समय पर किए गए उत्साहवर्द्धक कार्य मेरी शक्ति एवं संबल बने| उन सबका आभार व्यक्त किए बिना आगे बढ जाना धृष्टता होगी|

प्रस्तुत शोधसम्बन्धी कठिनायों का निवारण करने में निर्देशक महोदय डॉ. एन. मोहनन ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है| इन्होने विषय चयन से लिकर कार्य की सम्पूर्णता तक अपनी गहरी रुचि दिखाई है, मैं उनके स्नेह एवं अमूल्य सहयोग को आभार के शब्दों की संकीर्णता में बाँध लेने का दुस्साहस नहीं कर पा रही हूँ|

प्राक्कथन

कोच्ची विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं मेरी डाक्टरल कमिटी के विशेषज्ञ डॉ. के. वनजा के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ|

हिन्दी विभाग के सभी अध्यापकों के सलाह एवं सहयोग के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ|

मैं उन समस्त विद्वानों के प्रति आभारी हूँ जिनकी पुस्तकों से मुझे सहयोग मिला है|

विभाग के मेरे प्रिय मित्रों को भी मैं इस समय याद करती हम – उनके स्नेह, प्रोत्साहन एवं सुझाव के लिए मैं उन लोगों से विशेष आभारी हूँ|

शोध सामग्री एकत्रित करने में कोच्ची विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पुस्तकालय का योगदान महत्वपूर्ण है| मैं यहाँ के कर्मचारियों के सहयोगपूर्ण व्यव्हार हेतु उनका आभारी हूँ|

ममतामयी माँ श्रीमती ओमना कृष्णन की प्रार्थना एवं मेरी स्वर्गीय पिता श्री.कृष्णन के आशीर्वाद की शक्ति मैं अपने शोध कार्य को पूर्ण कर पाने में समर्थ हुई| पूज्य माता-पिता के समक्ष नतमस्तक हूँ|

मेरे शोध कार्य में विशेष रूचि दिखने और हृदय से मेरी सफलता की कामना करनेवाले सभी लोग ख़ास करके मेरे पति श्री.अनूप जी के प्रति मैं आभारी हूँ|

इन सबसे बढ़कर मैं उस जगदीश्वर के प्रति आभारी हूँ जिनकी कृपा के बगैर कोई कार्य पूर्ण नहीं हो पाएगा|

सविनय,

अंजली कृष्णन

पहला अध्याय

समकालीन साहित्य और काशीनाथ सिंह

पहला अध्याय

आधुनिकता

समकालीन साहित्य की चर्चा आधुनिकता से ही शुरू करनी है क्यों कि आधुनिकता का एक प्रकार से विस्तार ही हैं समकालीनता| इसलिए आधुनिकता के रूपायन के विभिन्न पहलुओं तथा स्वरूपों पर विचार करना अनिवार्य बनता है| आधुनिकता एक प्रगतिशील दृष्टि है जिसके मूल में बौद्धिकता है| नव मूल्यांकन की दृष्टि है आधुनिकता|

जीवन की बदलती हुई संकल्पना और नवीनता के प्रति उदार दृष्टिकोण आधुनिकता का प्रमुख लक्षण है| जीर्ण-शीर्ण सामाजिक तथा धार्मिक मूल्यों के प्रति विद्रोह भी आधुनिकता का एक लक्षण है| परन्तु बौद्धिक परख के बिना स्थापित मूल्यों के प्रति विद्रोह को आधुनिकता नहीं कहा जा सकता है| कुछ लोग आधुनिकीकरण को ही आधुनिकता समझते हैं, जबकि इन दिनों में बहुत अन्तर है| आधुनिकीकरण के अंतर्गत नगरों का निर्माण, विधतीकरण, संचार के साधन, औद्योगिकता का विकास, शिक्षा का प्रसार, वैज्ञानिक उपकरणों का अधिकाधिक प्रयोग आदि हैं| इसे हम आधुनिकता का एक पहलू कह सकते हैं| आधुनिकता का सम्बन्ध मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास से उत्पन्न नए दृष्टिकोण से है| वह एक मानसिकता है|

बदलते विचारों एवं संकल्पनाओं के प्रति आधुनिक व्यक्ति खुला दृष्टिकोण रखता है| अपनी बुद्धि से वह हर बात का विश्लेषण कर लेता है| कोरी आस्था और अंधविश्वास से वह कोसों दूर है| अपने परिवेश के प्रति निरंतर संघर्षरत रहने के कारण ही व्यक्ति की मानसिक

चेतना विकसित होती है| समय-समय पर अपनी विवेक बुद्धि के उपयोग से उसने तत्कालीन समस्याओं का समाधान किया|

आधुनिक संवेदना समकालीन परिवेश से संपृक्त और प्राचीन तथा मध्यकालीन संस्कारों, अनुशासनों,रूढियों आदि से मुक्त होने की चेष्टा करती है| डां रघुवरदयाल वार्ष्णेय के अनुसार "यह तो एक ऐसी मानसिकता और बौद्धिक स्थिति है जो अपने परिवेश और समाज की गहनतम समस्याओं से उद्‌भूत होकर समकालीन जीवन को संस्कार देती है|"[1]

हमारे जीवन की अनेक समस्याओं को सुलझाने में धर्म आज असमर्थ है, जबकि तर्क और विज्ञान के बल पर व्यक्ति अनेक समस्याओं का समाधान पा लेता है| इस प्रकार आधुनिक मनुष्य के जीवन में धर्म के स्थान पर विज्ञान प्रतिष्टित हो गया है|

अतः स्पष्ट है कि आधुनिकता एक ऐसी मानसिकता है जो काल-विशेष से बाँधी हुई नहीं है| यह एक जीवंत प्रक्रिया है| जिसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है| प्रश्नाकुल मानसिकता और अपने परिवेश के प्रति सजगता इसके अनिवार्य अंग है| जड मूल्यों के प्रति विद्रोह भी आधुनिकता की उपज है| आधुनिकता में समाज की उपेक्षा व्यक्ति की स्वतंत्रता को अधिक महत्व दिया गया है| आधुनिक व्यक्ति नियति पर नहीं अपने कर्म एवं झमता पर विश्वास रखता है| वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण आधुनिक व्यक्ति की मानसिकता सदैव प्रशनाकुल रहती है|

---

[1] डा. रघुवरदयाल वार्ष्णेय, हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान, पृ : 132

पहला अध्याय

आधुनिकता एक संश्लिष्ट विचार-पद्धति है जिसे मात्र अस्तित्ववादी दर्शन के तहत विश्लेषित करना संगत नहीं है| समकालीन चेतना और जागृति को ध्यान में रखकर स्वतंत्र रूप से आधुनिकता के संबंध में सर्वव्यापक दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए| आधुनिता एक वौद्धिक प्रक्रिया होने के साथ-साथ अन्वेषण भी है|

"आधुनिकता का एक पहलू वह है जो बीते हुए से शेयर करता है और दूसरा वह जो उसकी अपनी देन है|"[1]

आधुनिकता औद्योगिकरण अथवा परंपरा से प्रस्थान नहीं| वह तो एक विचार विधि या चिंतन प्रक्रिया है जो परंपरा को स्वीकारते हुए उसे संशोधिन करते हुए युगसम्म्त दृष्टि को महत्व देती है| आधुनिक बोध का ऐतिहासिक विकास क्रम है जिसमें अनगिनत वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों का प्रभावित है| औद्योगिक, तकनिकी, शैक्षिक क्षेत्रों में विकास के नए आयाम उद्घाटित हुए| धर्म, न्याय, ईश्वर, मनुष्य से संबंद्ध सभी वैचारिकताओं में नव मूल्यांकन का विकास हुआ| अर्थ केंद्रित दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप संबंधों का विघटन, अकेलेपन और व्यर्थताबोघ के कगार पर जनता पहुँच गयी| पाश्चात्य विचारधारा, संस्कृति, नवीनतम सामाजिक, सांस्कृतिक आन्दोलन आदि के फलस्वरूप आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तीव्रता से बढने लेगी|

स्वातंत्रोत्तर परिवेश में आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया ने मध्यवर्ग को सार्वाधिक प्रभावित किया| इस वर्ग को नई मान्यताओं, मूल्यों, संबंधों, संवेदनाओं और आर्थिक स्थर

---

[1] विपिन कुमार अग्रवाल, आधुनिकता के पहलू, पृ:17

पर उभरी नयी चुनौतियों का सबसे अधिक सामना करना पड़ा| इस प्रकार आधुनिकता ने परिवेश के प्रति अधिक जागरूक बना दिया साथ ही साथ वर्तमान संदर्भ में विकल्प को तलाशने की बौद्धिक क्षमता भी प्रदान की|

आधुनिकता का स्वरूप युगबोध, आधुनिकीकरण, आधुनिक-बोध आदि की अर्थ ध्वनियों के स्पष्टीकरण के पश्चात् ही उसका पूर्णरूप सामने आ सकता है| आधुनिकीकरण तो नवीनीकरण का पर्याय नहीं इसमें उसका अंश तो विद्यमान है| आधुनिकता परंपरा का विरोधी न होकर परंपरा का पुर्नसंस्कार है| वह नये संदर्भों में परंपरा में परिवर्तन लाने तथा उसे संस्कार देने का नाम है| यह नये जीवन मूल्यों का सुजन परंपरा को दृष्टि में रखकर करती है| हिन्दी में आधुनिक साहित्य की शुरुवात भारतेंदु से है| स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय जन-मानस में आनिश्चितता, अनास्था एवं निराशा उभर आयी| इसी कारण से साहित्य की संवेदना भी बदल गयी|

आधुनिककाल अपने ज्ञान-विज्ञान और प्रविधियों के कारण मध्यकाल से बिलकुल अलग है| यह काल औद्योगीकरण, नगरीकरण और बौद्धिकता से संबंद्ध है| एक समय तक इह्लौकिक होकर यह आधुनिक दृष्टि प्रगतिशील बनी रही| प्रत्येक देश में पुर्नजागरण आया बहुत से परतंत्र देश स्वतंत्र हुए, अपने-अपने सपने लेकर| एक बिंदु पर खडे होकर मनुष्य ने पाया कि जिस औद्योगीकरण और प्रविधिकरण के सहारे उसने पूरे-देश का सपना देखा था, वह साकार नहीं हो सका| लोकतंत्र तथा साम्यवादी सरकारें समान रूप से निराशाजनक सिद्ध हुई| मनुष्य का अपना व्यक्तित्व और पहचान खो गया|इस खोये हुए व्यक्तित्व की खोज-प्रक्रिया का नाम “आधुनिकता” है|

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान ने मनुष्य को बहुत कुछ बुद्धि सम्मत बना दिया था| नीत्शे की घोषणा से कि "ईश्वर मर गया" बौद्धिक जगत में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया| यथार्थ का स्वरूप ही बदल गया| पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, अच्छे-बुरे की जो कसौटियाँ धर्म ग्रंथों में निर्धारित की गयी थी, उनकी प्रमाणिकता समाप्त हो गयी| पुराने मूल्य विघटित हो गए| मनुष्य ने पाया कि वर्तमान परिस्थिति में वह असहाय, क्षुद्र और निर्थक प्राणी है| अस्तित्ववादी दर्शन ने भी इस पर अपना योगदान देकर और भी पुष्ट कर दिया| उसकी दृष्टि में मनुष्य स्वतंत्र है – वह न वस्तु है, न मशीन है, वह क्रियात्मक शक्ति है| वह स्वतंत्र निर्णय लेने में समर्थ है और इसकेलिए खुद जिम्मेदार है| इस नई मानसिकता साहित्य है आधुनिकता का साहित्य| उसमें स्वाधीनता परवर्ती भारतीय समाज में तथा जनता में व्याप्त आश्रयहीनता, अनिश्चितता, अकेलापन एवं मोहभंग का यथार्थ अनावृत हो उठा हैं|

II समकालीनता

'समकालीन' शब्द 'सम' उपसर्ग तथा 'कालीन' विशेषण के योग से बना है| 'सम' उपसर्ग का प्रयोग प्रायः 'एक ही' अथवा 'एक साथ' के अर्थ में होता है| 'कालीन' का यहाँ अर्थ है – 'काल में' अथवा 'समय में'| अतः 'समकालीन' का सामान्य अर्थ 'एक ही समय में होने या रहनेवाले' के रूप में स्पष्ट होता है| इसे साहित्यिक संदर्भो में एक ही कालखंड में होनेवाली घटना या प्रवृति अथवा एक ही कालखंड में रहनेवाले व्यक्तियों अथवा रचनाकारों के अर्थ में प्रयुक्त किया जा सकता है|

पहला अध्याय

अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के साथ उलझना ही समकालीनता है| यह एक कालावधि क्रम है| प्रत्येक कालावधि की समस्याएँ अलग-अलग होती हैं और बदलती भी रहती है| आज नैतिक मानदंडों में भी बदलाव आया है और परिस्थितियाँ नित्य ही परिवर्तित होती जा रही हैं| ऐसी स्थिति में समकालीन उपन्यासकार एक यथार्थ से मुँह नहीं मोड़ सकता|

समकालीन शब्द अंग्रेज़ी के 'कन्टेम्परेरी' के पर्याय के रूप में हिन्दी में प्रचलित है जिसका कोशीय अर्थ है 'एक ही समय का, अपने समय का या समवयस्क होता है|" डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार "समकाल शब्द यह बताता है कि काल के एक प्रचलित खण्ड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है| इसे उलटकर कहे तो मनुष्य की वास्तविक स्थिति देखकर या उसे अंकित-चित्रित करके ही हम समकालीनता की अवधारणा को समझा सकते हैं| शर्त यही है कि लेखक आज के मनुष्य (देशकाल-स्थिति) में वस्तुगत रहे, यानी उसके चित्रण की विधि कोई भी हो लेकिन उससे जो मानव बिम्ब उभरता हो, वह वास्तविक जीवन के निकट हो|"[1] अर्थात समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखनेवाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है|

स्वचेतता, सचेतना और संवेदनशीलता समकालीनता की अनिवार्य अंक हैं| सचेतना समकालीन व्यक्ति, कार्य के किसी भी बिंदु को निरपेक्ष नहीं मानता| वर्तमान में वह भूत

[1] डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, संकालीन कहानी की भूमिका, पृ : 2

और भविष्य को समझता है| यह समझ ही व्यक्ति को समकालीन बनाती है और उसे "काल की निरंतरता या प्रवाह और परिस्थितियों की संभावनाओं का ज्ञान कराती है|"[1]

अतः समकालीनता का संबंध काल-विशेष से होने के साथ-साथ व्यक्ति विशेष के कालयापन तथा साहित्य, समाज अथवा परिवेश के परिवर्तनशील विशेष प्रवृत्ति से भी है|

प्रत्येक वर्तमान चिंतन समकालीनता से ही यथार्थता ग्रहण करता है| परिवेश की परिवर्तनशीलता के कारण समकालीनता के स्वरूप में बदलाव आ सकता है| नये मूल्यों की तलाश में समकालीन बोध जिस प्रकार के अनुभवों, समस्याओं से गुज़रता है इन सबके मूल में सही प्रतीत होनेवाले प्रतिमानों की उपस्थिति होती है|

स्वतंत्रता पूर्व का भारतीय चिंतन पूर्णतः राष्ट्रीय स्वतंत्रता पर केंद्रित था| स्वतंत्रता के बाद असमानता और राजनीतिक अस्थिरता का जो दौर आया उससे समकालीन चिंतन में काफी तीखापन आ गया| देश का साधारण जन पशुस्तर से ऊपर उठने को विवश था तो करोड़ों लोग पशुस्तर से भी गया बीता जीवन बिता रहे थे उन्हें न तो भोजन था न निवास स्थान| समाज की ऐसी विषम स्थिति में पूँजी का केन्द्रीकरण होता गया और भारत की जनता दो वर्गों-अति अमीर और अति गरीब में बंट गयी| इन दोनों के बीच में एक वर्ग और विकसित हुआ जो मध्यवर्ग था| अधिकांश समकालीन चिन्तक और रचनाकार इसी वर्ग के थे जो परिवेश की विसंगतियों के प्रत्यक्ष भोक्ता रहे हैं| इन अनुभवों ने ही उन तमाम विषम परिस्थितियों के विरोध में समकालीन रचनाकार को खड़ा कर दिया था|

---

[1] डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, समकालीन सिद्धांत और साहित्य, पृ : 13

पहला अध्याय

समकालीनता देश की अनिश्चयात्मक स्थितियों को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करती है उससे लड़ने के लिए वैचारिक धरातल प्रदान करती है| वह देश-काल के बदलाव को मानवीय संदर्भ में देखने का प्रयास करती है| काल का बोध या समकालीन बोध उस व्यक्ति को होता है जो उसका शिकार है, अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है| ऐसा व्यक्ति ही समकालीनता को पहचानता है और महत्वपूर्ण कदम उठा पाता है|

समकालीन परिवेश अनेक विसंगतियों से भरा हुआ है| इस परिवेश में व्यक्ति अपनी बाहरी और भीतरी पीड़ा को चुपचाप सहने के लिए विवश है| प्रत्येक रचनाकार अपने समय और समाज की उपज है| रचनाकार अपने समय की एक इकाई के रूप में जन्म लेता है| वह आम आदमी से ज्यादा संवेदनशील, बौद्धिक सक्षम और जिम्मेदार होता है| वह अपने समय और समाज की परिस्थितियों का सिर्फ दृष्टा न होकर एक सक्रिय आलोचक बनता है| इन बाहरी एवं भीतरी दबाव के तहत उसका व्यक्तित्व विकसित होता है| वह तमाम मुद्दों को एक आलोचक की दृष्टि से देखता है| यही दृष्टि उसे इसके लिए बाध्य करती है कि वह अपने आस-पास की घटनाओं पर गहराई से सोचे और उसकी वास्तविकता को उद्घाटित करे| रचनाकार अपने समाज की सर्जनात्मक शक्तियों का मूलभूत रूप होता है| समाज के प्रति प्रतिबद्धता, जिम्मेदारी और उसे बेहतर बनाने का आकांक्षा ही रचनाकार को समकालीन बनाती है|

साहित्य अपने समय का साक्षी होने के साथ उसका अनिवार्य सहयात्रि बनता है| लगभग समकालीन यथार्थ के सभी पक्षों को पूरी सूक्षमता के साथ समकालीन साहित्य ने अपना विषय बनाया है| जीवन के सभी क्षेत्रों में आये बदलावों का, वह सामाजिक हो या

व्यक्तिपरक सच्चा अंकन साहित्य में निहित है| समकालीन साहित्य में नये-नये विषयों की अभिव्यक्ति हुई है| पिछले दशकों में तेज़ी से हुए आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण, बाज़ारवाद, विज्ञापनवाद तथा मीडिया के गलत उपयोग ने आम आदमी के जीवन को दुष्कर बना दिया| समकालीन समाज इन्हीं बदले हुए यथार्थ को रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में गहराई से उतारा है| अतः समकालीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ असंख्य हैं| उसकी विचारधारा एक नहीं अनेक है|

समकालीन कथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ

समकालीन साहित्य की दिशाकालीनता के तहत उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ सांप्रदायिकता, पारिस्थितिक सजगता, नवऔपनिवेशक प्रतिरोध, स्त्री विमर्श, दलित चेतना, विस्थापन, वृद्ध विमर्श, लोक चेतना आदि|

a. साप्रदायिकता

भारत में लगभग एक हज़ार वर्षों से एक साथ रहने के बाद भी ऐतिहासिक कारणों से हिन्दू-मुसलमान प्रायः टकराव की स्थिति में रह रहे हैं| सत्ताधिकारियों और सत्ता लोभियों ने अपने लाभ के लिए इन्हें टकराव की स्थिति में ही रखना बेहतर समझा| सन् 1981 से 1990 तक के दशक में भारतीय समाज में उभरी सबसे बड़ी घटनाएँ सांप्रदायिक दंगों की हैं| इन सांप्रदायिक दंगों ने विभाजन की विभीषिका से जुडी स्मृतियों को फिर से ताज़ा कर दिया| साहित्यकार समय की आहट को पहचानता है| इसलिए इस दशक की अनेक कहानियों में इस सांप्रदायिक भावना तथा त्रासदी के विभिन्न पक्षों का सजीव अंकन

किया गया है| अंग्रेजों की 'फूट डालो राज करों की निति को कुछ शासकों एवं पूँजीपतियों ने भी अपनाया था| इस निति के सहारे लोगों के मन में भय उत्पन्न करके अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने में वे सफल हो जाते हैं| समकालीन साहित्य में विभाजन की त्रासदी और उसकी घोर विभीषिकाओं से गुज़रे मनुष्य की जिजीविषा एवं सांप्रदायिकता की भीषणता को भली-भाँती उभरा गया है|

सांप्रदायिकता के विभिन्न आयामों उभारनेवाली महत्वपूर्ण कहानियों में 'पुन्नी सिंह' की कहानी 'शोक' है| इस कहानी में दंगे की पीछे की अवसरवादी राजनीति के खेल को स्पष्ट किया गया है| सांप्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि में मध्यवर्गीय अवसरवादिता, कायरता आदि भावों को कुछ कहानियों में उभारा गया है| 'स्वयं प्रकाश' की कहानी 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा है?' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है| 'हृदयदेश' की कहानी 'अफवाहें' में 1984 में हुए दंगों के आधार पर दंगों के सभी पक्षों का चित्रण किया गया है| जितेन्द्र भाटिया की कहानी 'पहचान' में सांप्रदायिकता दंगों से उत्पन्न आतंक भरे वातावरण में अपने अस्तित्व को बचाने में मग्न व्यक्ति की विवशता को दिखाया गया है| साप्रदायिकता के विभिन्न आयामों को उभारनेवाली महत्वपूर्ण कहानियों में 'नमिता सिंह' की 'रक्षक', 'कर्फ्यू', 'गीतांजलि श्री' की 'बेलपत्र', 'पकज विष्ट' की 'जड़ायु', 'नरो वा कुंजरो वा', मुद्राराक्षस की 'जले मकान के कैदी', 'अहसास' आदि प्रमुख हैं| 'उदयप्रकाश' की 'और अंत में प्रार्थना', शिवमूर्ति कृत 'त्रिशूल', महेश दर्पण कृत 'चेहरे' आदि कहानियों में साप्रदायिकता के विरुद्ध तीव्र विरोध प्रकट किया है| इन कहानियों के ज़रिए कहानीकारों ने सांप्रदायिक दंगों को उघाड़कर सद्भावना को स्थापित करने का प्रयत्न किया है|

पहला अध्याय

उपन्यास के क्षेत्र में रचनाकार सांप्रदायिकता को और इसकी भीषणता को बखूबी ढंग से अपनी रचनाओं में उभारने का प्रयत्न किया है| 'देवेन्द्र सत्यार्थी' का 'कठपुतली' नामक उपन्यास में साप्रदायिक दंगों के बाद पाकिस्थान से भारत और भारत से पाकिस्थान जानेवाले शरणार्थियों के काफ़िलों का मार्मिक वर्णन किया है| 'यशपाल' का 'झूठा सच' इसमें विस्थापितों तथा शरणार्थियों के शीविरों का सजीव चित्रण करने के साथ इस राष्ट्रीय त्रासदी के कारणों का विश्लेषण भी किया है|

देश विभाजन के समय हुए सांप्रादायिक दंगों की छाया उपन्यासकारों के मन-मस्तिकों में लंबे समय तक रही जिसकी अभिव्यक्ति अनेक उपन्यासों में हुई| कमलेश्वर ने 'लौटे हुए मुसाफिर में सांप्रदायिक हिंस के अमानवीय पक्षों और पाकिस्थान के नाम पर चले गए मुसलमानों के मोह भंग का अंकन किया है| भीष्म साहनी का 'तमस' में देश के विभाजन और सांप्रदायिकता के मूल की स्थितियों और कारणों के विश्लेषण करके इस बात पर उन्होंने विशेष बल दिया है कि सांप्रदायिकता की आग फैलाने में ब्रिटिश शासन का हाथ था| द्रोणवीर कोहली कृत 'वाह कैंप', प्रताप सहगल कृत 'अनहद नाद', अमृतलाल मदान कृत 'सिन्धुपुत्र' आदि उपन्यासों में भी देश-विभाजन की त्रासदी और सांप्रदायिक दंगों से बचकर आए शरणार्थी परिवारों की कथा कही गयी है| राही मासूम रजा का 'आधा गाँव', 'टोपी शुक्ला', बदिउज्जमा का 'छाको की वापसी', भगवानदास मोरवाल 'काला पहाड़', प्रियंवद का 'वे वहाँ कैद हैं', गीतांजलिश्री के 'हमारा शहर उस बरस' और भगवान् सिंह के 'उनमाद' में भी सांप्रदायिक उन्माद का चित्र है|

सांप्रदायिकता के विषय बनाकर लिखे उपन्यासों से एक बात ज़रूर सामने आ जाती है कि हिन्दी उपन्यासकार सांप्रदायिक सोच और भावना की दृष्टि से उदार तथा मानवीय प्रजातांत्रिक मूल्यों से परिचालित हैं|

b. पारिस्थितिक सजगता

वर्तमान समाज भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, उदारीकरण के दौर से गुज़र रहा है| यह धरती के शोषण का कारण भी बनता है| जो प्रकृति हमारी रक्षक है, आज उसका शोषण भारी मात्रा में हो रहा है| प्रकृति के शोषण के साथ जल और वायु को भी लोग विश्लिष्ट कर रहे हैं| इस पारिस्थितिक विनाश से साहित्यकार सजग हुए और उसे अपनी रचनाओं का विषय बनाया| जल और वायु प्रकृति का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है जिनके बिना मानव जीवन की कोई जीव ज़िन्दा नहीं रह सकता पर मनुष्य जल की स्वाभाविक गति को रोककर बाँधों का निर्माण करते हैं|

विकास के नाम पर होने वाला यह शोषण मानव जीवन पर बुरा असर डालता है| वहाँ से लोगों का विस्थापन होता है| सैकड़ों गाँवों के अस्तित्व मिट जाते हैं जो मुख्यतः खेतीबारी पर केंद्रित है| वीरेंद्र जैन के उपन्यास 'डूब' और 'पार' इसी समस्या पर केंद्रित है| नसिश शर्मा का 'कुइयाँजान भी नदी और पानी की समस्या पर आधारित है|

विकास के नाम पर वायु और पानी का प्रदूषण आज सहज स्वाभाविक प्रक्रिया बन गयी है| संजीव के उपन्यास 'धार' और 'सावधान नीचे आग है' इसके ज्वलंत उदहारण हैं| सुभाष पंत का 'पहाड़ चोर', श्री प्रकाश मिश्र का 'जहाँ बांस फूलते हैं', मनमोहन पाठक का

'गगन घटा घहरानी', तेजींदर का 'काल पादरी', भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़ जैसे उपन्यासों में प्रकृति के शोषण का सविस्तार वर्णन हैं| समकालीन उपन्यास विकास के नाम पर होनेवाले प्रकृति के शोषण और इसके फलस्वरूप मानवीय जीवन की क्षति पर गंभीरता से विचार किया है|

अब पर्यावरण संकट के विभिन्न आयामों को कहानी के क्षेत्र में चित्रित करने लगा है| राजेश जोशी की 'कपिल का पेड़' में मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक जुड़ाव और पर्यावरण संकट को सूक्षमता से प्रकट किया गया है| राजेश जोशी की "मैं हवा पानी परिंदा कुछ नहीं" कहानी में पर्यावरण संकट के दूसरे पक्ष को सामने ले आती है| 'तालाब हो या पोखर' पंखुरी सिंह की कहानी है इसमें पेड़, जंगल, वनों के दोहन से जो बढ़ की स्थिति आती है इसका चित्रण है| मधु काकरिया की 'बदबू' कैलाश बनवासी की 'रोज का एक दिन', मृदुला गर्ग की 'डाफोडिल जल रहा है', इक्कीसवीं सदी का पेड़, अमरकांत की 'जले हुए शहर में' आदि पर्यावरण बोध की सजगता प्रदान करने योग्य कहानियाँ हैं|

इन रचनाओं से गुज़रते समय यह अहसास भी अनायास उत्पन्न होता है कि समकालीन हिन्दी कथा साहित्य अपनी सर्जनात्मकता में गहन एवं विशाल होकर वैश्विक समस्याओं पर भी अपनी जीवंत उपस्थिति जता रहा है|

c. <u>नवऔपनिवेशक प्रतिरोध</u>

साहित्य अपनी संवेदनात्मक प्रवृत्ति के कारण अपने आस-पास के वातावरण से रागात्मक संबंध स्थापित करता है| साहित्य बदलते समाज के संशिलष्ट एवं गहरे रूप की

पहचान करता है| साहित्यकार सामाजिक प्राणी होने के कारण समस्त समाजपरक गतिविधियों से प्रेरित है| अनेकानेक चिंतनपरक, यथार्थपरक, समाज शास्त्रीय, मीडियापरक तथा वैश्विक के बीच मनुष्य का सामाजिक जीवन इतनी तेज़ी से बदला है कि उसकी संरचना निरंतर जटिल होती गयी है|

नवउपनिवेशवाद वह व्यवस्था है जिसमे पूर्व उपनिवेशी ताकतें अपनी पूर्व उपनिवेशितों पर वर्चस्व बनाए रखने की कोशिश करती है| देश के उत्पादनों को लूटना और बाज़ार के ऊपर सर्वाधिकार स्थापित कर लेना ही अब भूमंडलीकरण का लक्ष्य सिद्ध हो चूका है| उदारीकरण, निजीकरण, शहरीकरण, औद्योगीकरण, बैंकिंग सब इसका परिणाम है| वैश्वीकरण का वास्तविक मकसद तो विश्व के दरिद्र राष्ट्रों को आर्थिक एवं वैज्ञानिक सहायता प्रदान करके उन्हें विकास की ओर अग्रसर करना था| विश्व के विकसित देशों ने इस महान उद्देश्य से भूमंडलीकरण की योजना बनायी थी| इस उद्देश्य को सार्थक बनाने के लिए अन्तराष्ट्रीय मुद्रोकोष, विश्वबैंक तथा विश्वव्यापार संगठन जैसी संस्थाओं का गठन हुआ| अविकसित एवं विकासशील राष्ट्रों को आवश्यक आर्थिक तथा तकनिकी सहायता देकर उन्हें विकासोन्मुख करना तथा विश्व राष्ट्रों का एक खुला मंच तैयार करना इसका लक्ष्य था| अपने देश के उत्पादनों के लिए योग्य मंडी चुन लेना तथा सबसे अधिक मुनाफा प्राप्त करने का अवसर बनना ही इस योजना का और एक लक्ष्य था| इस लक्ष्य को लेकर बनायी गयी योजना धीरे-धीरे विकसित राष्ट्र के स्वार्थ पर केंद्रित हो गयी| उसके अनुकूल ही योजनायें चलाने लगी तो उसका बुरा परिणाम ही विश्व को मिलने लगा था|

उदारीकरण ने भारत के स्वत्व को बनाये रखनेवाले कई तत्वों को नष्ट कर दिया| उनपर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपना अधिकार जमा लिया| खेती, वनस्पति, औषधि, विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में सब कहीं भारत का बड़ा नुकसान हुआ| वे मुफ्त और किश्त नीति के माध्यम से जनता को अपने जंजाल में फँसा कर लुटने लगे| धीरे-धीरे जनता उपभोग संस्कृति के चंगुल में फल गयी| वे सब बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मुनाफा कमाने के तंत्र बन गए| "सब जानते है कि पूँजीवाद की प्रवृत्ति हमेशा अंतर्राष्ट्रीय होने की रही है| अतः आज का भूमंडलीकरण पूँजी का भूमंडलीकरण है|"[1]

आजकल पूरी दुनिया एक बाज़ार में बदलती जा रही है| सारी चीज़ें बेचने योग्य माल मात्र रह गयी हैं| इन चीज़ों में प्राकृतिक संसाधनों से लेकर, बच्चे, स्त्री, श्रम और संस्कृति तक शामिल है| इस बाज़ारवादी दुनिया में चीज़ों की बिक्री के संदर्भ में जनसंचार माध्यमों की उल्लेखनीय भूमिका है| 'एजाज अहम्मद' के अनुसार – "देश के भीतर की अंदरूनी संस्कृति वर्चस्वशाली है उस पर साम्राज्यवादी संस्कृति का वर्चस्व काम करता है जिसे आलंकारिक रूप में भूमंडलीकरण कहा जाता है|"[2] जन संचार माध्यम विज्ञापनों के ज़रिए एक उपभोक्तावादी संस्कृति को रूपायित करने में संलग्न है| इसके चंगुल में लोग फँसते जा रहे है, वे उससे छुट नहीं पा रहे है| पंकज बिष्ट की 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते', उदयप्रकाश की 'पाँल गोमरा का स्कूटर' आदि कहानियाँ विज्ञापनों के प्रसार और उपभोक्तावादी संस्कृति के दबाव आदि के संदर्भ में उल्लेखनीय हैं| जयनंदन की 'चीयर अप

[1] रमेश उपाध्याय, भूमंडलीकरण एक चुनौती है और एक अवसर भी परिकथा, (नवंबर-दिसंबर 2006), पृ : 24

[2] अनुशीलन, 2006-2007, पृ : 119

कोला ब्लूम 96', 'विश्व बाज़ार का ऊँट' आदि कहानियों में टी.वी. की अपसंस्कृति, उपभोक्तावाद की मारक स्थिति आदि का पर्दाफाश किया गया है| श्रम के क्षेत्र में भूमंडलीकरण के हस्तक्षेप को दिखाते हुए बंधुआ मजदूरों की जिंदगी को दिखानेवाली कहानी है जितेन्द्र भाटिया की 'ग्लोबलाइज़ेशन'| संजीव की 'ब्लैक होल', कन्फेशन', नस्ल आदि कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय है| समकालीन कहानीकारों ने भूमंडलीकरण के प्रभावों से उपजे स्थितियों पर प्रकाश डालने का प्रयास अपनी कहानियों के ज़रिए किया है|

समकालीन उपन्यासकारों की अनेक रचनाओं पर भूमंडलीकरण और बाज़ारीकरण के बुरे प्रभावों का अंकन हैं| इस विषय पर केंद्रित बहुत सारी रचनाएँ हम देख सकते है| अलका सरावगी ने 'कलिकथा बाया बाईपास' उपन्यास में भूमंडलीकरण के बुरे प्रभाव में फँसे युवा पीढ़ी को ठीक राह पर चलाने के लिए गाँधी विचारों की पुनः प्रतिष्ठा आवश्यक मानती है| रवीन्द्र वर्मा ने भी 'निन्यानबे' उपन्यास द्वारा आज़ादी के बाद भारतीय युवा पीढ़ी में प्रविष्ट उपभोक्तावादी मानसिकता का अंकन किया है| उदयप्रकाश ने 'पीली छतरीवाली लड़की' में भूमंडलीकरण और बाजारीकरण के तहत वस्तु बन रहे आदमी का चित्र प्रस्तुत किया है| चित्र मुद्गल का उपन्यास 'आँवाँ' काशीनाथ सिंह का 'काशी का अस्सी' आदि नवऔपनिवेशिक समस्याओं पर आधारित कुछ उपन्यास हैं| भूमंडलीकरण के चुंगुल में फँसकर मनुष्य मानवीय संवेदनाओं को भूल गया है| उनकी दृष्टि सिर्फ अर्थ पर केंद्रित होकर रह गयी है| समकालीन रचनाकारों ने भूमंडलीकरण के प्रभावों से उत्पन्न स्थितियों पर प्रकाश डालने का प्रयास अपनी रचनाओं के ज़रिए किया है|

d. <u>स्त्री विमर्श</u>

पहला अध्याय

विश्व भर की आबादी में आधी से अधिक स्त्री है| पर सबसे अधिक शोषित एवं उपेक्षित वर्ग भी वही है| स्त्री को सौन्दर्य की वस्तु, पुरुष के उपभोग की चीज़ के रूप में समझा गया| उनकी खूबियों को अनदेखा कर दिया गया| वह हर कहीं शोषण और दमन का शिकार है| इस दमन प्रतिक्रिया की पहचान का परिणाम है स्त्री विमर्श| स्त्री अपने अस्तित्व याने कि अस्मिता को पहचानना और स्थापित करना चाहती है| स्त्री को केन्द्र में रखकर उसके जीवन के सभी पहलुओं पर गंभीर सोच विचार ही स्त्री विमर्श है| उसको मानवोचित जीवन जीने के अधिकार को हासिल कराने का आन्दोलन वही स्त्री मुक्ति आन्दोलन| वही साहित्य का स्त्री विमर्श है| इसलिए स्त्री विमर्श स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थिति को लेकर गहन एवं व्यापक दृष्टिकोण का विमर्श है|

लिंग भेद पुरुष समाज का दें है इसको दूर करके ही स्त्री को सामजिक न्याय मिल सकता है| यही स्त्री विमर्श का नया योगदान है| "स्त्री पुरुष की जैविक भिन्नता यौनता पर आधारित है| यौनता के आधार पर जैविक भेद किया जाता है| मगर अन्य ऐसा भेद आरोपित एवं संबंधित है| ऐसी भिन्नताएँ है जिन्हें समाज ने इस जैविक भिन्नताओं के संदर्भ में लागू किया है|"[1] स्त्री विमर्श द्वारा स्त्री के इस इतिहास को उघाड़ने का प्रयास है|

हिन्दी साहित्य में नारी मुक्ति आन्दोलन एक संगठित आन्दोलन के रूप में सत्तर के बाद ही रूप लेता हाही| इसका मूल कारण नारी के अपने स्वत्व की पहचान है| स्त्री ने जब अपनी हैसियत को पहचान लिया तो उसने पाया कि उसके सामने प्रतिकूलता ही प्रतिकूलता है| उसकी अपनी कोई हैसियत नहीं, कोई अधिकार नहीं, वह सिर्फ पुरुष का उपकरण मात्र

[1] प्रभा खेतान, स्त्री विमर्श ज्ञान की मीमांसा, पृ : 89

है| इस असमानता के खिलाफ का स्त्री संघर्ष ही नारी मुक्ति आन्दोलन है| इसका प्रमुख नारा समान अधिकार की माँग है|

नारी आन्दोलन की शुरुआत पाश्चात्य देशों में हुई| पाश्चात्य नारीवाद की प्रेरक साहित्यकार है वर्जीनिया वुल्क| उनकी बहुचर्चित रचना है 'अपना कमरा'| इसको नारीवाद का बैबिल कहा जाता है| सिमोन-द-बुआ ने स्त्री उपेक्षिता के माध्यम से साबित किया कि अपना समाज मानव मूल्य केंद्रित नहीं बल्कि पितृसत्तात्मक मूल्य केंद्रित है जो स्त्री विरोधी है इसलिए इस व्यवस्था का आमूल परिवर्तन अनिवार्य है|

समकालीन संदर्भ में कथा साहित्य के क्षेत्र में स्त्री केंद्रित रचनाओं पर अधिक चर्चाएँ हो रही हैं| स्त्री की अस्मिता को केन्द्र में रखकर लिखी गयी कहानियों में अनुभव की प्रामाणिकता है| "स्त्री केंद्री कहानियों की अंतर्वस्तु के विस्तार की चित्ता और चेतना का स्वरूप और चरित्र इसके सिवास और क्या हो सकता है कि स्त्री को उसके संपूर्ण यथार्थ और वास्तविकता में लिया जाए|"[1]

नारी आज भी पुरुष प्रधान समाज की विसंगतियों और अवमुल्यों से घिरे है| कहानीकारों ने नारी की नियति के तीन संदर्भो को विशेष रूप से किया है| कुछ कहानियाँ अनपढ़ श्रमजीवि महिलाओं की संघर्ष क्षमता को उभारता है तो कुछ स्कूलों और कार्यालयों में कार्यरत महिलाओं के केन्द्र में कुछ थोड़ी सी कहानियाँ राजनीति, समाजसेवा आदि क्षेत्रों में सक्रिय महिलाओं के मार्ग की बाधाओं को सामने लाती है| पुरुष सत्ता के अधिकार को

[1] शम्भू गुप्त, समकालीन कहानी में स्त्री, कहानी की स्त्री केंद्रित, पृ :

चुनौती देना इन कहानियों की एक विशेषता है| 'लवलीन' की 'बैल की बनी औरत' कहानी में स्त्री पुरुष सत्तात्मक समाज को चुनौती देती हुई दिखाई देती है| 'मैत्रेयी पुष्पा' की कहानी 'ललमनियाँ' में भी पुरुष समाज की बेईमानी को दिखाया है| 'शिवप्रसाद सिंह' का 'उपहार', रामदरश मिश्र का 'एक औरत एक जिन्दगी', मन्नु भण्डारी की 'रानी माँ का चबूतरा' आदि कहानियों में अनपढ़ श्रमजीवी महिलाओं की समस्याओं को प्रस्तुत किया है| 'प्रमोशन', मुआवजा (चित्रा मुद्गल), 'खुदा की वापसी' (नासिरा शर्मा) आदि कहानियों में आए पुरुष चरित आधुनिक ढंग से जीवन जी रहे हैं, लेकिन उनके दिमाग सोलहवीं सदी से आगे नहीं बढे हैं| पुत्री का विरोध करते हुए पुत्र कामना का भीषण रूप 'भ्रूण परिक्षण' है| इन नारी विरोधी परीक्षण का संदर्भ 'कमल कुमार' कृत 'अंतर्यात्रा' में है| 'नासिरा शर्मा' के कहानी संग्रह 'खुदा की वापसी' की सभी कहानियाँ मुस्लिम समाज की महिलाओं की कुछ ज्वलंत समस्याओं के चित्रण है|

मृदुला गर्ग, चित्र मुद्गल, मजुल भगत, राजी सेठ, चंद्रकांता, कमल कुमार, नमिता सिंह आदि की कहानियाँ नारी के अस्तित्व की सर्थकता तलाशती दिखाई देती हैं|

समकालीन उपन्यासकार नारी की अस्मिता एवं भूमिका को अपनी रचनाओं के माध्यम से ज़ाहिर करते है| स्त्री को स्वतंत्र एवं शिक्षित होना चाहिए| घर-परिवार एवं समाज में उसकी अपनी अलग हैसियत होना अनिवार्य है| अपने पात्रों के ज़रिए रचनाकार उनकी प्रतिकूलताओं से पाठकों को परिचित करा रहे हैं| समकालीन नारी विमर्श में पारिवारिक शोषण के खिलाफ का विद्रोह, नैतिकता संबंधी पुरानी मान्यताओं का विरोध नौकरी पेश नारी का विद्रोह, रुढियों के प्रति विद्रोह, अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष जैसी

प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं| आधुनिक नारी पहचान लिया की शादी स्त्री शोषण का हथियार बन चुकी है| शादी को लेकर 'स्त्री पक्ष' उपन्यास में प्रभा खेतान अपना विचार प्रकट किया है| मृदुला गर्ग का 'कंठगुलाब', मैत्रेयी पुष्पा का 'इन्दन्नम' में इस बात को ज़ोर दिया है| चित्रा मुद्गल का 'आवां', उषा प्रियंबदा का 'शेष यात्रा', मैत्रेयी पुष्प का उपन्यास 'बेतवा बहती रही', कृष्णासोबती का उपन्यास 'ऐ लड़की', मृदुला गर्ग का 'कंठगुलाब', मेहरुन्नीसा परवेज़ का 'अकेला पलाश' आदि रचनाओं में नारी विद्रोह के कई रूप हम देख सकते हैं|

इस प्रकार समकालीन स्त्री पक्ष रचनाओं में नारी जीवन के बहुआयामी संदर्भो का खुलासा हुआ है|

e. दलित चेतना

भारत वर्ण व्यवस्था का देश है| यहाँ का मानना है कि ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि चार जातियों में विभाजित करके की है| वैदिक काल में यह जाति व्यवस्था नहीं थी| बाद में जाति व्यवस्था स्थापित हो गयी यह तो पूर्णतया मनुष्य निर्मित है| जाति भेद एक सामाजिक विकृति है| जाति भेद की भीषणता को भोगने वाले सचमुच समाज के निम्न जाति के लोग है| 'ओमप्रकाश वाल्मीकि' दलित की पहचान को एक सरल और सामान्यीकृत परिभाषा में बाँधने का प्रयास करते है "दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन और दमन किया गया है, दबाया गया है, उत्पीडित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित

घृणित, रौदा हुआ, मसला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त-हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि| ..... अगर स्पष्टः कहा जाए तो वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत या अत्यज की श्रेणी में रखा|"[1]

दलित युग-युगों से उत्पीडित, उपेक्षित एवं शोषित वर्ग है| उन्हें तो सभी अधिकारों से वंचित करके रखा गया है| इस सामाजिक असमानता के प्रति बहुत सारे विरोध प्रकट किए गये| शिक्षित अवर्णों ने संगठित होकर इस अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाई| यही दलित आन्दोलन है| उससे प्रभावित या उसको प्रश्रय देने के लिए लिखा गया साहित्य है, दलित साहित्य| "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है| यह कला के लिए कला नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है| इसलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है|"[2]

दलित साहित्य दलितों की आत्मपहचान का साहित्य है| इसके मूल में विद्रोह की भावना है| वह विद्रोह उसके मानवोचित जीवन बिताने के अधिकार के लिए है| भारत के दलितों का इतिहास ग्रंथो में प्राप्त नहीं| क्योंकि यह इतिहास वरेण्य वर्ग का अभिलेख मात्र रह गया| शैक्षिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में दलित उपेक्षित थे| महात्मा बुद्ध, विवेकानंद, गाँधी, अम्बेडकर, महात्मा फूल, कबीर जैसे महान चिंतकों तथा विभिन्न सुधारवादी संस्थाओं ने दलितों को मुक्त कराने तथा अपने वर्तमान से अवगत कराने का बहुत

---

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ : 13-14

[2] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ : 14

सारा प्रयत्न किया है| दलित चेतना के रूपायन के पीछे सक्रिय चिंतकों में महत्मा फूले डा. बी.आर. अम्बेडकर प्रमुख है| ब्लैक पैंथर, दलित पैंथर जैसी संस्थाओं ने भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है|

दलित साहित्य के मर्म को समझाते हुए रमणिका गुप्ता ने अपना विचार यों प्रकट किया है – "दलित साहित्य आनंद के लिए नहीं बल्कि परिवर्तन के लिए लिखा जाता है|"[1]

यहाँ दलित द्वारा रचित साहित्य को ही दलित साहित्य माना गया| इस वर्ग में कंवाल भारती, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, रतनकुमार सामरिया आदि दलित कहानी के क्षेत्र में प्रमुख रहे| विद्रोह और निषेध के स्वर इनकी कहानियाँ का स्वर है| मोहनदास नैमिशराय की 'अपना गाँव' कहानी में दलितों द्वारा अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए किए जानेवाले प्रयत्न को दिखाया गया है| 'दयानंद बटोही' की 'सुरंग' नामक कहानी में विश्वविद्यालयों में दलित छात्रों को शोध के लिए प्रवेशन देने पर इस भेदभावपूर्ण रवैये के प्रति विरोध करते हुए दिखाई देती है| 'जयप्रकाश कर्दम' की 'सांग' कहानी में भी दलितों की विद्रोही मनस्थिति का अंकन हुआ है| दलित कहानीकारों की कहानियों में ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम', जयप्रकाश कर्दम की 'लाठी', अजय नावरिया की 'उपमहाद्वीप', धर्मवीर की 'बच्चा', रतनकुमार सामरिया की 'चमरवा', चपड़ासन' उल्लेखनीय दलित कहानियाँ हैं|

[1] रमणिका गुप्ता, दलित चेतना साहित्य एवं सामाजिक सरोकार, पृ : 103

दूसरा एक वर्ग है जिनका मानता है कि दलितों पर लिखने के लिए दलित होते की ज़रूरत नहीं| गैर दलित रचनाकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानी 'खाल खींचनेवाले', आलम शाह खान की 'एक और सीता', मैत्रयी पुष्पा की 'छुटकारा', अखिलेश की 'ग्रहण' आदि उल्लेखनीय दलित चेतना की कहानियाँ है| इनका उद्देश्य दलित समाज की व्यथा कथा को जनता तक पहूँचा कर उसके मन में सामजिक क्रांति की आग जलाना ही रहा|

दलित रचनाकारों द्वारा रचित उपन्यासों में भी दलित चेतना का सकारात्मक पक्ष देख सकते हैं| दलित उपन्यास में स्वानुभूति और अनुभव की तीव्रता है| दलित मानसिकता एक पराजय बोध नहीं विद्रोह एवं प्रतिरोध की भावना है| 'प्रेम कपाडिया' का उपन्यास 'मिट्टी की सौगंध', इसमें ज़मीनदार और दलित वर्ग के बीच का संघर्ष चित्रित है| जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास 'छप्पर', दलित जीवन की विसंगतियों का दस्तावेज़ है| 'ओमप्रकाश वाल्मीकि का उपन्यास है 'जूठन'| इसमें दलित जीवन का यथार्थ अनावृत है| दलित नारियों के शोषण का चित्र भी दलित उपन्यासों में देख सकते है| 'प्रेम कपाडिया' के मिट्टी की सौगंध, 'जयप्रकाश कर्दम' का 'छप्पर' आदि में नारी शोषण के यथार्थ चित्रित हैं| दलित नारी के जीवन की नाटकीय स्थिति का चित्रण है 'जस तस भाई सबेर'| 'गिरिराज किशोर' का 'यथाप्रस्तावित', 'परिशिष्ट', 'अमृतलाल नागर' का 'नाच्यौ बहुत गोपाल', जगदीश चन्द्र का 'धरती धन न अपना', 'नरक कुंड में बॉस', यादवेन्द्र चन्द्र शर्मा का 'पत्थर के आँसू', भैरव प्रसाद गुप्त का 'सति माता का चौरा' 'रमेश चन्द्र शाह' का 'किस्सा गुलाम', रामदाश मिश्र का 'एक टुकड़ा इतिहास' आदि दलित चेतना युक्त उपन्यास है| दलित उपन्यास दलित अस्मिता के लिए जानेवाले संघर्षों का साहित्यिक दस्तावेज़ अवश्य है|

f. <u>विस्थापन</u>

विस्थापन कई प्रकार से दुनिया भर की जनता भोगती आ रही है| मनुष्य ने अपने जन्मस्थान और निवास स्थान को छोड़कर एक नये स्थान की ओर गमन करने की प्रक्रिया को विस्थापन कहा जाता है| यह तो कभी अपनी इच्छा से नहीं तो बलपूर्वक होता है| अपनी इच्छा से जानेवाले लोग दूसरी जगह में बस जाने में कामयाब हो जाते हैं| लेकिन अपने देश से बलपूर्वक निकाल दिए जानेवालों की स्थिति बहुत शोचनीय है| भौगोलिक विस्थापन को प्रोत्साहित करने में भूमंडलीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका है| विश्व भर में नए अवसरों को प्राप्त करने के लिए लोग भारी मात्रा में विस्थापित होकर नये देशों में बसने लगे है| भारत में विस्थापन तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर से, देश विभाजन से, विकास योजनाओं से, तथा राजनितिक कारणों से उत्पन्न हैं|

भारत के 40% लोग जीविकोपार्जन के लिए तथा व्यापार के लिए अन्य देशों से संबद्ध है| वहाँ की संस्कृति और सभ्यता को स्वीकार कर लेते हैं| प्रवासी लोग द्वन्द्वात्मक मनःस्थिति का शिकार तो है| इसलिए मानसिक विस्थापन को कई रचनाकारों ने अपनी रचना का विषय बनाया| इन पहलुओं को कई समकालीन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में अनावृत किया है|

दूसरे देश के मजदूरों के जीवन संघर्ष को भी रचनाकार ने अपना विषय बनाया है| 'गिरिराज किशोर' का 'पहला गिरमिटिया', अभिमन्यु अनत के 'लाल पसीना' आदि उपन्यासों में मजदूरों के जीवन संघर्षों को विषय बनाया गया है| सांस्कृतिक टकराव से भी

विस्थापन उत्पन्न हो जाता है| भारत विभाजन से उत्पन्न विस्थापन को प्रमुख रचनाकारों ने रचना का विषय बनाया है| यशपाल कृत 'झूठा-सच', द्रोणवीर कोहली कृत 'वाह कैंप', गुरुचरण दस रचित 'कहानी एक परिवार की', कमलेश्वर वृत 'कितने पाकिस्थान', भीष्म साहनी कृत 'तमस' आदि इन विषय पर आधारित कुछ उपन्यास हैं| औद्योगीकरण से उत्पन्न समस्याओं पर सबसे अधिक प्रकाश डाला गया है| आदिवासी के विस्थापन के विभिन्न पहलुओं को समकालीन उपन्यासकारों ने विषय बनाया है| 'सावधान नीचे आग है, धार, पाँव तले की धूप, अल्मा कबूतरी आदि इस विषय पर आधारित उपन्यास है|

g. <u>वृद्ध विमर्श</u>

साहित्य तो युग सोपेक्ष्य है| इसमें सांस्कृतिक, राजनीतिक, शैक्षिक, धार्मिक, नैतिक परिवर्तनों का असर पड़ता है| औद्योगीकरण बाज़ारीकरण और उपभोक्तावाद के युग में मानव जीवन का मूल्यांकन उपयोगिता-अनुपयोगिता के धरातल पर किया जाता है| जिसमें नैतिक मूल्यों और मानवता को गौण स्थान है| विश्व में 40% वृद्ध आज गरीबी रेखा के नीचे और कई प्रतिशत अशिक्षित है| 88 प्रतिशत वृद्ध-वृद्धाएँ खेती और गृह उद्योग में रत है|

संतान आज माता-पिता को नहीं बल्कि केवल अपसंस्कृति और उपभोक्तावादी मूल्यों को सार्वाधिक महत्व देती है| उन की आँखों में कूड़े और बूढ़े एक जैसा है| वृद्ध मानसिकता, सभ्यता, अवकाश प्राप्ति, वैधव्य, अलगाव, शक्ति में ह्रास, अव्यवस्था, विस्थापन, देख-रेख करने वालों का अभाव आदि बुढापे में सामाजिक रुगणताके सामान्य करक हैं|

वृद्धो के जीवन-यापन के लिए वृद्धाश्रम, आनंदलोक, विश्व-स्वास्थ्य आदि की व्यवस्था है किंतु असल में जो चाहिए वह नहीं मिलता जैसा कि प्यार, आदर, संरंक्षण आदि| समकालीन हिन्दी साहित्य में वृद्ध पीढ़ी के बारे में अधिक गौरवपूर्ण चर्चा चलती आ रही है|

समकालीन हिन्दी कहानी में बूढ़ी-पीढ़ी के जीवन के दो आयामों पर प्रकाश डाला गया है| पहला उसकी दुर्गति का दूसरा युवा पीढ़ी के साथ वैचारिक संघर्ष का| पहले प्रकार की कहानियों में बूढों को लेकर कुछ भावुकता है| दुसरे प्रकार की प्रायः नगर, महानगर जीवन के मध्यवर्गीय परिवारों की है| नई कहानी ने बूढ़ी-पीढ़ी को लेकर लिखने का जो सिलसिला चीफ की दावत, वापसी, गुलश के बाबा आदि में शुरू किया था| वह आज भी ज़ारी है| फर्क इतना है कि उसका संदर्भ बदल गया है|

स्वतंत्रता के बाद गाँवों में बहुत तीव्रता से विघटन, विलगाव एक नये जीवन मूल्य के रूप में विकसित हुए है| आज की कहानियों में 'शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'बीच की दीवार', शैलेश मटियानी की 'परखा', काशीनाथ सिंह की 'सुख', सदी का सबसे बड़ा आदमी', आदि उल्लेखनीय है|

उन्यास के क्षेत्र में भी कई उपन्यासकारों ने इस वृद्ध समस्या को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पाठकों के सामने लाये हैं| काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'रेहान पर रग्घू' इसमें कोओपरेट जीवन में माँ-बाप को अयाचित वस्तु की तरह मानेवाली युवा पीढ़ी की कथा है| उन्हें बूढी पीढ़ी सिर्फ सीढी मात्र है अपने मंजिल तक पहुँचने की| बूढ़े की मानसिकता,

अकेलापन, अनचाहे वस्तु की तरह घर में पड़े रहने का दुःख आदि का सशक्त चित्रण उपन्यासों में हुआ हैं|

h. <u>लोकचेतना</u>

किसी भी देश, समाज या संस्कृति की मूल परिचालक है लोकचेतना| यह लोक चेतना या लोकमानस व्यक्तियों को उत्तराधिकार में प्राप्त होता हैं| यह लोक-चेतना में लोक जीवन से संबंधित समस्त आचार-विचार, नीति निषेध, विश्वास प्रथाएँ, धार्मिक परम्पराएँ, रीति-रिवाज़, अनुष्ठान, व्रत, त्यौहार, कलाएँ आदि पूर्ण रूप से समाहित है| किसी इलाके की लोकचेतना को जानने के लिए यह ज़रूरी है कि व्यक्ति उस लोक के भीतर गहरे तक उतरे विभिन्न व्यक्तियों, वर्गों, धर्मो, संप्रदायों और संस्कृतियों के संपूर्ण स्वरूप को जानने के लिए उनके अन्दर तक झांके|

अंग्रज़ी में लोक शब्द को फोक (folk) कहा जाता है| लोगों का साहित्य ही लोक साहित्य कहा जा सकता है| डा. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली वह समूची जनता है जिसके व्यावाहरिक ज्ञान की पोथियाँ नहीं है| मातृत्व, पातिवृत्य, मित्रता, देश की महिमा, दान की महिमा आदि का संवेदनात्मक वर्णन लोक गीतों में है| इस प्रकार संसार को अधिक मानवीय बनाने में लोक संस्कृति का बड़ा योगदान है|

समकालीन कहानी जीवन परिवेश के प्रति अत्यंत सजग दृष्टि से युक्त है| लोक चेतना इस युग की कहानियों की आधार शिला है| प्रेमचंद युगीन कहानियाँ लोक जीवन या

ग्रामीण जीवन को चित्रित करने में सक्षम निकली हैं| प्रेमचंद की कहानियों एवं उपन्यासों के आधार पर उस युग के लोक जीवन को समझा सकते हैं| उनके बाद फणीश्वर नाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, भैरव प्रसाद गुप्त जैसे कहानीकारों ने आचलिक जीवन को चित्रित करके लोकचेतना को उभारा है|

समकालीन कहानियों में लोक चेतना का पट-प्रभूत मात्र में है| वतमान संदर्भ में हमें पहचान लिया कि लोक तत्व हमारी अपनी विरासत है उसमें ही अपना अपनापन है| उसको बनाए रखने के लिए लोग्तत्व की स्वीकृति पहचान और सुरक्षा अनिवार्य है| उद्प्रकाश (पोल्गामारा का स्कूटर) स्वयं प्रकाश (संधान, बाली), मृदुला गर्ग (कला में सत), मार्कण्डेय (पान फूल), शैलेश मरियानी (दो दुखों का एक सुख, हारा हुआ), संजीव (पिशाच), तीन साल का सफरनामा), कमलेश्वर (कितने अच्छे दिन), काशिनाथ सिंह (कहानी सराय मोहन की), असगर बज़ाहत, विवेकी राय मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल जैसे हिन्दी के शीर्षस्थ कहानीकारों ने अपनी सृजनात्मकता के तहत लोक चेतना को उजागर करने का कार्य किया है|

कहानी की तरह उपन्यास के क्षेत्र में भी लोक चेतना से युक्त कई उपन्यास हम देख सकते हैं| प्रेमचंद, फणीश्वर रेणु, नागार्जुन, शिवप्रसाद सिंह आदि के उपन्यासों में इसको अभिव्यक्ति हम देख सकते हैं| समकालीन समय में आकर कई रचनाकारों ने जैसे मैत्रेयी पुष्पा, संजीव, शैलेश मटियानी, काशीनाथ सिंह, मृदुला गर्ग, भगवन दास मोरवाल लोकचेतना या लोकजीवन को अपने रचनाओं में प्रमुख स्थान दिया है| उपन्यास के अलावा

संस्मरणों के क्षेत्र में भी रचनाकार लोक चेतना, लोक गीत, पर्व त्यौहार आदि को चित्रित किया है|

समकालीन साहित्य लोक जीवन को चित्रित करके मानव को अधिक मानवीय बनाने का कार्य कर रहा है|

IV संस्मरण साहित्य एक परिचय

संस्मरण शब्द का संबंध स्मृति से है| सम्यक स्मृति की वह अमिट छाप जो शब्दों द्वारा साहित्यिक ढंग से अभिव्यक्त किया जाता है वह 'संस्मरण' है| किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना, दृश्य या परिवेश को जब आत्मीयतापूर्ण रूप में याद किया जाए और उसका विवेचन कलात्मकता के साथ हो तो वह संस्मरण बन जाता है| भावाभिव्यक्ति संस्मरण को अधिक रोचक एवं भावपूर्ण बना देती है| हिन्दी में संस्मरण वहुचर्चित एवं लोकप्रिय विधा रहा है|

संस्मरण के तत्व साहित्य की अन्य अनेक विधाओं में भी दृष्टिगत होते है| लम्बे समय तक यात्रा वृत्तांत, रेखाचित्र, आत्मकथा, रिपोर्ताज, जीवनी जैसी विधाओं को संस्मरण का ही एक रूप माना जाता रहा| संस्मरण एक वर्णानात्मक विधा है| इसमें विवरण प्रस्तुत किया जाता है और यादों में बसी अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति होती है|

अतीत की घटनाओं का वर्णन संस्मरण का विषय बनता है| लेखक के संपर्क में आए हुए व्यक्तियों, वस्तुओं और घटनाओं की यादों पर से समय का पर्दा हटाकर तादात्म्य स्थापित करते हुए उन्हें अभिव्यक्त किया जाता है| इसमें संपूर्ण जीवन का चित्रण न करके कुछ घटनाओं का वर्णन होता है|

पहला अध्याय

संस्मरण स्वतंत्र विधा के रूप में बीसवीं सदी के तीसरे दशक से प्रतिष्ठित होने लगा है| इससे पूर्व प्राचीन तथा पद्य साहित्य में किसी न किसी रूप में इसका सान्निध्य हुआ है| बौद्ध भिक्षुओं की गाधाओं में, नाथ पंथियों में, सिद्धों और जैन साहित्य में संस्मरण के संकेत मिलते हैं| आदिकालीन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं का जो वर्णन किया है, उसमें भी संस्मरणात्मक कथाएँ पाई जाती है|

हिन्दी गद्य साहित्य में संस्मरण लेखन की परंपरा भारतेन्दु युग से ही मानी जाती है| हिन्दी साहित्य की अन्य गद्यात्मक विधाओं के साथ ही संस्मरण विधा भी विकसित हुई| अम्बिकादत्त व्यास द्वारा बीसवीं शताब्दी के प्रथम वर्ष में लिखा गया 'निज वृत्तांत' हिन्दी का सर्वांगपूर्ण आत्मकथात्मक संस्मरण है| इसके बाद बालमुकुन्द गुप्त ने स्वतंत्र रूप से संस्मरण लिखे| इसमें प्रतापनारायण संबंधी वृत्त मिलता है| इसके बाद चंद्रधर शर्मा द्वारा लिखे बाबू अयोध्याप्रसाद के संस्मरण तो 'समालोचक' के अंकों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए| बाबू श्यामसुंदर ने अनेक संस्मरण लिखे| इस काल में अनेक संस्मरण सामने आए जिनमें कलाप्रेमी रायकृष्ण का 'प्रसाधिका की प्राप्ति', सद्गुरुशरण अवस्थी का 'दरिद्र दर्पण', विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक का 'मेरा वह बाल्यकाल' संस्मरण अत्यंत रोचक है|

सन् 1929 में कई संस्मरण लेखक आए जिनमें आचार्य रामदेव, अमृतलाल चक्रवर्ती, इलाचंद्र जोशी, श्रीनिवास शास्त्री, मंगलदेव शर्मा आदि द्वारा लिखे गए संसमरण भी प्रकाशित हुए| 1937 में श्रीराम शर्मा कृत 'बोलती प्रतिमा' प्रकाशित हुआ| राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का नाम भी हिन्दी संस्मरण लेखक के रूप में उल्लेखनीय है|

हिन्दी संस्मरण साहित्य में महादेवी वर्मा का स्थान उल्लेखनीय है| महादेवीजी के 'स्मृति की रेखाएँ', 'श्रृंखला की कड़ियाँ', एवं 'पथ के साथी' जैसे संस्मरणात्मक गद्य संग्रह बहुत प्रसिद्ध अहिं| उनके संस्मरणों की अनेक विशेषताएँ हैं| नारी समस्या एवं मानवीय गुणों को संस्मरणात्मक ढंग से चित्रित करना उनकी कला है| महादेवी के संस्मरणों के भाषा में चित्रात्मकता एवं आलंकारिकता के साथ साथ भावात्मक, चित्रात्मक, वर्णात्मक एवं दार्शनिक शैलियों का समावेश है| महादेवी के बाद इस साहित्यिक विधा के विकास में रामवृक्ष बेनीपुरी का नाम उल्लेखनीय है| संस्मरण विधा के विकास में प्रकाशचंद्र गुप्त राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, जगदीशचन्द्र माथुर आदि साहित्यकारों का नाम उल्लेखनीय हैं|

शांतिप्रिय द्विवेदी का नाम हिन्दी संस्मरण लेखकों में श्रद्धा से लिया जाता हैं| 'पथ चिह्न' उनका प्रमुख संस्मरण है| आज़ादी के बाद हिन्दी संस्मरण साहित्य का क्रमिक विकास हुआ है| हिन्दी संस्मरण को सुदृढ़ साहित्यिक आधार प्रदान करनेवाले लेखकों में पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम उल्लेखनीय है| उन्होंने स्वयं विविध विषयक एवं आदर्शों के संस्मरण लिखे साथ ही दूसरों को भी संस्मरण लिखने की प्रेरणा दी, द्विवेदीजी, श्यामसुंदरदास, श्याम बिहारी मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, हरिऔध, कामताप्रसाद गुरु, पद्मसिंह, राचंद्र शुक्ल, अंबिका प्रसाद बाजपेई आदि ने रोचक संस्मरण लिखे हैं|

सन् 1959 में उपेन्द्रनाथ अश्क कृत 'मंटो मेरा दुश्मन' के प्रकाशन से हिन्दी संस्मरण लेखन को एक नई दिशा मिली| इसी समय मुंशी प्रेमचंद्र संबंधी संस्मरण भी बड़ी संख्या में लिखे गए| जिनमें शिवरानी प्रेमचंद कृत 'प्रेमचन्द घर में' एक विशिष्ट संस्मरण है| प्रेमचंद

संबंधी एक अन्य संस्मरण जैनेन्द्र जी ने भी लिखा है जिसका नाम है 'प्रेमचंद : मैं ने क्या जाना और पाया'|

उपन्यासकार और निबंधकार महान मानवतावादी लेखक आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी को भी संस्मरण के क्षेत्र से अलग नहीं रखा जा सकता| उनकी 'एक कुत्ता और एक मैना' नामक लेख संस्मरणात्मक दृष्टि से लिखी गई है| यहाँ तक कि उनके निबंधो में भी संस्मरण प्रणाली के उत्कृष्ट उदहारण भी मिलते हैं|

हिन्दी संस्मरण के विकास में रायकृष्णदास का नाम भी उल्लेखनीय है| इसी समय का रचनाकार है श्री राहुल सांकृत्यायन, चन्द्रबली पाण्डेय, रामनाथ सुमन, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, विजयेन्द्र स्नातक, सेठ गोविन्ददास आदि प्रमुख है| अज्ञेय का संस्मरण लेखन 'आत्मनेपद' सन् 1960 में प्रकाशित हुआ और 'लिखी कागद कोरे' 1972 में| इन दोनों रचनाओं के माध्यम से अज्ञेय को जाना जा सकता है| इसके बाद विनोदशंकर व्यास की रचना 'प्रसाद और उनका समकालीन' इसमें प्रसाद के समकालीन साथियों पर प्रकाश डाला गया है|

साहित्यिक संस्मरण के साथ-साथ राजनैतिक संस्मरण भी लिखे गए| महात्मागाँधी, राजेन्द्रप्रसाद, पं नेहरू आदि नेताओं के अनेक संस्मरण आज़ादी के पहले ही प्रकाशित हो चुके थे| आज़ादी के बाद अनेक ग्रंथ सामने आये| राजेन्द्र बाबू की 'बापू के क़दमों में', इंद्र विद्या वाचस्पति के 'हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति', माखनलाल चतुर्वेदी का 'समय के पाँव', रामधारी सिंह दिनकर की 'लोकदेव नेहरू' आदि उल्लेखनीय है|

इस शताब्दी के आठवें और नवें दशक में भी अनेक संस्मरणात्मक ग्रंथ प्रकाशित हुए है| श्रीनारायण चतुर्वेदी के नाम संस्मरण लेखन में विशेष महत्व रखता है| 1976 में कृष्णा सोबती का संस्मरण 'हम हशमत' प्रकाशित हुआ|अमृता प्रीतम का संस्मरण 'लाल धागे का रिश्ता' भी अपना विशेष महत्व रखता हैं| इसी वर्ष भगवतीचरण वर्मा की रचना 'अतीत के गर्त' से प्रकाशित हुई| डा. शकर दयाल सिंह, विष्णुप्रभाकर, सत्यजित राय आदि उल्लेखनीय है| इसके बाद कई रचनाकारों ने अपना रचनाओं के माध्यम से संस्मरण साहित्य को संपन्न बनाया है| समकालीन समय में संस्मरण में अधिक मात्रा में रचनाएँ नहीं होती| लेकिन कुछ रचनाकारों अपनी रचना के माध्यम से आज भी उस क्षेत्र को जीवंत बना रहे हैं| इसमें प्रमुख है अमरकांत| उनका प्रमुख संस्मरण है 'कुछ यादें कुछ बातें'| यह 2005 में प्रकाशित हुआ| विवेकीराय का संस्मरण 'आँगन के बंदनवार', विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का संस्मरण 'एक नाव के यात्री', शिवपूजन सहाय का 'स्मृतिशेष', शिवानी का 'मरण सागर पारे' और 'जालक'| संस्मरण के क्षेत्र में भी काशीजी का नाम उल्लेखनीय है| उनका तीन संस्मरण है 'याद हो कि न याद हो', 'घर का जोगी जोगडा', आच्छे दिन पाच्छे गए'| इन संस्मरणों में उनके परिचित रचनाकारों की बातें, अपने भाई नामवरजी के बारे में तथा अपने बचपन की यादों को समेटा है| स्वयंप्रकाश के 'हमसकरनामा' भी इस क्षेत्र में प्रमुख है|

V काशीनाथ सिंह का व्यक्तित्व और कृतित्व

काशीनाथ सिंह का जन्म ग्रामीण परिवेश में हुआ है| उपलब्ध सूत्रों के अनुसार बनारस शहर के पास में ही 'जीयनपुर' नामक छोटा सा गाँव है| इसी जीयनपुर गाँव में एक सामान्य किसान परिवार में दिनांक एक जनवरी 1937 को काशीनाथ सिंह का जन्म हुआ|

उनके पिता का नाम नागर सिंह था| नागर सिंह जीयनपुर गाँव का पहला मिडिल पास व्यक्ति थे| उनके पिता एक स्वाभिमानी व्यक्ति थे| खुद्दार किस्म के गुपचुप आदमी| नागर सिंह के स्वभाव की ये विशेषताएँ उनके बेटों में भी उसी रूप में मौजूद हैं| चारित्रिक दृढ़ता उनके स्वाभिमान का मूलाधार रहा है| अपने पिता संबंधी संस्मरण विवेचन में काशीनाथ सिंह आगे लिखते है – "उन्हें अपने बेटों पर गर्व था| लेकिन जाहिर नहीं करते थे| जब दूसरे उनके 'सौभाग्यशाली पिता' होने की चर्चा करते तो वे सिर झुका ऐसे सुनते जैसे उनसे कोई अपराध हुआ हो| कभी-कभी वे उनकी प्रशंसा सुनने की इच्छा से बेटों की भर्त्सना भी करते थे|"[1]

काशीनाथ सिंह की माता का नाम बागेश्वरी था| एकदम सरल और निरछल| उनकी माँ में एक प्रकार का भोला-भालापन, गवईपन था| यही सादगी और गंवाईपन काशीनाथ सिंह में भी देखी जा सकती है| बनारस जैसा शहर में रहने के बावजूद उसमें गँवई संस्कार मौजूद है| उनसे बात करने पर पता चलता है कि उन्हें अपने गाँव जीयनपुर से गहरा लगाव है| गाँव की बात आते ही आज भी वे उन अतीत की स्मृतियों में खो जाते हैं और देहात के किस्से सुनाते हैं|

कथाकार काशीनाथ सिंह व्यक्तित्व निर्माण के उनके गाँव का योगदान महत्वपूर्ण स्थान निभाता है| स्वयं कथाकार बनने के बारे में वे बताते हैं – "जिसे हम प्रकृति कहते हैं उस प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूरा गाँव था| इसके सिवा शादी-व्याह के मौकों पर, तीज-

[1] काशीनाथ सिंह, आच्छे दिन पाच्छे गए, पृ : 108

त्यौहार पर कभी कभी आते थे – नाइ कहर जो किस्से कहानियाँ सुनाया करते थे – रात रात भर| उन्हें सुनते में मेरी बड़ी दिलचस्पी थी| सोने से पहले मैं बराबर किस्से सुना करता था| कहानी कहने का ढंग, कहानी करने का शिल्प, ये उन्ही नाई –कहारों से और माँ से मैं ने सीखा| मुझे याद आ रहा है कि शुरुआत में मैंने एक कहानी लिखी थी – 'सुख'| और सुख कहानी में ताड़ों के पीछे डूबता हुए सूरज का दृश्य है| दरअसल वह कहानी लिखी गयी थी बनारस में लेकिन मेरी आँखों के सामने मेरे गाँव का डूबता हुआ वही सूरज था| इस कारण आप चाहे तो कह रकते हैं कि वे प्राकृतिक दृश्य, कहानी कहने की शैली, इन सबकी बड़ी भूमिका है – मेरे कथाकार होने में|"[1]

प्रारंभ से ही सीधा-सादा और प्राकृतिक सौन्दर्य से भरापूरा जीवन काशी जी को आकर्षित करता रहा| काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापक होने के बावजूद खेतों में काम करने में उन्हें बड़ा मज़ा आता था| इसमें उन्हें मानसिक तृप्ति मिलती थी|

काशीनाथ सिंह अपने परिवार का सबसे छोटा बेटा है| हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध समालोचक नामवर सिंह बड़े भाई हैं और रामजी सिंह मँझले भाई हैं|

काशीनाथ सिंह के साहित्यकार व्यक्तित्व के निर्माण में नामवर सिंह का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण माना जा सकता है| स्वयं काशीजी ने स्वीकारा है कि साहित्य के संस्कार तथा समर्पण का भाव उन्होंने नामवर सिंह से ही सीखा था| उन्हें नामवर जी के कारण

[1] काशीनाथ सिंह, आलोचना भी रचना है, पृ : 146

साहित्यिक वातावरण प्राप्त हुआ था| प्रारंभिक जीवन से ही काशीनाथ सिंह की रूचि कथा साहित्य में अधिक रही है| लगभग उन्नीस सौ साथ के आस-पास वे लिखने लगे थे|

काशीजी ने सबसे पहले अंग्रेज़ी में एक कहानी लिखकर नामवर जी के हाथ में सुधार के लिए दिया तो उन्होंने काशीजी को सुझाया कि अपने विचारों को अपनी ही भाषा में व्यक्त करना अच्छा है कहकर लौटा दिया| शुरू में नामवर जी को तृप्त करना कठिन कार्य था| जो कुछ लिख देने थे उन सब में पेन्सिल के निशान ही निशान होते थे| काशीजी यह भी मानते हैं कि नामवर सिंह के साथ रहने से ही उसने लिखना शुरू किया था|

काशीनाथ की आरंभिक दौर की पढ़ाई उनके गाँव जीयनपुर में हुई| गाँव के पास 'मर शहीद विद्या मंदिर' से हाईस्कूल पास करने के बाद सन् उन्नीस सौ तिरपन में वे मँझले भैया रामजी सिंह के साथ बनारस आये| बनारस आने के बाद यह शहर उनकी शिक्षा-दीक्षा का केन्द्र बन गया| काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सन् 1949 से लेकर सन् 1964 तक वे 'ऐतिहासिक व्याकरण कार्यालय' में शोध-सहायक रहे| 'हिन्दी में संयुक्त क्रियाएँ' विषय पर उन्होंने शोध-प्रबंध लिखा| प्रस्तुत शोध प्रबंध पर उन्हें 1963 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि मिली| सन् 1964 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में उन्हें अस्थायी तौर पर 'लेक्चररशिप' मिला| उसके बाद जुलाई 1965 में उन्हें पुनः प्राध्यापक पद पर नियुक्त किया गया| इस बीच उन्हें कई संघर्षों से भी गुजरना पड़ा| इन संघर्षो तथा आर्थिक परेशानियों की चर्चा लेखक ने अपने संस्मरण 'गरबीली गरीबी वह' में की है|

काशीनाथ सन् 1965 से लेकर 1996 तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में प्राध्यापक से लेकर प्रोफ़ेसर के रूप में कार्यरत रहे| 1991 से 1994 तक वे वहाँ आचार्य एवं अध्यक्ष पद पर रहे| दिसंबर 1996 में वे सेवा-निवृत्त हो गए| परंतु लेखन कार्य उनकी श्वास-प्रश्वास में अंतर्निहित है| आज भी काशीनाथ जी अपने लेखन कार्य में सक्रिय हैं|

i) रूचि

काशीनाथ सिंह पान और तमाखू के विशेष शौक़ीन है| उसे शाम के वक्त पैदल चलना ज्यादा अच्छा लगता था और चलते चलते बातें करना उन्हें विशेष प्रिय है| काशीनाथ सिंह मात्र साहित्य पर ही नहीं बोलते बल्कि उनके पास और भी अनेक विषय हैं| जिसमें राजनीति भारत की आर्थिक स्थिति, बनारस के लोग, सौन्दर्य बोध, फिल्म आदि के साथ-साथ साहित्य से जुड़े अनेक प्रसंग भी मौजूद थे|

काशीजी को फिल्मों में विशेष रूचि है| आज भी वे फिल्म देखना पसन्द करते हैं| इसका उल्लेख उन्होंने अपने संस्मरणों में भी एकाथ प्रसंग में किया है| ऐसा नहीं है कि वे मात्र कलात्मक फ़िल्में ही पसंद करते हैं बल्कि व्यावसायिक फ़िल्में भी उतनी ही पसंद करते हैं जितनी कि कलात्मक फ़िल्में| हिन्दी फिल्मों के प्रसिद्ध चरित्र अभिनेता 'बलराज साहनी' उनके प्रिय अभिनेता है| उनकी फ़िल्में काशीनाथ सिंह को विशेष रूप से पसन्द हैं| वर्तमान दौर रामगोपाल वर्मा द्वारा निर्देशित फिल्म 'सत्या' उन्हें विशेष पसंद आयी| मनोज वाजपेयी के अभिनय की उन्होंने विशेष रूप से प्रशंसा की| वर्तमान दौर की फिल्मों से संबंधित अपने विचार प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि - "मनोज वाजपयी और आशुतोष

राणा जैसे अभिनेताओं ने अपने अभिनय से फ़िल्मी जगत वर्तमान अभिजात मानसिकता को तोडा है| सुदूर गाँव से आने के बावजूद ये लोग हिंदी फिल्मों में बिलकुल सफल निकले हैं| इन कलाकारों या इस क्षेत्र में सफल प्रवेश एक अलग भविष्य की ओर संकेत करता है|"[1]

ii) अध्यापक – काशीनाथ सिंह

काशीनाथ सिंह केवल सफल कथाकार या संस्मरणकार ही नहीं बल्कि वे एक सहृदय व्यक्ति एवं लोकप्रिय अध्यापक है| विद्यार्थियों के चहेते अध्यापक है वे| काशीनाथ उन अध्यापकों में से नहीं है जो विश्वविद्यालय कक्षाओं तक ही अपने आप को सीमित रखते हैं| कक्षाओं के बाहर भी अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सतत ईमानदार रहते थे|

iii) लेखन कर्म और लोकजीवन

एक लेखक के रूप में प्रख्यात होने के बावजूद काशीनाथ सिंह सामान्य जीवन में एक सरल व्यक्ति है| उनके व्यक्तित्व में दुर्लभ सहजता है तो दूसरों को आकर्षित करती है| उनसे मिलनेवालों में सभी वर्ग के व्यक्ति है| जितनी आत्मीयता के साथ वे अध्यापकों तथा साहित्यकारों से मिलते हैं उतनी ही आत्मीयता के साथ वे साधारण से साधारण व्यक्ति से भी मिल लेते हैं| लोकजीवन से उन्हें गहरा लगाव है| उनकी व्यक्तिगत पहुँच लोकजीवन के आम और ख़ास मनुष्य के दिल-दिमाग तक होती है| मनुष्य की संवेदनाओं को वे दर्पण में देखने के बजाय उसे प्रत्यक्ष, गतिशील तथा अपने वास्तविक रूप में देखना चाहते हैं| यह तभी संभव है जब लेखक जीवन के विभिन्न अंगों से रूबरू रहें|

---

[1]

लोकजीवन से दूर रहकर कोई लेखक मूल्यवान लेखन कदापि नहीं कर सकता| काशीजी ने अपनी जनता के जीवन को समझा, परखा, महसूस किया और फिर उसको अपने लेखकीय दायित्व का लक्ष्य बनाया| इसी कारण उनका साहित्य पाठकों के हृदय को स्पर्श कर लेता है| उसे सोचने-विचारने के लिए मजबूर करता है| अपनी रचना प्रक्रिया और सोदेश्यता को स्पष्ट कसे हुए काशीनाथ सिंह का बयान है – "मैं वही लिखता हूँ जो बखूबी जानता हूँ| जिसे नहीं जानता हूँ या कम जानता हूँ, उसमें हाथ नहीं डालता कोशिश तो यहाँ तक रहती है कि लिखी जा रही चीज़ को जितना मैं जानूँ उतना और कोई न जानता हो, और अगर जानता भी हो तो कम से कम पढ़ते समय उसे लगे कि हाँ, यह रही वह चीज़ जिसे वह जानता तो था लेकिन कह नहीं पाता था या इस सफाई से नहीं कह पाता था|"[1] वास्तव में काशीनाथ सिंह की कोशिश रही है कि जो लिखा जाये उसे वे पहले समग्र रूप से जान सकें|

iv) कहानीकार काशीनाथ सिंह

काशीनाथ सिंह मूलतः कहानीकार थे| 'कहानी की वर्णमाला' नामक अपने लेख में उन्होंने बताया कि वह कहानीकार कैसे बना और कहानी उनके लिए क्या है| उन्होंने अपने संबंध में यों कहा था कि गंभीरतापूर्वक लिखना उन्होंने तब शुरू किया जब वे अपना शोध कार्य कर रहे थे| उस समय उनके घर का माहौल साहित्य से भरा-पूरा था| यानी एक ओर उनके भाई डा. नामवर सिंह का नाम साहित्य जगत में मशहूर था और 'नई कहानियाँ' और 'कहानी' आदि पत्रिकाओं में लगातार स्तंभ लिख रहे थे| इस कारण से उनके घर में

[1] काशीनाथ सिंह, आलोचना भी रचना है, पृ : 82

कहानीकारों के आना-जाना काफी होता था और साथ ही चर्चाएँ भी कहानियों पर हुआ करती थी| दूसरा कारण उनकी माँ और मँझलेभाई किसी घटना को कहानी के रूप में 'नैरेट' करते थे| ऐसे माहौल में कहानियों के प्रति विशेष लगाव रूपायित हुआ|

साहित्य जगत में अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश में काशीनाथ सिंह ने कई सबक सीखे| पहला यह था कि कहानी अंततः कहानी है, चाहे उसे जैसे और जितना तोड़ो मरोड़ो| दूसरा पाठ था कहानी विचारों से नहीं बनती, जिन्दगी से बनती है, वह जिन्दगी जो समाज में कई स्तरों पर फैली है और किसी रूप में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है|

अपने पहले कहानी संग्रह 'लोग बिस्तरों पर' के प्रकाशन के बाद काशीनाथ को अपने लेखकीय दायित्व का एहसास होने लगा| उन्हें लगा कि एक लेखक में चीजों को देखने की एक साफ दृष्टि होनी चाहिए, तथा रचना में सामाजिकता का पूत होना चाहिए| अतः उन्होंने अपनी रचनाओं में सामाजिकता और स्पष्ट दृष्टि की ओर विशेष ध्यान दिया| इन गुणों के कारण वे 'नयी कहानी' से अपनी पहचान को अलग करने में समर्थ निकले|

कहानीकार के रूप में उनका महत्वपूर्ण योगदान है| उनके सात कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं| पहला कहानी संग्रह 'लोग बिस्तरों पर 1968 में, दूसरा 'सुबह का डर' 1975 में, तीसरा 'आदमीनामा' 1978 में, चौथा 'नई तारीख तथा अन्य कहानियाँ' 1979 में, कल की फटेहाल कहानियाँ' 1980 में, 'प्रतिनिधि कहानियाँ' 1982 में, 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' 1986 में| हाल ही में उनके सभी कहानी संग्रहों को एक साथ प्रकाशित किया

"कहानी उपखान' नाम से| ये संग्रह यह जता देते हैं कि काशी एक ऐसा कहानीकार है जिन्होंने अपने समय के यथार्थ के साथ समझौता विहीन संग्राम किया है| शोषित एवं पीड़ित जनता के पक्षधर बनकर उनका साथ देने के लिए कटिबद्ध रचनाकार है काशी|

काशीजी का कहना है "मैं तो आदमी लिखता हूँ, वह कहानी बनेगा, इसका आश्वासन नहीं देता|"[1] उनके अनुसार जीवन की गतिशीलता में आदमी के नित्य बनते-बिगड़ते सरोकारों को रेखांकित करने की दृष्टि ही आदमी को लिखने का अभिप्राय है|

उनकी कहानियों में ऐतिहासिक ज़रूरतों से उत्पन्न सजग रचनाकार की दृष्टि है जो साठोत्तरी अर्थहीनता के गहरे अंधेरो से निकलकर कहानी को सामाजिक अर्थवत्ता प्रदान करती है| उनकी कहानियों का मूल स्वर व्यवस्था के चरित्र को पहचानना तथा जनतांत्रिक मूल्यों के संघर्षों को आगे बढ़ाना है| उनको मालूम था कि आदमी जिन्दगी जीता है, सिद्धांत को नहीं| इसलिए उनकी कहानियाँ 'आदमी' को समूची भूमिका में देखने की कोशिश हैं| इस कोशिश में कहानीकार टालस्टाय, चेखव और प्रेमचंद की ओर जाते हैं| प्रेमचंद आदमी को अपनी ज़मीन छोड़ने केलिए तैयार नहीं है उसी तरह काशी भी अपनी पात्रों के ज़मीन को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते| उनकी कहानियों में जीवन के सत्य को महसूस कराने की चेष्टा कई रूपों में हुई है| उसमें फैटेसी भी है और अतिरंजना भी|

अपनी कहानियों में राजनीति और प्रशासन की ही नहीं शिक्षा के क्षेत्रों, कारखानों, विभिन्न औद्योगिक प्रतिष्ठानों, स्वास्थ्य सेवाओं अस्पतालों में व्याप्त भृष्टाचारिता को दिखाने

[1] काशीनाथ सिंह, आलोचना भी रचना है, पृ : 29

की कोशिश की गई है| साथ ही साथ गाँवों की संक्रमणकालीन परिस्थितियों को भी अभिव्यक्त किया गया है| काशीनाथ सिंह एक प्रतिरोधी कहानीकार है| उनकी कहानियाँ विपक्ष में खड़ी हैं| भाषा कहानीकार की क्षमता का मापदण्ड हैं| उसमें अतिपरिचित ज़मीन से जुडी हुई सच्चाई की खुशबु होती है| हिंदी कहानी की सृजनात्मक बहुलता और उत्कृष्टता को एक मंच पर प्रस्तुत करने के प्रयास में प्रयत्नरत कहानीकार है काशीनाथ सिंह|

काशीनाथ सिंह को लोक जीवन से गहरा लगाव है| उन्होंने आम जनता के जीवन को समझा, परखा, महसूस किया| इसलिए उन्होंने अपनी कहानियों एवं लेखों के ज़रिए उसको अभिव्यक्ति देने का कार्य किया था| यही वजह है कि उनका साहित्य पाठको के हृदय का संस्पर्श कर लेता है| उसे सोचने-विचारने के लिए मजबूर करता है| ये सब उनके सामान्य लोक जीवन के प्रति आस्था का ही परिणाम है| इसी कारण उनकी रचनाओं में जीवानुभूती की गहरी पहचान हम देख सकते हैं| जीवन के यथार्थ को उन्होंने देखा और भोगा है|

अपनी रचना प्रक्रिया और सोद्देश्यता को स्पष्ट करते हुए काशीनाथ सिंह का बयान हैं – "मैं वही लिखता हूँ जो बखूबी जनता हूँ जिसे नहीं जानता हूँ या कम जनता हूँ उसमें हाथ नहीं डालता|"[1]

v) उपन्यासकार काशी

[1] काशीनाथ सिंह, काशीनाथ का संस्मरणात्मक साहित्य, पृ : 39

उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी कलम चलायी है| उनके पाँच उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं| पहला उपन्यास 'अपना मोर्चा' 1972 में, दूसरा उपन्यास 'काशी का अस्सी' 2003 में, तीसरा 'रेहन पर रग्घू' 2007 में, महुआचरित' 2012 में, पाँचवाँ उपन्यास उपसंहार 2014 में|

1. अपना मोर्चा

उनका पहला उपन्यास है 'अपना मोर्चा'| इसमें वर्तमान समय की युवा पीढ़ी के संघर्ष की सच्ची और प्रखर अभिव्यक्ति की गयी है| और इसमें देश के अंतर्विरोधों को उसकी जटिलताओं तथा कारणों सहित निर्भाक ढंग से प्रस्तुत किया गया है ताकि पाठक इससे सजग हो उठे| लेखक अपने कटु अनुभवों के ज़रिए पाठकों की संवेदना को जागृत करते हैं "किताब के कीड़ो! आखिर आँखे खोलकर देखो तो सही, देखने की कोशिश तो करो कि यहाँ कैम्पस में, शहर में देश में क्या हो रहा है?"[1] समाज के विविध स्तर पर जीनेवाले लोगों पर उन्होंने अपना आक्रोश प्रकट किया है| यह उपन्यास वर्तमान शिक्षा पद्धति तथा शिक्षा संस्थाओं के यथार्थ पर तीखा प्रहार करता है| आज की शिक्षा हमारी वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल नहीं हैं| इसमें समाजोंमुखता के स्थान पर जीवन विमुखता और नीरसता है| लेखक इस बात पर ज्यादा गौर करते हैं कि समूची औपनिवेशिक व्यवस्था को उखाड़ फेंककर एक स्वस्थ व्यवस्था का सृजन करना है| इसके लिए वे पीढ़ी को सजग भी करते चलते है| इस औपन्यासिक कृति में लेखक की परिपक्व सामाजिक और राजनीतिक समझ का परिचय मिलता है|

---

[1] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ :

2. काशी का अस्सी

काशी का अस्सी काशीनाथ सिंह का दूसरा उपन्यास है| यह 2002 में प्रकाशित है| बढ़ते बाज़ारवाद और उस में दम तोडती काशी की पारंपरिक संस्कृति इसका केन्द्र बिंदु है| आज संस्कृतियों का विस्थापन हो रहा है| इस पर ठीक ध्यान उपन्यास में दिया गया है| अस्सी पूरी काशी का प्रतीक बनकर खड़ा है| यह पूरी काशी एवं राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाले राजनीतिक एवं अन्य तमाम मुद्दों को उठानेवाला एक विश्व प्रतिक है| कुछ लोग 'काशी का अस्सी' बनारस पर लिखा गया शोकगीत मानते है|

यह बनारसी संस्कृति का मृत्युगीत है| भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद ने देश में देर से दस्तक दी, बनारस में बाज़ारवाद का चेहरा बहुत पहले से मौजद है| यह उपन्यास अपने इतिवृत्त और व्यग्यार्थ की बदौलत इक्कीसवीं सदी के मुहाने पर दस्तक देती बीसवीं सदी के आखिरी दो दशकों का महा-आख्यान उपस्थित करता है| इसके कथ्य एवं शिल्प की खूबियों एवं खामियों को सरल समीक्षा पद्धति के ज़रिए नहीं समझा जा सकता|

इसमें इस यथार्थ को दर्शाया गया है कि स्वदेशी-प्रचार के पाखंड के बीच ग्लोबलाइजेशन की अमेरिकी अंधड़ में कैसे सदियों से अर्जित सामुदायिक जीवन की खूबियाँ तथा देशी लोक संस्कृति धराशायी होती जा रही है| इसकी महागाथा है काशी का अस्सी'| बीसवीं-इक्कीसवीं सदियों का अद्वितीय संधिपत्र है यह उपन्यास|

3. रेहन पर रग्घू

उनका तीसरा उपन्यास है 'रेहन पर रग्घू'। इसका प्रकाशन 2007 में हुआ। इसमें आज के विभिन्न द्वन्द्वों की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति हुई है। इसकी कथावस्तु एक कस्बाई ग्रामीण मानसिकतावाले डिग्री कॉलेज के अध्यापक की व्यथा पर केंद्रित है वह अपने परिवार की बेहतरी केलिए हर सम्भव प्रयास करता है। पर संतानों के बढ़ते हुए रुझान के कारण अकेला पड जाता है। आज के बाज़ारवाद के दौर में रिश्तों को पैसे की कीमत पर देखनेवाले लोगो की मानसिकता का चित्रण हुआ है। इसके शिकार बने बूढ़े माँ-बांप उन के जीवन के अकेलापन, मृत्युबोध आदि का चित्रण भी किया गया है। उपन्यासकार ने समसामजिक कई समस्याओं का उल्लेख इस उपन्यास में किया है। उपन्यास में मानवता के समक्ष जिस संकट की अभिव्यक्ति है वह भले ही पुरे समाज में वर्तमान न हो पर आसन्न है। उससे आगाह कराना भी इसकी सबसे बड़ी विशिष्टता है।

4. महुआचरित

यह काशीजी का एक लघु उपन्यास है। इसका प्रकाशन 2012 में हुआ है। रचनाकार इस लघु उपन्यास में 'महुआ' नामक एक युवती के जीवन की आपार अरण्य में भटकती इच्छाओं का आख्यान करता है। मध्यवर्गीय समाज की सच्चाईयों को लेखन ने विशिष्ट कथा-रस के साथ प्रकट किया है। यह उपन्यास जिस शिल्प में अभिव्यक्त किया गया है वह कथा-संसार का एक नया प्रयोग ही था। छोटे-बड़े वाक्यों, असमाप्त-अपूर्ण वाक्यों के संकेतों के माध्यम से बहुआयामी अर्थ बिम्बों का निर्माण हम देख सकते है। इस उपन्यास के पात्र महुआ की सहेली है उसके मकान की छत। यह कल्पना ही अपने आप में अनूठा और व्यंजक है।

इसका विषय तो एक मध्यवर्गीय परिवार की स्त्री की कथा है| अस्सी साल के स्वतंत्रता सेनानी पिता की पुत्री महुआ की देहासक्ति से विवाह तक की यात्रा और एक पत्नी बनते वक्त उसमें जागती अस्मिता बोध को उपन्यासकार ने समुचित सामाजिक सन्दर्भों के साथ प्रस्तुत किया है| इस उपन्यास में स्त्री विमर्श की अनुगूँज के बावजूद यह प्रश्न भी सक्रिय है "ऐसा क्या है देह में कि उसका तो कुछ नहीं बिगड़ता| लेकिन मन का सारा रिश्ता-नाता तहस-नहस हो जाता है|"[1]

5. उपसंहार

इसमें कृष्ण के जीवन के अंतिम दिनों की कथा कही गई है| यह जितनी कृष्ण की कथा है उतनी ही द्वारका के बनने और बिगड़ने की भी| द्वारका उनकी देन है, उनकी सृष्टि| लेकिन महाभारत जैसे महायुद्ध के उपरांत इसी द्वारका में कृष्ण का एक और रूप दिखाई पड़ता है| यह रूप ईश्वरीय अलौकिकता से दूर एक ऐसे मनुष्य का है जिसका असाधारण उपलब्धियों के पीछे खड़ी विफलताएँ अब एक-एक कर सामने आ रही है| जिस कृष्ण के विराट रूप के सामने कुरुक्षेत्र में अठारह अक्षौहिणी सेना पराजित हो गये थे, वही कृष्ण अब अवश नज़र आते हैं| कुछ सवाल हमारे सामने लाते है कि आखिर क्या है जय का सच्चा अर्थ? क्या तमाम सफलताएँ अन्तः विफलता में क्यों तिरोहित होती है? मानवीय जीवन के ऐसे अनेक मूलभूत प्रश्नों पर 'उपसंहार' नए सिरे से प्रकाश डालता है| 'महाभारत' के बारे में कहा जाता है कि जो कुछ दुनिया में है वह महाभारत में है और जो उसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है| 'उपसंहार' पढ़कर यह कथन की सत्यता को हम समझ सकते है|

---

[1] काशीनाथ सिंह, महुआचरित, पृ : 78

वास्तव में काशीनाथ की कोशिश रही है कि जो लिखा जाए उसे वे पहले समग्र रूप से जान जाए| उनका दृष्टिकोण हम उनके ही संस्मरणों में देख सकते हैं| इतनी सारी कहानी लिखने के बाद भी उसे लगता था कि कहानियों में वह पूरी तरह से अपनी क्षमता को व्यक्त नहीं कर पा रहा है| कुछ न कुछ छुट जाने का दुःख था| उनके अनुसार कहानियों में पात्र है, स्थितियाँ हैं, संवेदनाएँ है पर वह हमेशा बाहर ही रह जाता है| इसलिए उन्होंने अपने आप को व्यक्त करने के लिए संस्मरणों की रचना शुरू कर दी| उनको पूर्ण रूप से समझाने के लिए उनके लेखकीय व्यक्तित्व को पहचानने के लिए संस्मरणों को पढना काफी है|

vi) संस्मरण साहित्य

उनका कुल मिलकर तीन संस्मरण है| पहला है 'याद हो कि न याद हो', यह 1992 में प्रकाशित हुआ| इसमें काशीजी के सात आत्मकथात्मक या संस्मरणात्मक निबंध सग्रहीत है| 87 से 91 यानी चार साल की अवधि में लिखे गए सात निबंधो में हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, त्रिलोचन शास्त्री, नामवर सिंह, धूमिल, रविन्द्र कालिया, विजय मोहन सिंह, दधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, नागानंद जैसे विश्वविद्यालय के सहकर्मचारियों का उल्लेख हुआ है| उनका दूसरा संस्मरण है 'घर का जोगी जोगडा' इसमें नामवर जी की पत्नी की मृत्यु उसके बाद की जीवन गाथा फ्लैश बैक शैली में प्रस्तुत की है| तीसरा संस्मरण है 'आच्छे दिन पाछे गए' इसमें काशी जी के बचपन और इक्कीसवीं सदी में देश का हाल परिवेश त्रैमासिक पत्रिका के बारे में लिखा है|

vii) नाटककार

काशीनाथ जी मात्र कहानियाँ और संस्मरण ही नहीं लिखते थे| उन्होंने 1967 में 'घोआस' नामक एक नाटक लिखा| इस नाटक में पहाड़ी क्षेत्र के एक कस्बे और उसके आस पास के परिवेश को रेखांकित किया गया है| घोआस असंगत नाटक के अंतर्गत आता है| इसमें मानव की अकर्मण्यता को बड़े सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है|

viii) आलोचना

'आलोचना भी रचना है' काशीनाथ सिंह का आलोचनात्मक ग्रन्थ है जिसमें उनके बारह आलोचनात्मक लेख संग्रहित हैं जैसे धूमिल, जनवादी लेखन, गोदान कहानी की वर्णमाला आदि| आज की कविता का व्याकरण लेख में उन्होंने आज की कविता के बारे में अपनी राय प्रस्तुत की है|

उनकी अन्य रचना है – 'हिंदी में संयुक्त क्रियाएँ' जो उनका शोध प्रबंध का मुद्रित संस्मरण है| इस शोध कार्य के दौरान उन्हें यह मालुम हुआ कि भाषा हमारी तरह एक जीवित सावयव प्रक्रिया है, जिसके भीतर फैले हुए संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय वगैरह वायु जल की तरह है| इसके साथ उन्हें यह ज्ञान भी होने लगा कि कम से कम शब्दों से अधिक बात कहनी चाहिए, सही जगह पर सही शुद्ध रखने की आदत डालनी चाहिए|

इसके साथ कई विदेशी भाषाओं में उनकी कहानियों का अनुवाद हो चूका है| 'आधुनिक एशियाई साहित्य' सीरीज के अंतर्गत 'वार्ताश ने सेन सेन' के नाम से 'अपना मोर्चा' का अनुवाद हो चुका है| अपना मोर्चा कोरियाई भाषा में भी अनुदित है| जापानी में

अनुदित कहानियों का एक संग्रह भी है| लेखकों – सांस्कृतिक कर्मियों के सम्मेलन के सिलसिले में जापान-यात्रा भी की है|

पुरुस्कार

कथा सम्मान, समुच्चय सम्मान, साहित्य भूषण सम्मान, आदि से विभूषित है काशीजी 'साठ के काशी और काशी का साठ' शीर्षक से 'कहन' पत्रिका एक पुस्तक 2000 में प्रकाशित की है| इसको 2001 में शरद जोशी सम्मान मिला| 2011 में 'रेहन पर रग्घू' नामक उपन्यास को केन्द्र साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला|

इस प्रकार अपनी रचनाओं के माध्यम से काशीनाथ सिंह ने साहित्यिक विधाओं को संपुष्ट ही नहीं किया अन्य विधाओं पर अपनी लेखनी सफलतापूर्वक चलायी है| उन्होंने अपनी सक्रियता और रचना धर्मिता के कारण हिंदी साहित्य को अधिक प्रभावित किया है|

स्थान

साहित्यकार जिस युग और समाज में रहता है उससे वह प्रभाव एवं प्रेरणा ग्रहण कर लेता है| उसके संस्कार, विचार आदि पर युग की गहरी छाप पड़ती है| ऐसे युग बोध से सम्पन्न रचनाकार गहरी सामजिक प्रतिबद्धता का दायित्व निभाता है| साहित्यकार का संबंध समाज से है| हर एक युग के साहित्यकार अपने रचना के माध्यम से समाज में व्याप्त अन्याय एवं अत्याचारों का पर्दाफाश करके समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं| समकालीन कहानीकारों ने भी साहित्यकार की एक भूमिका को सफलतापूर्वक निभाया है|

नई कहानी में मोहभंग की स्थिति गहरी थी| समकालीन कहानीकारों ने कहानी के मोहभंग की स्थिति से बाहर निकालकर जीवन की वास्तविकता से परिचित कराया| छद्म मूल्याभासों से मुक्त किया| "इस दौर के कहानीकारों ने इस तरह के साँचो में बंद मूल्यों को एकबारगी तिलांजलि दे दी और वह जीवन स्थितियों के यथार्थ को समझने में प्रवृत्त हुआ|"[1]

समकालीन कहानीकार कहानी की यथार्थवादी परम्परा और समकालीन जिन्दगी की वास्तविकता से जुड़कर कहानी को समृद्ध बनाया| समकालीन कहानीकार अपने इस दायित्व को पूरी ईमानदारी से निभा रहा हैं|

समकालीन कहानीकारों के अंतर्गत नई कहानी के दौर के कुछ प्रतिनिधि हस्ताक्षर भी हैं, जिन्होंने उस ज़माने में भी आम जनता के दुःख दर्द और संघर्षों को लेकर कहानी लिख रहे थे| भैरव प्रसाद गुप्त, अमरकांत, शेखर जोशी, मार्कण्डेय, भीष्म साहनी आदि कहानीकारों ने नयी कहानी से समकालीन तक अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को ओझल होने नहीं दिया| समकालीन कहानी के प्रतिनिधि कथाकारों में ज्ञानरंजन, बदीउज्जमा, काशीनाथ सिंह, मृणाल पाण्डे, स्वयंप्रकाश, रमेश उपाध्याय, अजहर वजाहत, मैत्रेय पुष्पा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं| ये सभी कहानीकार समकालीन इसलिए हैं कि वे संपूर्ण यथार्थवादी परंपरा से अपने समय के सत्य का उद्घाटन कर रहे हैं|

समकालीन कहानीकारों में काशीनाथ सिंह का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है| उन्होंने अपने कथायात्रा को न तो उनके सांस्कृतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक विकासक्रम

[1] समकालीन कहानियाँ (2) से नरेंद्र मोहन, पृ : 50

से काटकर प्रस्तुत किया है और न ही रचना को बौद्धिक तथा कलात्मक पक्षों से भर दिया है| "काशीनाथ सिंह की कहानियाँ ऐतिहासिक ज़रूरत से उत्पन्न एक सजग रचनाकार की सृष्टि है, जो साठोत्तरी अर्थहीनता की अनेक गहरी अँधेरी गुफाओं से निकालकर कहानी को सामाजिक अर्थवत्ता देती है|"[1] उन्होंने कहानी को जनवादी मूल्यों से भरकर साधारण जनता के संघर्ष में हाथ बँटाया|

काशीनाथ सिंह की गणना ऐसे कथाकारों में की जाती है जिन्होंने कहानी में प्रमाणिकता रूप से जीवन के बहुआयामी यथार्थ को चित्रित करते हुए उसे बेहतर बनाने की कोशिश की| काशीनाथ सिंह ने अपनी रचनाओं द्वारा समकालीनता की अवधारणा को बहुत ही सशक्त एवं प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है| कहानी की वास्तविक ज़मीन पर खड़े होने के कारण उन्हें कभी कथानक गढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ी, उन्होंने अपनी परिवेश से ही कहानी के लिए आवश्यक सामग्री को इकठ्ठा किया| उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की छाप सहज ही लक्षित की जा सकती है|

समकालीन रचनाकारों में काशीनाथ सिंह का एक अलग स्थान है| साहित्य के क्षेत्र में एक कहानीकार के रूप में आकर उपन्यासकार, समीक्षक एवं नाटककार के रूप में काशीनाथ सिंह विख्यात हुआ है| हमारी भारतीय संस्कृति एवं साधारण लोगों के जीवन को आधार बनाकर अपने समसामयिक मुद्दों पर प्रकाश डालने में वे सक्षम निकले हैं| लेखन उनके श्वास और प्रश्वास में अंतर्निहित है| आज भी काशीनाथ सिंह अपने लेखन में सक्रिय है| भविष्य में भी उनसे अच्छी रचनाएँ पढने की आशा कर सकते हैं|

---

[1] वागर्थ, अंक 2, सितंबर 1998, पृ : 28

दूसरा अध्याय

काशीनाथ सिंह की कहानियाँ

दूसरा अध्याय

कहानीकार काशीनाथ सिंह

"साहित्य समाज का दर्पण है"| वह सामजिक चेतना का संवाहक मात्र नहीं बल्कि उसे दिशा-निर्देश भी करता है| साहित्यकार की सृजनात्मक प्रतिभा के निर्माण में समसामयिक परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ है | साहित्यकार जिस युग और समाज में रहता है उससे वह प्रेरणा और प्रभाव प्राप्त करता है| उसके विचार, संस्कार आदि पर युग की गहरी छाप पड़ती है| साहित्यकार का सम्बन्ध वस्तुतः समसामयिक समस्याओं से है| वे अपनी रचना कौशल से समाज में व्याप्त अन्याय और अत्याचारों का पर्दाफाश करके समस्याओं की भीषणता से अवगत कराते हैं और दिशा निर्देश करते हैं| समकालीन कहानीकारों ने भी साहित्यकार की इस भूमिका को सफलतापूर्वक निभाया है|

नई कहानी सचमुच मोहभंग की स्थिति से उद्भुत थी| समकालीन कहानीकारों ने कहानी को मोहभंग कि स्थिति से बाहर निकालकर जीवन की वास्तविकता से जूझने का सशक्त माध्यम बना दिया है| इन कहानीकारों ने कहानी को छदम मुल्याभासों से मुक्त किया, जिसे हम विगत वर्षो से अपने कंधे पर ढोते रहे – "इस दौर के कहानीकारों ने इस तरह से साँचों में बंद मूल्यों को एकबारगी निलांजलि दे दी और वह जीवन स्थितियों के यथार्थ को समझने में प्रवृत्त हुआ|"[1]

समकालीन रचना या रचनाकार से यह अपेक्षा की जाती कि वह अपने समय की मांग को पूरा करें| उन्हें सत्य का बोध होना चाहिए| समाज में व्याप्त विद्रूपताओं और अनाचारों

[1] नरेन्द्र मोहन, समकालीन कहानियाँ, पृ : 50

को दूर करने में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए| वस्तुतः समकालीन कहानीकारों वे हैं जो कहानी की यथार्थवादी परंपरा और समकालीन जिन्दगी की वास्तिविकता से जुड़कर कहानी को समृद्ध बनाने में कोशिश कर रहे है| समकालीन कहानीकार अपने इस दायित्व को पूरी ईमानदारी से निभा रहे हैं|

समकालीन कहानी के क्षेत्र में नई कहानी के दौर के कई हस्ताक्षर सक्रिय है जिन्होंने उस जमाने में भी आम जनता के दुख-दर्द और संघर्षो को लेकर कहानी लिखते रहे थे इन कहानीकारों ने नई कहानी से लेकर नवम दशक तक की कहानियों में भी अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को ओझल होने नहीं दिया| समकालीन कहानी के प्रतिनिधि कथाकारों में ज्ञानरंजन, बदिउज्जमा, काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, कृष्णा सोबती, ममता कालिया, सतीश जमाली, स्वयंप्रकाश, अजहर वजाहत, निरुपमा सेवती, शिवमूर्ति, मैत्रेयि पुष्प अदि के नाम है|

ये सभी कहानीकार समकालीन इस लिए है कि वे यथार्थवादी परंपरा के अपने लेखन को सम्बद्ध करके समय के सत्य का उदघाटन कर रहे हैं | उन्होंने अपने समकालीन जीवन के अर्थविशेधों को कहानी के स्थान देने के साथ उस दौर की मानसिकता को बड़े सशक्त संदर्भों में परिभाषित भी किया हैं|

समकालीन कहानीकारों में काशीनाथ सिंह का अपना एक महतवपूर्ण स्थान है | उन्होंने अपनी कथायात्रा को न तो संस्कृतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक विकासक्रम से काटकर प्रस्तुत किया हैं और न ही रचना को भौतिकता से भर कर दिया हैं – “काशीनाथ

सिंह की कहानियाँ ऐतिहासिक जरूरत से उत्पन्न एक सजग रचनाकार की सृष्टि है, जो साठोत्तरी अर्थहीनता की अनेक गहरी अँधेरी गुफायो से निकलकर कहानी को सामाजिक अर्थवत्ता देती है|"[1] उन्होंने कहानी को जनवादी मूल्यों से भरकर साधारण जनता के संघर्ष में अपना हाथ बँटाया|

काशीनाथ सिंह की गणना ऐसे कथाकारों में की जाती है जिन्होंने कहानी में प्रामाजिक रूप से जीवन के बहुआयमी यथार्थ को चिंचित करते हुए उसे बेहतर बनाने की कोशिश की|

काशीजी की कहानियां समाज के अन्थिवरोधो की पहचान करती है| एक और वे असामाजिक वृत्तिवालो की ओर इशारा करती है तो दूसरी ओर ऐसे प्रश्नों को भी सामने लाते है जो समाज की कुव्यवस्था को समाप्त करने के लिए संघर्ष करते है| प्रह्लाद अग्रवाल का मत है की "काशिनाथजी की बहुत बडी विशेषता है – भ्रष्ट परिवेश के साथ समझोता न कर पाना| वे बड़ी सहजता से बहुत गहरी बात कर जाते हैं| यही सहजता उनकी भाषा में भी है जो अपने आस - पास के जीवन से भी बेहिचक ले ली गई हैं|"[2]

काशीजी का मत हैं कि एक लेखक में चीजों को देखने की एक साफ़ दृष्टि होनी चाहिए और रचना में सामाजिकता का पुट अनिवार्य भी हैं| इसी बात को ध्यान में रखकर उन्होंने

[1] वागर्थ, अंक 2, सितंबर 1998, पृ : 28

[2] प्रह्लाद अग्रवाल, हिन्दी कहानी सातवाँ दशक, पृ : 43

रचना करना शुरू किया| इन गुणों के कारण वे उस समय के अन्य रचनाकर से बढकर अपनी एक अलग पहचान बनाने में समर्थ हुए|

काशीजी ने अपनी कहानियो में आम आदमी को उसकी समूची भूमिका में देखने की कोशश की हैं| उनकी कहानियो में जीवन की गतिशीलता में आदमी की नित्य बनने बिगड़ने संबंधों को रेखाकित किया हैं| मधुरेशा के अनुसार – " कशीनाथ सिंह की कहानियां पढने के दौरान शक्ति और उर्जसम्पन्ना सक्रिय आदमियों के बीच होने का एहसास हमेशा बना रहता है|"[1]

1. <u>सामाजिकता</u>

परिवेश के प्रति गहरी जागरुकता के कारण कहानीकार अपनी आन्तरिकता को सामाजिकता से संलग्न कर देती हैं| समकालीन कहानियों के अन्य कहानीकारों की तरह काशीनाथ सिंह ने अपनी कहानियों में सामाजिक आस्था को प्रकट किया हैं| विवेच्य कहानियां वस्तुतः काशीनाथ सिंह की सामाजिक संलग्नता को ही प्रमाणित करनी हैं|

आधुनिक युग में अर्थ केंद्रित हैं| जन-जीवन के उतार-चढाव का कारण ही अर्थ हैं| किसी भी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठ का निर्णय उसकी आर्थिक स्थिति से किया जाता हैं| इसलिए अर्थ की प्रप्ति के लिए लोग कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं| कविता की नई तारीख कहानी में सानु एक ऐसा पत्र हैं जो समाज में सम्मान पाने की लिए तथा अपनी आर्थिक स्थिति को बनाये रखने के लिए रिश्वत लेते हैं और ऐसे लोगों का साथ संबंध रखता

[1] मधुरेश, सिलसिला, पृ : 106

हैं| उसके लिए पैसे है सबकुछ हैं| पैसे के कारण लोग इज्जत भी करते हैं| " सेठों के सम्मान के कवियों द्वारा सम्मान कही बड़ी चीज हैं – हर हालात में बड़ी..... आप यकीन कीजिए भाई साहब, शुरू में चंदा देने से पहले में बेमतलब के कम करने के लिए उन्हें ऐसे डांटता हूँ जैसे अपनी धोबिन को, फिर भी वो मेरी इज्जत करते हैं|"[1] सानू की पत्नी रेखा भी इसी मानसिकता को लेकर चलती हैं|

कहानी के सभी पात्र मध्यमवर्ग के हैं| इसके ठीक विपरीत कहानी का दूसरा पात्र कविजी और उसकी पत्नी माध्यम वर्ग के लोगो का प्रथिनिधित्व करते हैं जो अपनी छोटी तनख्वाह से अपने परिवार को ख़ुशी नहीं रख पाते| सानू की चकाचक जिन्दगी में कविजी जब लीन हो जाते हैं तो पत्नी प्रश्न करती हैं की " यहाँ किस तरह मैं तुम्हे उन सारी सुविधायों की तरफ ललचाई आँखों से ताकते हुए देखती हूँ तो सोचती हूँ – बुरा न मानना मेरी बात का – सोचती हूँ कि कही इनके खिलाफ तुम इसलिए तो नहीं थे कि ये दुसरो के पास क्यों है – तुम्हारे पास क्यों नही हैं|"[2] काशीनाथ सिंह ने अपनी पत्नी के माध्यम से मध्यवर्गीय मानसिकता को प्रस्तुत किया हैं|

पैसा मनुष्य को अहंग्रस्त एवं संवेदनशुन्य बना देता हैं पैसे के रहते मनुष्य की मनोवृत्ति बदलती रहती है इसका चित्रण इस कहानी के माद्यम से सप्स्ट की हैं| काशीजी ने इस कहानी माद्यम से यह स्पस्ट किया हैं की धन मनुष्य को अन्धा बना देता हैं और हमारे

[1] काशीनाथ सिंह, कहानी उपखान, पृ : 384

[2] काशीनाथ सिंह, कहानी उपखान, पृ : 370

सामाजिक कर्तव्य को भी भुला देता हैं| जिनके अंदर सामाजिक मूल्य कायम रहते हैं वे पैसे की झूटी दुनिया से अपने को बचाकर शान एव स्वस्थ जिंदगी जीते हैं, कमियों के रहते है फिर भी वे उस जिन्दगी को स्वर्ग बनाते हैं|

संवेदनशुन्यता आज समाज का एक प्रमुख मुद्दा हैं| "एक बूढ़े की कहानी" में काशीजी इस तथ्य को प्रस्तुत किया हैं| कहानी का आरंभ नदी में आई हुई बाढ़ के वर्णन से हैं| लोग तो इस सामाजिक संकट की केवल एक दिलचस्प तमाशा मान कर देखते हैं| संकट की प्रत्यक्ष उपस्थिथि होने पर भी उसे दूर करने के लिए परिवर्तनकारी सक्रियता का आभाव हैं| उनके अनुसार यह अंतर्विरोध संवेदनशुन्यता के कारण हैं|

एस बाढ़ का वर्णन के बाद एक छोटी सी बच्ची की बलत्कार का वर्णन हैं| कहानीकार एक बूढ़े और दो युवकों की बातचीत के माद्यम से इस घटना का वर्णन करते हैं| लेकिन बूढ़े द्वारा बलात्कार की बात कहने पर युवा लोग एक मजाक मानकर सुनते हैं| युवक कहता हैं – "कही उस छोकरी को उढा ले जाने वाले तुम्ही तो नहीं थे|"[1] यहाँ कहानीकार बूढ़े के माध्यम से युवा पीढ़ी की संवेदनशुन्यता को दिखाते है| "तो यह बात हैं| बच्ची भी छोकरी है और छोकरी तो छोकरी ही हैं तुम्हारे लिए सब कुछ हँसी और मजाक की चीज़ हैं| न कोई शर्म न कोई लिहाज| न करने के लिए बात हैं और न सुनाने के लिए कान| समझ तो जैसे रह ही नहीं गई| खैर, छोडो| तुमको इससे क्या मतलब कि मुझे ये बात कैसे मालुम हुई|"[2]

[1] काशीनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, एक बूढे की कहानी, पृ : 80

[2] काशीनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, एक बूढे की कहानी, पृ : 79

दूसरा अध्याय

कहानी सुननेवाले बूढ़े ने सामाजिक अनिति अन्याय और वर्ग –भेद की गहरी बाते युवको को समझाने की कोशिश की लेकिन युवको की इन सब में कोई रुची नहीं थी| वे कहते है – " अच्छा बहुत अच्छा| अब उसके बाप की बात मत करो| हाँ उसके बाप से हमे कुछ नहीं हासिल होने का| असल चीज लड़की हैं|

हाय! मुल्क में इतनी साडी लड़कियां है और एक भी मेरे बिस्तर पर नहीं!|"[1]

समाज में विभिन्न प्रकार के लोग रहते है| कुछ तो सकारात्मक प्रवृत्तियों के तरफदार होने हैं तो कुछ नकारात्मक हरकतों के तरफदार| शहरी जीवन की यांत्रिकता और उसकी व्यवस्था से मध्यावर्गीय व्यक्ति इतना घुल मिल जाता हैं कि उसे दूसरे का न कोई ख्याल होता है न ही उसके हाल चाल पूछने की फुरसत| हरदम अपने मैं मस्त, सुविधापूर्ण जीवन बिताता हैं कभी किसी बाधा को वह बर्दाश्त नहीं कर पाता| उससे वह जलदी ही छुटकारा पाना भी चाहता है, ' अपना रास्ता लो बाबा' मैं इस तथ्य को हमारे सामने प्रस्तुत किया हैं| इस कहानी का देवनाथ ऐसे एक मध्य वर्ग प्रतिनिधि पात्र हैं जो अपनी आराम परस्त जिंदगी के लिए गाँव से आनेवाले ताऊजी को एक बाधा के रूप में महसूस करत हैं| वह उनसे अत्मीयता पूर्व व्यवहार तो करता हैं लेकिन भीतर ही भीतर उनके आने को लेकर परेशान हैं| कहानी के अन्त में वह अपने आप से कहता हैं – "छोड़ो जी चलो – सारी जिंदगी, सारी

[1] काशीनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, एक बूढे की कहानी, पृ : 80

दुनिया और सारा जमाना तुम्हारे सामने पडा हैं और एक बेमतलब के बुड्डे को लेकर मुँह लटकाए बैठे हैं|"[1]

कहानीकार ने इस कहानी के माध्यम से धन-सम्पत्ति कि अधिकता से उत्पन्न आमानवीयता का चित्रण किया हैं| उन्होंने इसका ब्यौरा ही प्रस्तुत नहीं किया बल्कि पाठकों को सोचने के लिए मजबूर किया है|

दरअसल कहानीकार अपने समय के सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं| समाज में रहनेवाले लोगो को व्यवहार और उनकी मानसिकता को उन्होने अपनी कहानी का विषय बनाया हैं| 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' मैं लोगो की खुशामादी की प्रवृति पर प्रकाश डालकर कहानीकार ने हमारे समय के सामाजिक सत्य को प्रस्तुत किया हैं| लोग हमेशा सुख-सुविधा पूर्ण जिन्दंगी गुजारना चाहते हैं| लेकिन वे मेहनत नहीं करते लेकिन चाहते हैं कि वे मुफत में मिल जाये| वे ऐसी जिन्दगी के लिए किसी का भी खुशामद करने को तैयार हैं और कही तक गिरते भी हैं| इस कहानी में एक पुराना रईस है जो अजीब किस्म के शौक रखते हैं| वे खिड़की के पास तम्बाकू मुँह में डालकर बाहर गली की तरफ थूकते हैं| उन्होंने यह ऐलान कर रखा हैं कि जिसके शारीर पर उसके पान की पीक पड़ेगी उसे इनाम के तौर पर कपडे का नया सेट दिया जायेगा| काशीजी उन लोगो पर व्यंग्य करते हैं जो मुफ्त की जिन्दगी जीना चाहते हैं|

[1] काशीनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, एक बूढे की कहानी, पृ : 314

लेकिन इस कहानी का पुराना रईस की ऐसे बहादुरों की तलाश हैं जो प्रतिक्रिया करते, कपडे ख़राब होते ही गालिया देते हैं| शैक साहब ऐसे लोगो को पाकर खुश हो जाते हैं और उनका आदर सम्मान करते हैं| लेकिन लोग यह इनाम की बात सुनकर खिड़की की नीचे उसकी पीक का इंतजार में खड़े रहते हैं|

इस कहानी में कहानीकार ने एक मामूली से अंधनंगे आदमी को प्रस्तुत किया हैं जो शौक साहब को चुनौती देता हैं| वह नौजवान शौक साहब की पीक से बच निकलता है| अन्तः जीत उस नौजवान की होती है| वह अन्न तक पान की पीक से बच लेता है| कहानीकार ने उसी की सदी को सबसे बड़ा आदमी माना है|

काशीनाथ ने इस कहानी में मनुष्य की आराम परस्त जिंदगी की ओर डटकर पर व्यंग किया हैं| कहानी में शौक साहब की मेहरबानी के लिए अपने कामधाम छोड़कर गली में इकट्ठे लोगों को उस नौजवान पर क्रोध थे क्योकि वह उनका मौका छीन रहा था – "फिर भी उसे यह खल रहा था कि इस ससुरे को कपडे लत्ते और अन तो छोड़ा भी लेकर किनारे होना चाहिए और दूसरे की मौका देना चाहिए इतने लोग अपना काम – धाम छोड़कर इतनी देर के इतने दिन से खड़े हैं, कुछ तो सोचना चाहिए"|[1]

कहानी में नौजवान के माध्यम से यह तथ्य प्रस्तुत किया गया हैं कि समाज में जब प्रतिक्रिया करनेवाले लोग आते है तभी समज प्रगति कर सकता है| जो व्यवस्था को चुनौती देकर अपने उसूलों पर अडिंग रहता है वही समाज में बदलाव की आकांक्षा रख सकता हैं|

[1] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, सदी का सबसे बड़ा आदमी:पृः

दूसरा अध्याय

जातिवाद

जाति के क्षेत्र में अनके परिवर्तन आए| एक हद तक ऊँच नीच, वर्ग जाति आदि के बंधन टूटने लगे और मानव मात्र की समानता की भावना पनपने लगी| धार्मिक सामाजिक आन्दोलनों तथा गाँधी जैसे युग प्रवर्तकों के प्रयासों ने जाति के कठोर बंधन पर प्रहार किया और समानता का पटाया| लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत की राजनीती में जाति को पुनः प्रमुखता मिलने लगे| "फिर भारत के स्वतंत्र होने पर वोट की राजनीती ने भी सामाजिक समानता की स्थापना में महतवपूर्ण भूमिका निभायी|[1]

काशीनाथ सिंह की कई कहानियां जातिवाद के जड़ संस्कारों पर चोट करती हैं| उनकी कहानी 'वे तीन घर' जातिवाद के जड़ संसकारों पर चोट करनेवाली हैं| "वामन के घर जाओ या ठाकुर के, खड़े रहो| बैठना हो तो मचिया या मोटा कही से और बैठ जाओ| कुआ हम खोदे लेकिन हमें पानी पीनी हो तो चुल्लू फेंकेंगो, लोकर लो बात| अगर तुम हमारे घर पैदा होते तो पता चलता कि चमार होना क्या होता"|[2]

गावों में चमारो ने उनके कार्यकिए जैसे – "मैं डोमों की तो गहराई से नहीं जनता, लेकिन तुम जिन्हें चमार कहते हैं, उनके बीच पैदा हुआ है और काम किया है मैंने| गावों में भी और शहर में भी| गावो में उन्होंने क्या - क्या किया है तुम्हारे लिए? तुम्हारे दीवारे खड़ी की हैं, उनके भीतर तुम्हे बसाया हैं, तुम्हारे खेत जोते हैं, उन्हें सीचा हैं, काटा हैं, खलियान में

[1] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान,यूगबोध का संधर्भः पृः 41

[2] काशीनाथ सिंहः वे तीन घर : पृः 274

ढोकर ओसाया| और उनकी औरते? उन्होने तुम्हारी माँ की कोख से तुम्हे जन्माया हैं, तुम्हारे नार कांटे हैं, मालिशें की हैं, छातियों में दूध न उतरने पर दूध पिलाया हैं और बरही के बाद तुम्हारे माँ बाप ने उन्हें तुमको छूने का हक़ नहीं दिया हैं"|[1]

स्वतंत्रता के पश्चात भारत के गाँवो का सामाजिक एवं आर्थिक परिदृश्य परिवर्तन हो गया| छोटी समझी जाने वाली जातियां ऊपर आ गयी और विगत वैभव के नशे में बैठे रहने वाले बड़े लोग इनके सामने छोटे हो गए| काशीनाथ सिंह की "कहानी सराय मोहन की" में बाबु साहब ठाकुर तथा पंडितजी की भी यही स्थिति हैं "एक जमाना वह था जब हम मुस्कुराते थे तो दुनिया बस जाती थी, पलक उठाते देर नहीं होती थी कि बस्तिया स्वाहा हो जाती थी और आज यह है की कुत्ता सारा मालमंत्त लेकर भाग जा रहा है और हम बैठे कौड़ा ताप रहे है"| [2] कहानी में उच्च वर्ग की अनैतिकता और दुष्चरित्रता को ही इसका कारण मानते हैं इस प्रकार यह कहानी उच्य जातियों की मानसिकता का पर्दाफाश करती हैं| इस कहानी को तीन पत्रों के संवादों के माध्यम से जातिगत संस्कारों के टूटने की बात हमरे सम्मुख रखते हैं| भूख ने तीनों आदमियों को जाति के नाम पर नहीं इंसानियत के नाम पर एक कर दिया हें| यहाँ कहानीकार कोइ आदर्श की सृष्टि नहीं करते बल्कि यथार्थ के चित्रण के तहत यह कहने का प्रयास करते हैं कि ये जड़ संस्कार मानवता के आगे की प्रयाण झड़ ही जायेंगे|

[1] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, वे तीन घरः पृः 272

[2] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, वे तीन घरः पृः 342

जातीयता का लोप और नए संबंधो का विकास तेजी से हो रहे हैं| इसका चिंतण भी उनकी कहानीयों में हम देख सकते हैं| ' वे तीन घर ' में मदन ब्राहमण होकर भी शूद्रों के साथ मानवता का वयवहार करता है वैसे ही वे भी ब्राहमण होते हुए विपत के गहरे दोस्त बन गये थे| विपत ने आगे चलकर उनके जीवन का दर्शन ही बदल दिया था| उन्ही चलते मदन ने कभी जनेऊ की मर्यादा नहीं रखी कच्ची पक्की के चक्कर में नहीं पड़े, बाप की कडी शिक्षा के बावजूद किसी के घर 'संयनारायण' की कथा नहीं सुनाई – उन्होंने ब्राह्मणों में कुजात कहलाना पसन्द किया और सबसे अपना नाता तोड़ दिया'|[1]

कहानीकार ने इस कहानी के जरिए जातीयता के रूढ बंधनों पर प्रहार किया हैं| समाज में वे ही लोग अच्छे कहे जाते हैं, जो अच्छे कर्म करते हैं| अच्छे कर्म का मतलब समाज को प्रगती पर ले जाने का कार्य| मदन दूसरों के लिए कुछ न करते पर भी अपने आदर्श को पकडे हुए रहता हैं| विपतराम अपनी ही जाती के लोगों की कमजोरियों को जानकर उनसे फायदा उठाता हैं| विपतराम के मुँह से ही कहानीकार यह बात जाहिर करता हैं कि किस प्रकार निम्नवर्ग के लोग अधिकार पाकर भ्रष्ट हो जाते हैं| विपतराम मदन से कहता हैं – "लेकिन चिंता की बात यह नहीं, दूसरी हैं| आरक्षण के चलते हममें से जो भी अफसर या हाकिम हो रहे हैं, वे उस सारी जहालत और जलालत को भूल जा रहे हैं और ठाकुरों – बामनों के बीच उठने – बैठेने, में गर्व अनुभव कर रहे हैं| मैंने एक चमार अफसर को अपने

[1] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, वे तीन घरः पृः 267

भाई – बन्दों के एक मामले से दूसरों को समझाते हुए यह कहते सुना है भाई जाने दो हटाओ| आखिर है तो चमार ही"|[1]

नारी चेतना

काशीजी ने अपनि कहानियों के माध्यम से नारी जीवन की विभिन्न झांकियों को प्रस्तुत किया है| भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था को सुक्ष्मता से अद्ययन करते हुए सामन्ती पुरुष मानसिकता और संस्कारो में बसी स्त्री छवि और उसकी सामाजिक स्थिति की जाँच पड़ताल की हैं| नारी के विभिंन रूपों को और उनकी समस्याओ को कई कहानियो ने अपना विषय बनाया हैं|

'संकट' नामक कहानी में मूलतः विवाह संस्था में स्त्री को 'घरेलु गुलाम' और पति परमेश्वर की कामपिपसा शांत करने का साधन समझनेवाली मानसिकता के विरुद्ध प्रहार हैं| पत्नी को बेटा जन्मा हैं| दो-तीन दिन पहले ही जाचगी से बाहरनिकली हैं| पति फौजी हैं वो छह- सात दिन की छुट्टी पर आया हैं और पत्नी सुख न मिलने पर मार - पीट, गाली – गलौच पर उतारू हैं| समझाने आये दोस्तो से कहता हैं – " मैं एक औरत देखता हूँ तो सोचता हूँ अगर होना ही था, तो यह गाय , बकरी या भैंस न होकर औरत क्यूँ हुई? मैं औरत को 'हेट' माने नफरत करता हूँ'|[2]

[1] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, वे तीन घर: पृ:268

[2] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, संकट पृ: 29

उसे अपनी सामने पत्नी का छींकना बर्दाश्त हैं और न हंसना| उनके अनुसार ऐसा करनेवाली कल कुछ भी कर सकती हैं| पति का अंतिम फैसला हैं " अगर वह औरत हैं तो औरत की तरह रहों"|[1] हम सब जानते हैं की औरत की तरह रहने का नियम| घर में पति के कामों में कोइए बाधा न होना चाहिए| माहवारी हो या गर्भ या नवप्रसूता – पुरुष की यौन कामना शांत होने में कोइ संकट नहीं होना चाहिए| दरअसल असली संकट तो स्त्रियो के लिए हैं| 'ना' करे तो घर में 'संकट' और 'हाँ' करे तो जीवन 'संकट' में| कहानी के अन्त में पति चीखता हैं कि – "बच्चे को होना ही था तो क्या यह दो चार महीने आगे पीछे नहीं हों सकता था| उसे मेरी छुट्टी में ही होने की क्या जरुरत थी"|[2]

औरत होना शाप मानकर जीनेवाली एक औरत की कथा हैं 'क़स्बा जंगल और साहब की पत्नी'| इस कहानी का मुख्य पात्र मिसेस गोठी| पति जंगल विभाग में अफसर और रोमांटिक तबियत के आदमी हैं| माँ न बन पाने के दुःख को मिटाने एवं अपने जीवन के अकेलापन से मुक्त होने के लिए मिसेस गोठी किसी न किसी कामो में उलझती रहती हैं| वह अकसर कहती हैं की "रोज – रोज बच्चा पैदा करना अछी बात नहीं और बच्चे ही पैदा करना तो सब कुछ नहीं हैं"|[3]

[1] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, संकट पृ: 28

[2] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, संकट पृ: 30

[3] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, क़स्बा जंगल और साहब की पत्नी: पृ: 41

पत्नी सभी समय मुस्कुराती रहती हैं और लोगों को विश्वास दिलाती हैं की सुखी और संतुस्ट औरत हैं| मन ही मन अपना घुटन महसूस करती हैं| वह सोचती हैं – "तेजी से भागती हुई अपनी उम्र, ढीला पड़ता शारीर चेहरे पर बनती रेखाएं और अब तक का जिया हुआ अर्थहीन जीवन"|[1] उनकी आँखों के सामने उभर आता हैं तो लगता हैं कि "पूरा जीवन, जिसमें जिंदगी की तमाम संभावनाए और आशाए निहित थी, बेमतलब कपूर की तरह उड़ा जा रहा हैं"|[2]

एक और औरत की दर्दनाक कहानी हमारे सामने प्रस्तुत की गयी हैं| औरत अपनी अस्मिता की पहचानती हैं| लेकिन वह चाहने पर भी कुछ नहीं कर पाती| ऐसा पात्र हैं मेसिस गोठी|

चायघर की 'मृत्यु' एक विधवा फुआ के दुखद जीवन की कथा हैं| इस कहानी की फुआ, हम सब की फुआ हैं| समाज-सुधार आन्दोलनों एवं संघर्षों के कारण थोडा बहुत बदलाव तो ज़रूरत हुआ हैं, लेकिन गाँवों में यह बदलाव बहुत कम हैं| क्योंकि यहाँ के लोग काफी पुरानपंथी हैं| हमारे वर्तमान समाज में स्त्री और स्त्रीत्व के प्रति वांछित सम्मान नहीं हैं| विधवा को सभी कार्यों में अमंगल मन जाता हैं| अतः सभी लोग फुआ की मृत्यु चाहते हैं| ऐसा न होने पर लोग नाराज हो उठते हैं| "लोगों का कहानी था की फुआ मरती नहीं, सबको तंग करने में मजा लेती हैं| और फुआ से पूछा जाना, तो वे उदास हो जाती| उनकी आंखे

[1] काशीनाथ सिंह, कहानी ऊपरवान, क़स्बा जंगल और साहब की पत्नी: पृ: 52

[2] काशीनाथ सिंह, कहानी ऊपरवान, क़स्बा जंगल और साहब की पत्नी: पृ: 52

डबडबा आती| उनके नथने फड़क उठते| और वे सहसा आँचल मुँह छिपाकर बिलख पड़ती| उनकी पीठ, जिस पर कफ़नवाले कपडे की कुर्ती थी; देर तक हिलती रहती|"[1]

घरवालों के इस बर्ताव के कारण फुआ बहुत दुखी हैं| वह जल्द से जल्द मरना चाहती हैं| फुआ की प्राथना है की उसकी वजह से किसी को दोष न हो जाये| अन्त में फुआ मर जाती हैं| घरवाले जल्दी ही देहसंस्कार करना चाहते हैं| "हम खामोश थे| ऐसा नहीं था कि फुआ के मरने से हम दुखी थे| हमारी चुप्पी कुछ अजीब सी थी| इन्सान की चुप्पी से बिलकुल भिन्न| हममें से हर व्यक्ति आंतंकित था और एक – दूसरे के आँखे बचाकर लाश को देखना चाहता था| सबको आशंका थी कि किसी समय लाश हिल - डुल सकती थी| बांस धिसट सकते हैं| फुआ टिकठी पर उठकर बैंठ सकती हैं"|[2] घरवालो ने रातों रात फुआ का अन्तिम संस्कार किया| उस दाह संस्कार की लेकर कहानीकार को ऐसा लगा की – "और फिर लाश का जलना..... गर्म, काली और लिसलिसी बूंदों का चूना, शारीर पर काले-काले चकत्तों का बनना पपड़ियों का पड़ना – चकत्तों का जलना, ऐंठना, भस्म होना..... लकड़ियों और हड्डियों का चरखना चटखने जाना और फिर सिकुड़कर सलाख की तरह लाल होना..... गुंधे आट की तरह लाश के उस अवशिष्ट को आंच के बीच के बीच लटठे से ले ठेलते ले जाना.... था| वह लाश नहीं थी.... |"[3]

---

[1] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, चायघर की मृत्युः पृः 37

[2] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, चायघर की मृत्युः पृः 38

[3] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, चायघर की मृत्युः पृः39

इस कहानी में विधवाओं की समस्या और एक एक विधवा के अंतर्रसंघर्षों को चित्रित किया गया हैं| एक अन्य कहानी हैं ' आखिरीरात' इसमें नारी की और एक स्थिति का अंकन प्रस्तुत किया गया हैं| एक पति औए एक पत्नी के एक रात का वर्णन हैं| पति एक प्रणयी पति हैं जो पत्नी से अत्यधिक प्रेम करता हैं| पत्नी के मायके जाने से पहले पत्नी के प्रति भरपूर प्यार प्रदर्शित करता हैं| दोनों एकांत में छत पर बैठ कर प्रेमालाप करता हैं| पत्नी चाहती हैं आज की रात ऐसा हो जिसे वे अलगाव में भी याद रख सकें| कुछ समय पश्चात् पत्नी हाथों की उँगलियों पर कुछ गिनने लगती हैं| कहती हैं कि – "भाभी, मुन्नी, बच्चों के लिए कुछ दीजिएगा नहीं"|[1] पति पत्नी को समझाता हैं –"महीने अंतिम दिन में"|[2] पत्नी ये उत्तर पाकर उदास हो जाती हैं| निराश होकर कहती हैं कि "क्या आप मुझे प्यार नहीं करते?"[3] पति झल्ला पडता है " साडी ब्लौउज, फ्राक शर्ट ..... इन सबके माने क्या होता हैं, जानती हो|"[4]

इसके बाद एक ख़ामोशी पति - पत्नी को अलग अलग कर देती हैं एक तनाव और दबी दबी सांसे रह गए हैं| कमरे से पत्नी के सिसकने की आवाज आती हैं पति सोचता हैं कि आखिरि रात का अन्त जब भी होता हैं ऐसा ही होता हैं|

एक मद्यवर्गीय परिवार की पत्नी जो पति से केवल शाब्दिक प्यार पाति हैं| पत्नी भी अपने प्यार को खुलकर प्रकट भी नहीं कर सकती| अधिक मांगने पर आया तो अलगांव

[1] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, आखिरी रात पृः 24
[2] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, आखिरी रात पृः 24
[3] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, आखिरी रात पृः 24
[4] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, आखिरी रात पृः 24

मिलता हैं या दुख| जो नारी आत्मनिर्भर नहीं हैं वह पति से इसके अधिक मांग नहीं कर सकती| वह नारी जो परम्परावादी हैं उसका संसार उसका पति हैं वह जैसा भी रखें प्रसन्न रहेगी अभावों को कभी नहीं कहेगी| सब कुछ सहना, जीवन भर पति कल लिए अपनी स्वामी के लिए| लेकिन पति पत्नी के लिए कुछ न सहे और निर्ममता से उसके अरमानों की हत्या कर दे|

वैसी एक औरत का चरित्र हमें 'सुख' नामक कहानी में भी देख सकते हैं| पत्नी ने ही जीवन भर पति की सेवा एवं घर ग्रहस्थी संभाला हैं| लेकिन कहानी के एक प्रसंग में भोलाबबू उनसे चिल्लाकर कहती हैं कि - "अच्छा बड़ा अच्छा कर रही हो| अब एक काम करो की चलो | चुलहा फूंको"| [1] वो भी आत्मनिर्भर नही हैं| इसलिए भोलाबाबू के मन में एक ऐसा विचार बँसा हुआ हैं कि औरत का काम तो चुल्हा फूंकना एवं बच्चो का पालन ही हैं|

इस प्रकार काशीजी ने अपनी कहानियों में औरत की विभिन्न स्थितियों को हमारे सामने प्रस्तुत किया हैं| इसके अलावा कहानीकार ने एक बाप द्वारा बेटी के बलत्कार को प्रथम बार अपनी कहानी का विषय बनाया| 'एक बूँद की कहानी में कहानीकार इस विषय को अपनाया हैं|

राजनीतिक चेतना

साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होने के कारण अपने परिवेश एवं वातवरण से निश्चित रूप से प्रभीवित होता हैं| इस कारण से वह समाज में हो रही राजनितिक

[1] काशीनाथ सिंह, कहानी उपरवान, सुखः पृ:14

गथिविधियों से भी अभिज्ञ रहता हैं| समकालीन कहानी की अन्य कहानियों की तरह काशीनाथ सिंह की कहानियों में भी राजनीतिक चेतना की धारा विशेष रूप से प्रवाहमान हैं| उन्होंने अपनी कहानियों में भ्रष्टाचार में लिपटी शासन व्यवस्था, वर्ग, संघर्ष व्यवस्था के विरुद्ध संघर्षरत आदमी के अंतर्द्वन्द्व और व्यक्ति चेतना के परिवर्तित रूपों का पर्दा फाश करने की कोशिश की हैं| काशीजी की सबसे बड़ी विशेषता हैं भ्रष्ट परिवेश से समझौता नहीं कर पाना| जीवन की विद्रूपताओं पर सीधा प्रहार करते हैं| प्रह्लाद अग्रवाल के अनुसार काशिनाथ सिंह की कहानियाँ लगातार लड़ाई जरी रखनेवाले आदमी के अंतर्द्वन्द्व की कहानियां हैं और उनकी लडाई खुद उसके अपने खिलाफ भी हैं, क्यूंकि कही न कही वह खुद भी इस व्यवस्था से जुड़ा हुआ हैं|

काशीनाथ सिंह की माननीय होम मिनिस्टर के नाम मुसईचा, लाल किले के बज, सुधीर घोषाल, जंगल जतकम, मिसाजातकम, सिद्दकी की सनक, वे तीन घर, कविता की नई तारीख, आदमी का आदमी आदि कहानियों में राजनितिक मुद्दों की उठाया गया हैं|

आजकल राजनीति के नाम पर जो कुछ हो रहा हैं वे सब स्वार्थ मोह एवं आधिकार मोह पर केन्द्रित हैं| राजनीति का अर्थ सिर्फ अधिकार मोह पर केन्द्रित हैं| राजनीति का अर्थ सिर्फ अधिकार मात्र बनकर रह गया हैं| लोग राजनीति में प्रवेश कर के अधिकार को मनमाने ढंग से अपने फायदे के लिए उपयोग करते हैं “आज के राजनितिक परिदृश्य की सबसे बड़ी विसंगति राजनितिक व्यवस्ता का भ्रष्ट होना हैं| संसद के सड़क तक प्रत्येक स्तर

पर पग – पग पर भ्रष्ट व्यवस्था हैं|"[1] देश में व्याप्त भाई भतीजावाद को इस कहानी में प्रस्तुत किया हैं| "माननीय होम मिनिस्टर के नाम" कहानी में सरकारी कर्मचारियों और नेताओं के भ्रष्टाचार का भंडा फोड़ करती हैं ये सब मिलकर जनता की मुर्ख बनाते हैं और अपना जेब भरती हैं| निचे से लेकर ऊपर तक अधिकारीयों और नेताओं का घूस, लेन – देन, दलाली करने का एक लंम्बा सिलसिला हैं, जिसमें गाँव की भोली - भाली जनता पिस जाती हैं| इस कहानी का एक पात्र हैं शामप्रसाद मौर्या जो किसानों के सेवक नेता के रूप में हमरे सामने आते हैं| ये जनता को अपने साथ लेकर चलते हैं जो मौके के मुताबिक गाली गलोज, मारपीट, अंदोलन प्रदर्शन कुछ भी करते हैं| यह किसानों को अधिकार के लिए बड़े जन सेवक के रूप धारण करता हैं और कहता हैं "ऐसे-ऐसे पचासों कानूनों मेरा दाएँ – बाएँ झूलते रहते हैं मेरी मर्जी पर हैं ये लोग| जब चाहू तब चुटकी बजाकर हमेशा के लिए छुट्टी कर दूं"|[2]

जनता को मौर्या का असली रूप मालुम हो जाता हैं और वे इसके विरुद्ध अपना आक्रोश प्रकट करने केलिए तैयार हो जाती हैं| आखिर तंग आकर मौर्या से कहती हैं – "हुक तीन घंटे से आपको ढून्ढ रहे हैं" – " कभी यहाँ कभी वहाँ| यहाँ छिपे बैठे हैं और ऊपर से मख्की मार रहे हैं इस तरह क्या घूर रहे हैं आप समझते हम डर जाएंगे"|[3]

---

[1] पुष्पपाल सिंह; समकालीन कहानी सोच और समझ; पृ: 72

[2] काशीनाथ सिंह; कहानी उपरवान; माननीय होम मिनिस्टर के नाम: पृ: 156

[3] काशीनाथ सिंह; कहानी उपरवान; माननीय होम मिनिस्टर के नाम: पृ: 158

दूसरा अध्याय

हमारी राजनीति में मौर्या जैसे कई लोग हैं जब उसका असली रूप सामने आता हैं तब भी यह हार मानते नहीं और अपने स्वभाव वश नेतागिरी दिखाते रहते हैं| कहानीकार ने मौर्या के जरिये ऐसे राजनितिक नेताओं का पोल खोलकर रख दिया हैं| ये लोग जनता की कमजोरियों को जानते हैं और इन कमजोरियों के बल पर वे जनता को अपने इशारे नचाते हैं| कहानी में जनता का विद्रोह भी प्रकट किया गया हैं| जब तक जनता ऐसे लोगों को पहचानेगी नहीं तब तक इनके इशारों पर नाचती रहेंगी| वर्तमान राजनीति को इस तरह विकृत एवं बेढग बनाने मैं मौर्य जैसा लोग ही जिम्मेदार हैं|

हमारे देश की सबसे बड़ी विसंगति हैं बेरोजगारी की समस्या| देश में करोड़ों व्यक्ति रोजगार की तलाश में भटक रहे हैं| लोग पढते तो जरुर हैं लेकिन उसे कभी नौकरी नसीब नहीं होती| नौकरी न मिलने के कारण उनकी जिंदगी का नक्शा ही बदल जाता हैं और आदमी कहां से कहाँ पहुच सकता हैं इसका अंदाज भी नहीं लगा सकता 'मुसइचा' में इस समस्या को प्रस्तुत किया गया हैं| आज हमारे देश की ऐसी स्थिति हो गई हैं| कहानीकार खुद इसको सपष्ट करके लिखता हैं – "यदि वह किसी मालदार आदमी का बेटा होता, या किसी मंत्री या अफसर का रिश्तेदार होता या जमीनदार होता या उसके पास कोई जबरदस्त पाँव होता तो आज वह सब लिखने की नौबत ही न आती जो मैं लिखने जा रहा हूँ"| [1]

कहीं भी ठिकाना पाने के लिए जीवन में संघर्ष कर रहा हैं| नौकरी पाने के केलिए वह किसी की आँख फोड़ सकता हैं तो किसी को मरते हुए देखकर भी उसकी जगह केलिए झगडा

[1] काशीनाथ सिंह; कहानी उपरवान; मुसइचा: पृ: 160

कर सकता हैं| इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता हैं – वर्तमान जनतांत्रिक वय्वास्था के प्रति अविश्वास| छल कपट से पैंसे बनानेवाले मालिक से मार – पीट करने के लिए भी मुसइचा तैयार हो जाती हैं| हमरे जनतंत्र एवं षड़यंत्र हैं जिसके कारण लाखों नौजवान नौकरी से वंचित रहते हैं| सरकार के इस निति के खिलाफ लोंगों ने अपना विरोध प्रकट करना शुरू किया और उनकी चेतना में क्रांतिकारी रूपांतरण आ चूका हैं|

मुसईचा कहते हैं – "साथियों मेरी जिन्दंगी के बेहतरीन दिन ..... रोजगार की तलाश में ख़तम हो गए आपस की छिना झपट में जैसा कि तुम्हारे जैसे तुम्हारे हो रहे हैं| ..... मैं तुम सबके लिए उस षड्यंत्र का सबूत हो सकता हैं जिसे जनतंत्र कहते हैं|[1]

समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो क्रन्तिकारी होने का ढोंग करता हैं और क्रांती के प्रति एक प्रकार का रोमांटिक दृष्टिकोण अपनाता हैं| "लाल किले के बाज" कहानी का जादू नमक पात्र एक ऐसे राजनितिक नेता का परिचय कराता हैं, जो अपने आप को बड़ा क्रांतिकारी समझते हैं| लेकिन वे देश में क्रांती के माद्यम से परिवर्तन लाना नहीं चाहता पर अपने जीवन की हर एक घटना को वह क्रांती से जोड़ता हैं| लेकिन क्रांती की असली जोश उनमे नहीं हैं| क्रान्तिकारी संगठन से जुड़े रहने का कारण हर समय उन्हें मुल्क में क्रान्तिकारी स्थितिया नजर आती थी| हर समय यह चिंता उन्हें घेर लेती हैं की इस मुल्क में कोई लेनिन क्यौं नहीं हैं| अपने आप को लेनिन जैसे बनाने का निश्चय करता हैं और सुहागरात में वह पत्नी सोना को 'दासकापिटल' भेंट करता हैं| वह अपनी शादी को क्रांती से

[1] काशीनाथ सिंह; कहानी उपरवान; मुसईचा: पृ: 165-166

जोड़ता हैं| शादी के बारे में वह अपनी डायरी में ऐसा लिखता हैं – 'सन 1857 ई. के ऐतिहासिक ग़दर के लगभग एक सो पन्द्रह वर्ष बाद मेरे जीवन की राज्यक्रांती घटित हुई|"[1]

शादी में दहेज़ के रूप में प्राप्त उपकरणों से वह परेशान हो उठाता था कि क्या इससे उनके क्रांतीकारी इमेज को कोई ठेस पहुचायेगा| पत्नी के घर से विदा लेकर जब दोनें कार पर बैठकर जा रहे थे तब उसकी बीबी का सिर उसके कंधो पर था तो जादू उसे जगाकर कहने लगा "डियर..... यह कन्धा किसी नारी के सिर के लिए नहीं, राइफल के कुंदे के लिए है"| [2]

हर क्षण मार्क्सवादी वाक्या बोलनेवाले और अपनी निजी जीवन में सामंती किस्म का आचरण करने वाले तथाकथित नेताओं का प्रतीक है जादू| अपनी बहन के घर में रहते हुए नौकरों से तेल मालिश करवाते हुए वर्ग संघर्ष की शिक्षा देता हैं – "उन्होंने तकिया खीचकर सिर थोडा ऊँचा किया, रुको उंगलियां ऐसे मत तोड़ो उन्हें ठीक से सहलाओ| हाँ इस तरह सहलाकर| नरमी के साथ तो मैं तो कह रहा था की ठाकुर साहब का सारा आबा काबा तुम्हारी, तुम जैसे टेर सारे लोंगों की मेहनत पर खड़ा हैं| तुम्हे पता नही चला और तुम्हारी बुद्धि, शरीर, अत्मा, सब कुछ दीवारों के भीतर कैद हैं| जब तक यह नहीं ठहेंगी, इन्हें नहीं तोडा जायेगा तब तक मुक्त नहीं होगा, और इन्हें तोड़ेगा कौन? कौन तोडेगा इन्हें? ये ही मजबूत हाथ, भारी पंजे..... कुदाल और फरसे श्वेत मैं नहीं इसकी नीव पर चलेंगे रब|"[3]

---

[1] काशीनाथ सिंह; कहानी उपरवान; लाल किले के बाज पृ:

[2] काशीनाथ सिंह; कहानी उपरवान; लाल किले के बाज पृ:

[3] काशीनाथ सिंह; कहानी उपरवान; लाल किले के बाज पृ:

जादू के माद्यम से कहानीकार ने उन लोगो का चित्रण किया हैं जो अवसरवादी क्रांती के बल पर व्यवस्था में बदलाव लाना नहीं चाहता|

जंगलजातकम एक नवींन शैली में रची गयी कहानी हैं| इसमें कहानीकार मुख्य रूप से मनुष्य और जंगल के बीच के संबंध की स्पष्ट करती हैं| इसमें कुछ ऐसे तत्वों को समाया गया हैं जो हमें आपातकाल की स्थिथि की ओर ले जाते हैं| साथ ही साथ समाज में फैले प्रति क्रांतिकारी तत्वों को समझाकर समाज के क्रान्तिकारी परिवर्तन की प्रतिक्रिया को तेज करनेवाली स्थितियों की ओर संकेत करती हैं|

'स' इलाके के जंगल में सभी पेड़ पौधे बहुत शांत एवं खुशाल जिंदगी जी रहे थे| उनकी अपनी दुनिया थी, अपने मजे में थे लेकिन अचानक उनकी शान्ति भरी जिंदगी को भंग करते हुए मनुष्य का एक समूह जंगल में आ पहूँचता हैं और वे पेड़ तो पहली बार मनुष्य को देख रहे थे मनुष्य के नेता अपने साथियों से कहने लगा – "बहादुरों' यह वह बस्ती हैं जिसे हमें उजाड़ना हैं ख़त्म करना हैं| हमें मनुष्यों के लिए मिल खड़ी कर करनी हैं कारखाने बनाने हैं, कोयला की खान खोलनी हैं| हमें जल्द ही उनकी वजूद को मिटा देना हैं .....|"[1] वस्तुतः कहानीकार मनुष्य की घोषणा से आपातकालीन में हुई औधोगिक प्रगति के दुष्परिणामों की ओर संकेत करता हैं| औधोगिकरण से एक और समाज विकास के पथ पर अग्रसर था तो दूसरी ओर प्रकृतिक संतुलन बिगड़ता रहा| नए नए उद्योग धंधे और कारखाने बनाने के उद्देश्य से सैकड़ों पेड़ कांटे गए ओर अनेक जंगल उजाड़े गए|

[1] काशीनाथ सिंह; कहानी उपरवान;पृ: 168

दूसरा अध्याय

जंगल में बसनेवाले पेड़ यहाँ आम आदमी का प्रतिक हैं जो सभी दुष्परिणामों को झेलने के लिए अभिशप्त था| आम जनता की प्रतिक्रिया का कुछ भी असर नहीं पडता| ये बुद्दि और करबल से इनके ऊपर अपना हक़ जमाते हैं और उनका शोषण करते हैं|

जंगल में बसनेवाले एक पेड़ ने मनुष्य और पेड़ के पुराने संबंध के बारे में कहा कि मनुष्य के लिए पेड़ सब कुछ निछावर करते थे और आज भी करने केलिए प्रस्तुत हैं| लेकिंन मनुष्य मानने के लिए तैयार नहीं था| तभी जंगल का सबसे बुजुर्ग पेड़ 'बरगद' ने मनुष्य से क्रोध होकर वहाँ से दफा हो जाने की निर्देश दिया| मनुष्य ने यह सुनकर आर्य बरगद पर कुल्हाड़ी मरने का निर्देश दिया| लेकिन बरगद पर इसका कुछ असर नहीं पड़ा| वह निर्भीग होकर सीना तानकर वही खड़ा हुआ|

मनुष्य के सामने निर्भीक रहकर भी आर्य बरगद अंदर ही अंदर परेशान थे| क्यूंकि वे मनुष्य के स्वाभाव को बखूबी जानते थे| मनुष्य जंगल के कमज़ोर पेड़ को अपनी बातों में बहला-फुसलाकर अपनी ओर कर देंगे हवा से जब इसकी सूचना मिली तो वे मूर्छित होकर गिर जाये| जब वे होश में आए तो सभी को सम्बोधित कर कहने लगे| "आदमी लोहा और पेड़ सब महान है और सभी को एक दुसरे से हाथ मिलाकर चलना हैं" ऐसा कहकर आर्य बरगद ने आँखे मूँद ली|

एक अलग तरह की शैली में रची गयी इस कहानी में कहानीकार ने एक साथ कई तथ्यों को प्रस्तुत किया हैं| एक ओर उन्होंने प्रक्रति और मनुष्य के अंतरंग संबंध को स्पष्ट किया हैं तो दूसरी ओर आपातकाल के दुष्परिणामों की ओर संकेत किया हैं| इस कहानी के

आर्य बरगद के माध्यम से उन्होंने जनता की शक्ती को प्रस्तुत किया हैं| शत्रु चाहे जितना भी शक्तिशाली हो अगर खुद पर भरोसा हैं तो कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता – बूढ़े बरगद के माध्यम से कहानीकार ने मनुष्य की एकता और अस्मिता का महत्व बताया हैं|

नक्सलवादी आन्दोलन से सीधा प्रभाव ग्रहण कर लिखी गयी काशीजी की कहानी " सुधीर घोषाल"| यह जनवादी आन्दोलन की पहली कहानी हैं| इसमें मिल के प्रबन्धक और मजदूर के बीच के संघर्ष को स्पस्ट किया गया हैं| मजदूर वर्ग की एकता कितनी ताकतवर होती हैं इसका चित्रण इसमें हैं| कहानी का नायक हैं सुधीर घोषाल, जो अपने मजदूर भाइयों की हत्या का बदला लेने के लिए प्रशासक को मार देता है| वह बार - बार कहता है – "हम ज़िन्दा नेई छोड़ेंगे इसको| माफिक हाय, कतल के माफिक हाय आन्दोलन नेई| हैं तो, आमरा साथी लोग भी बोलेगा बाकी हम विल्प्व की प्रतिव्खा नेई कोरेगा| किसी रोज ताड़ाताड़ी इहाँ से चला जायेगा| हम फाँसी पड जाएगा बाकी छोड़ेगा नेई ..... नेई .....नेई"| [1]

यह कहानी मक्स्वादी विचारधारा के प्रति लेखाक की प्रतिबद्धता को स्पष्ट करती हैं| सिद्धान्तों को बधारनेवाले किस प्रकार समाज में हँसी का पात्र बनते हैं इसकी ओर भी संकेत किया हैं| मद्यावर्गीय बुद्धिजीवी के चरित्र का पर्दाफाश इस कहानी में ईमानदारी के साथ किया गया हैं| "एक तरफ इमारत के लोग थे जो 'कम्यूनिस्ट' कहकर मेरी खिल्ली उड़ाते थे और मेरी हर हरकत को सन्देह से देखते थे| दूसरी तरफ खदान में काम करने वाले लोग थे

[1] काशीनाथ सिंह: कहानी उपरखान: सुधीर घोषाल: पृ: 213

जो मुझे प्रशासक के घर और उसके लड़के के संग देख चुके थे| इन दोनों के बीच मैं कहाँ था? बार - बार यह सवाल मुझे पीड रहा था कि मैं किधर हूँ"|[1] पूरी कहानी से स्पस्ट होता हैं की समाज में परिवर्तन केलिए मार्क्सवाद की जरूरत हैं| इस कहानी का एक पात्र विक्रम मार्क्सवादी सिन्दंत का वाहक हैं तो सुधीर घोषाल उसे व्यवहार मैं लानेवाला एक मजदूर|

आपातकाल और उसकेबाद की मन: स्थिति को मिसाजातकम कहानी में प्रस्तुत किया हैं| इसमें सामान्य आदमी की बेबसी का चित्र हैं| आपातकाल में उसे बिना किसी अपराध और अभियोग के बंदी करके सजा दिया जाता था| इसका वर्णन हैं| पंडित पोटठपाद इसका प्रमुख पात्र हैं| यह सामान्य आदमी का प्रतीक हैं| जब सत्ता द्वारा झूठा आरोप लगाकर बंदी बनाता हैं तो न्यायाधीश के सामने सारे आरोप को झूठा साबित करके मुफ्त हो जाता हैं| उसी वक्त राजपुरुषों की ओर से महाधिक्कता ने उठकर कहा कि – "पंडित का कथन हैं कि पोटठपाद सप्ताह में एक बार नियमित रूप से महाराज शिवदत्त का सिंहासन उलटने का उपदेश दिया करता था| वे कहते थे कि शिवदत्त अत्याचारी हैं, भ्रष्ट हैं, पनित हैं, बेईमान हैं आदी – आदी| उसके सिंहासन को उलट दो| और विद्वान न्यायाधीश जानते है कि विधिग्रंन्थो के ऐसे अपराध के लिए एक ही दण्ड विधान हैं ..... इसलिए हैं महाभाग पोटठपाद को ऐसा दंड दे कि राज्य में कोई भी महाराजा के विरुद्ध सिर न उठा सकें"|[2]

'सिद्दीकी की सनक' नमक कहानी में सिद्दीकी साहब एक साधारण आदमी हैं वे अखबारों में रोज छपने वाली सनसनी रोज ख़बरों को ध्यान से पड़ते हैं और उसके पीछे की

[1] काशीनाथ सिंह: कहानी उपरखान: सुधीर घोषाल: पृ: 216

[2] काशीनाथ सिंह: कहानी उपरखान:मिसाजातकम: पृ:181

हकीकत को जानने के लिए जाँच करते हैं| सब लोग इसके विरुद्ध हो जाते हैं "उन्हें मतलब सिर्फ इतने से था कि यह हत्या या दूसरी हत्याएँ जबकि हम सच्ची इंसानियत के रु-ब-रु खड़े होने के दम भरने जा रहे हैं – क्यौं हो रही हैं, और हो ही नहीं रही हैं – लगातार बठती जा रही हैं| आदमी के खून में छिपा हुआ कौन सा सच हैं जो उसे सदियों से चमका दे रहा हैं और सामने आने में डर रहा हैं"|[1]

समाज की इन कूट नीतियों एवं दुर्घटनाओं से आतंकित होकर वह एक इश्तहार बनाया उसमें लिखा था " सच और उसके नीचे था - मेरा लाल! तुम कहाँ हों? किससे नाराज हों? अब तो आ जाओ| कोई कुछ नहीं कहेगा"|[2] ऐसा इश्तहार बनाकर सारे अखबारों में भेज दिया| न छपने के कारण अपनी पीठ पर छिपाकर बाहर निकल पड़ा|

यहाँ तो एक आम आदमी का विद्रोह जो पूरे शासन व्यवस्थ के खिलाफ है| शासन करने वाले समाज की इन घटनायों को देखने परखने केलिए तैयार नहीं? कहानीकार इस कहानी के माद्यम से लापता होते हमारे लोकतंत्र की और इशारा करते हैं|

'अधूरा आदमी' कहानी में अपना उत्तरदायित्व क्या है इसकी ओर इशारा किया गया हैं| इसमें गरीबों को उठाने के लिए पूंजीपतियों, सामंतो के विरुद्ध संघर्ष करने के आह्वान की गई हैं| इसका मुक्य पात्र ज्यौन अपने दायें हाँथ और बाई आँख गंवा करके भी मजदूरों के

[1] काशीनाथ सिंह: कहानी उपरखान:सिद्दी की सनक:पृ: 235

[2] काशीनाथ सिंह: कहानी उपरखान:सिद्दी की सनक:पृ: 236

बीच का जननायक बन जाता हैं| अपनी जिंदगी की सार्थकता सिद्ध करता हैं| इन्कलाब जिंदाबाद, दुनिया के मजदूरों एक हो जाओ के नारे एक कहानी में स्पष्ट सुनाई देता हैं|

'वे तीन घर' दलाल किस्म के नेता के चरित्र को स्पष्ट करनेवाली कहानी हैं| जमीन का एक नेता, जिसने शुरू – शुरू में हरिजनों के बीच इमानदारी से काम किया था उन्हें संगठित भी किया बाद में वह सभ्य या उच्च वर्ग के लोंगों में पहुचने केलिए अपनी प्रगतिशील राजनीति का गलत इस्तेमाल करता हैं| यह इस कहानी का तथ्य हैं| 'कविता की नयी तारीख' मैं भी अवसरवादी नेताओं का चित्रण किया गुया हैं गुंडों का संरक्षण देने का अर्थ है सत्ता में आतंकवाद को पनपने का अवसर देना| यह आज कल की राजनीति में हम देख सकते हैं| गुंडों और आतंकवादियों के काले कार्यों पर पर्दा डालने के लिए स्वयं चुनाव लड़ते हैं| " चनाव तो जानते है, आदमी या सिधांत नहीं लड़ रहे हैं| या तो जातियाँ लड़ रही हैं या गुंडे बदमाश जो बूथ पर कब्जा कर सके जीत ले"|[1]

'तीन काल तथा' में अकाल, पानी प्रदर्शनी ये तीन खण्ड हैं| अकाल में एक परिवार का चित्रण हैं जो गरीबी एवं अकाल का शिकार हैं| कही से मिले दस रुपये से खाने के लिए कुछ खरीदना चाहा लेकिन बच्चे ने खेलते खेलते नोट को टुकडे कर दिये| इससे तंग आकर माँ उसे पीटती हैं| बांप आते वक्त खाना न मिलने के कारण गुस्से से बच्चे का गला दबाकर मार डालता हैं| यहाँ कहानीकार गरीबी का भीषण चित्र यहाँ खींचते हैं| अकाल कैसे मानव को आमानवीय बनाता हैं| इसका चित्रण हैं|

[1] काशीनाथ सिंह: कहानी उपरखान:वे तीन घर:पृ: 271

'प्रदर्शनी' खंड में हमारे समाज में हर दिन देखने वाले एक घटना को दिखाया गया हैं| प्रधानमंत्री अकाल देखने के लिए आते वक्त सब कहीं सजाए गये| वे आते हैं कार्यक्रम निपटाकर चले जाते हैं| गरीब एवं इससे पीड़ित लोग उसी तरह रह जाते हैं| वो लोग अपनी उस जीवन को जीने के लिए अभिशज हैं| कार्यक्रम के बाद प्रधानमंत्री पत्रकारों के बीच वक्तव्य देते हैं कि"हम दृढ़ता, निश्चय और अपने बलबूते पर ही इसका मुकाबला कर सकते हैं"|[1] सिर्फ भाषण देते हैं दिखावा करते हैं| कोई भी कार्य नहीं करते हैं|

उपर्युक्त कहानिओं के विश्लेषण से काशीनाथ सिंह की राजनीतिक चेतना स्पस्ट हो जाती हैं| इन कहानिओं का स्वर निश्चित रूप से राजनितिक हैं| लेकिन ये उन बहुत सी कहानियों से भी बिलकुल अलग हैं जो स्थूल ढंग से साहित्य और राजनीति के आपसी रिश्ते को दर्शाती हैं| मधुरेश के अनुसार ये कहानियां "किसी आवेगपूर्ण क्रांतिकारी रुझान का निषेध करके प्रतिक्रिया औए निर्थक उत्तेजना से रचना को बचाकर समाज की प्रक्रिया को द्वन्द्वान्त्मक भौतिकवादी दृष्टि से समझने पर बल देती हैं क्योंकि सिर्फ इस तरीके से ही निर्जीव और यांत्रिक चरित्रों से बचकर समाज और व्यक्ति के अंतर्विरोधी को सही ढंग से समझा जा सकता हैं"| [2]

कंशिजी की कहानिओं में जीवन के राजनितिक पक्षों को बहुत अच्छी तरह उजागर किया गया हैं| उनकी कहानियों में आज के राजनीतिक परिवेश और देखें भोगे गए जीवन का यथार्थ प्रस्तुत हैं|

---

[1] काशीनाथ सिंह: कहानी उपरखान:तीन काल कथा:पृ: 133

[2] मधुरेश: सिलसिला, कहानी उपरखान: पृ: 106

दूसरा अध्याय

मध्यवर्गीय जीवन

काशीजी जीवन के यथार्थ का कथाकार हैं| उनकी कहानियों का आधार तो मद्यवर्ग की सामजिक संस्थाए और उनकी जीवन विडम्बनाएं हैं| उन्होंने तीखे व्यंग से अपनी कहानियों को प्राण दिया हैं| परिवर्तित जीवन मूल्यों के कारण मध्यवर्ग के लोगों को क्या क्या सामना करना पड़ता हैं इसका खुलासा उनकी कहानियों में मिलता हैं| सुख कहानी में भोलाबाबू के माद्यम से कहानीकार का यह कहना चाहता है कि वर्तमान जीवन में मनुष्य को कई चिजें देखने का मौका नहीं मिलता हैं| वर्तमान में तो वह जीता नहीं अथवा अपने भविष्य की व्यथा में वर्तमान जीवन का आस्वादन नहीं कर पाता| मद्यावार्गीय लोगों का जीवन इस प्रकार भविष्य की चिन्ताओं के तनाव में अंतकित हैं| लम्बे समय की नौकरी करने के उपरांत भोलाबाबू अवकाश ग्रहण करता हैं| प्रकृति में कुछ ऐसी चीजें हैं जो उन्हें अजीब सी लागती हैं| यह बात सब लोगों से उन्होंने बताया था लेकिन किसी ने भी उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया| कोई व्यक्ति उनकी परेशानी को समझता नहीं| भोलाबबू अच्छी अच्छी चीजों का सही आस्वादन नहीं कर पाया| दफ्तरी जिंदगी की व्यवस्था मैं अपने परिवार को समझने में असमर्थ होकर वह यों सोचता हैं – "वे जिंदगी भर तार बाबू रहे – उन्होंने सोचा| पहाड़ियों के इस जिले में ही रहे| उनसे कोई गाँव नहीं छुटा, क़स्बा नहीं छुटा, शहर नहीं छुटा| लेकिन यह सूरज! अब तक जहाँ था| यह शाम आखिर किधर थी| .....आज वे क्या देख रहे हैं"| [1]

[1] कंशिनाथ सिंह, कहानी उपरावन, सुखः पृः 15

दूसरा अध्याय

जीवन से सायकाल में अपनी दफ्तरी व्यस्तता से जब फुरसत मिल गई तो उसे प्रकृति की विशिष्टताएँ उसकी सहजताएं सब बिलकुल अजनबी लग रहा हैं| भोलाबाबू और उनके परिवार के सदस्यों के बीच जिस रागत्मक निकटता का संबंध होना चाहिए था वह कभी नहीं हो पाया| यह तो वर्तमान मद्याम्वार्गीय जिंदगी का यथार्थ हैं|

'आखिरी रात' कहानी मैं एक सामान्य भारतीय परिवार की नारी की सही स्थिति का अंकन किया गया हैं| पत्नी माइका जा रही हैं| वह अपनी रिश्तेदारों को कुछ लेकर जाना चाहती हैं| लेकिन पति उन्हें समझाता हैं – सुनो मेरे शब्दों में संयम हैं| तुम्हे घर की हालत मालूम हैं| और ये महीने की अंतिम दिन है"| [1] यहाँ कहानीकार मद्यवर्ग के आर्थिक मामलों को ठीक तरह से हमरे सामने प्रस्तुत करते हैं| आर्थिक मामले, मजबूरियां, लोग क्या कहेंगे का विचार, दिखावे सब मिलकर उनका सर्वनाश कर रहे हैं|

'अपने घर का देश' में भी मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण हैं| मद्यवर्ग के घर के परेशानीयों के बारे में कहानी में प्रस्तुत किया गया हैं – "मर मरकर काम करो, न ठीक से खाना, न ठीक से पहनना| माइके से आई पिछली होली की साड़ी पहने जा रही हूँ"| [2] मद्यवर्ग यह आशा लेकर जीते हैं कि आज नहीं तो कल सब ठीक हो जायेगा| इसी मानसिकता को यहाँ चित्रित किया गया हैं| मद्यावार्गीय जिंदगी किनती कठिनाई से आगे बढती जा रही हैं इसका ओर इशारा किया गया हैं|

---

[1] कंशिनाथ सिंह, कहानी उपरावन: आखिरी रत: पृ: 24

[2] कंशिनाथ सिंह, कहानी उपरावन: अपने घर का देश: पृ: 56

तीन काल – कथा' में भी साधारण लोगों के जीवन की कठिनाइयों का चित्रण किया गया हैं| 'कविता कि नई तारीख' इस कहानी के सभी पात्र मध्यवर्ग के हैं| किसी भी गलत रास्ते को अपनाकर उच्चवर्ग की तरह जीने की इच्छा रखनेवाले पत्रों के साथ साथ अपनी छोटी तनख्वाह से परिवार को सुखी न रख पाने की विवशता झेलनेवाले पात्र को भी कहानी में प्रस्तुत हैं| फिर भी वे लोग खुश हैं|

"अपना रास्ता लो बाबा" में शहरी जीवन की थात्रिकता और उसकी व्यवस्था से मध्यवर्गीय व्यक्ति इतना घुल मिल जाता हैं कि उसे दुसरे का कोई ख्याल ही नहीं होता और न ही किसी दूसरे के हाल – चाल पूछने की फुरसत| वह हरदम अपने में मस्त, सुविधा पूर्ण जीवन बिताता हैं| इस तथ्य को यहाँ प्रस्तुत किया गया हैं|

'संतरा' कहानी में एक मध्यमवर्ग परिवार का चित्रण हैं| उसका बाप अपने बच्चों को जो चीजें चाहिए उसे दिला न पाने नें असमर्थ बाप हैं| लेकिन कभी भी संतरा नहीं खिलाया था| एक दिन गलती से सीताराम की कमीज़ पर संतरों का रस गिरा| घर आते ही बच्चों ने एस गंध को पकड़ लिया| संतरे के लिए बच्चे रोने लगी| पत्नी भी इससे झगड़ने लगी और कहने लगी – "छि: छि: शांता ने वही फर्श पर थूका, कैसे घर चलाती हूं, यह मैं ही जानती हूं और तुम हो की चोरी चोरी संतरा खाओगे, लीची खाओगे आम खाओगे| अरे तुम सारी शर्म

– हया घोलकर पि गए हो क्या? ऐसा कही आदमी होता हैं"|[1] यह कहानीकार एक ऐसे परिवार को प्रतुत करता हैं जो आभावग्रस्त जीवन से संघर्ष करता रहता हैं|

संबंधों मैं आर्य बदलाव

आधुनिक यूग के सामाजिक जीवन में संबंधों का ह्रास हो रहा हैं| रिश्ते – नाते के स्थान पर आर्थ, शोहरत, पदोन्नति आदि आ गये| सब लोग अपने अपने फायदे के लिए कुछ भी करने को तुले हुए हैं| काशीजी अपनी कुछ कहानियों के माध्यम से संबंधों में आये बदलाव को पाठको के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं|

माँ-बाप, पति-पत्नी, भाई-बहन, प्रेमी–प्रेमिका, आदि के संबंधों में किस तरह का बिखराव आ चुका हैं उसकी और कहानीकार का इशारा हैं| माँ – बाप को पुरानेपन का प्रतिक मानकर युवा पीढ़ी आगे बढ़ रही हैं| स्त्री पुरुष संबंधो के जिस तरह का तनाव उत्पन्न हो रहा हैं| इसकेलिए एक उदाहरण हैं 'आखिरी रात' कहानी| इसमें एक सामान्य भारतीय परिवार में नारी की स्थिति का सही अंकन प्रस्तुत हुआ हैं| शादी के बाद पहली बार पत्नी माइका जा रही हैं| उसके जाने से पहले पति उसे पूरा भरपूर प्यार करना चाहता हैं| लेकिन उस वक्त पत्नी उससे कुछ ले जाने के बारे में बात करती रहती हैं तो पति कहता हैं कि तुम मतलबी हो| यह सुनकर पत्नी रो पडती हैं| इस तरह हम देखते हैं कि एक अजीब मोहभंग और तनाव की स्थिति में व्यक्ति जी रहा हैं| संबंधो के टूटने से जो तनाव, अकेलापन और

[1] कंशिनाथ सिंह, कहानी उपरावन:संतरा: पृ: 262 - 263

ख़ामोशी छा जाती हैं| उसके बीचों बीच व्यक्ती किस प्रकार जी रहा हैं इसका भी चित्रण इस कहानी में हैं|

'सुख' कहानी में भी एक प्रकार का घुटन हम देख सकते हैं कई साल के बाद नौकरी से अवकाश प्राप्त हो कर भोलाबाबू अपने घर पर आ जाता हैं| उसे तो सब कही नयापन ही दिखाई पडता हैं| उनके और घरवालो के साथ जो रागात्मक संबंध होना चाहिए था यह नहीं हो पाया| इसलिए वे लोग एक दुसरे को पूरी तरह से पहचान नही पाते| इसलिए भोलाबाबू कहते हैं " देखो, कहने को यह बीवी हैं| यह बेटा हैं| यह बेटी हैं| यह मकान हैं| यह जायदाद हैं ये दोस्त हैं| ये नातेदार हैं| लेकिन सच पूछो तो कोई किसी का नहीं हैं"[1]| और वह आगे कहते हैं कि "जब मेरी कोई दुःख नहीं समझ सकता, तो कैसी बीवी और कैसा बेटा"|[2]

'अपना रास्ता लो बाबा' कहानी में न सिर्फ दो पीढियां के अन्तर को स्पष्ट किया गया हैं | बल्कि शहर और गाँव के आदमी के मिजाज का बयान भी हैं| मद्यवर्गीय शहरी बाबू अपने ही परिवार के बूड़े बाबा जो उसे बाप से भी ज्यादा प्यार किया करते था| उसके साथ खोखला वयवहार करता हैं| "बाबा न पलके गिराई और सिसकने लगे अगहन-कार्तिक से कहता आ रहा था सुदामा से कि चलो, अस्पताल दिखा दो| कोई एक दिन बस चले चलो|

[1] कंशिनाथ सिंह, कहानी उपरावनः सुखः पृः 19

[2] कंशिनाथ सिंह, कहानी उपरावनः सुखः पृः 19

किसी के लिए उसे मौका नहीं| उसकी मेहर ऐसे-ऐसे बिंग बोलती हैं कि चोके से बगैर खाए उठ जाना पडता हैं"|[1]

बाबा की सबसे बड़ी समस्या हैं कि 'अपना दुखड़ा रोएँ भी तो किसके आगे रोएँ| आदमी के जीवन की सबसे अजीबोगरीब स्थिति यह हैं जब उसका दुःख सुनने वाला कोई रहता और जो दर्द अपनों से मिलता हैं उसे किसी दुसरे के सामने व्यक्त भी नहीं किया जा सकता|

'संकट' नामक कहानी में एक अन्य समस्या को प्रस्तुत किया गया हैं| राधो मिलिटरी मैंन हैं| जब वे छुट्टी में आया तो घर में बच्चा हुआ और उसकी स्त्री सौरी में हैं| इसी कारण से वे बेचैन हैं| पत्नी के साथ कुछ दिन बिताने के लिए वे आया था| इस बेचैनी के कारण उसे तो पत्नी के प्रति नफरत हो जाती हैं| बिना कारण से वह लडता झगड़ता हैं पीडता भी हैं| जो प्यार और संरक्षण पत्नी के उस समय मिलना चाहिए था वह वो दे नहीं पाता| वह पत्नी को काम पिपासा को तृप्त करने का साधन मात्र मानता हैं| पुरुष मानसिकता के इस पहलू को यहाँ अनावृत किया गया हैं|

'कविता की नई तारीख' मैं भी मध्यवर्गीय लोगों की मानसिकता का वर्णन हैं| जो कोई भी गलत काम करके अपनी जेब भरना एवं समाज मैं ऊँचा स्थान प्राप्त करना चाहता हैं| उसके सामने रिश्ते नाते कुछ भी नहीं मूल्य तो पैसा एवं शोहरत का हैं| पैसा मनुष्य को

[1] कंशिनाथ सिंह, कहानी उपरावन: अपना रास्ता लो बाबा: पृ: 315

अहंग्रस्त एवं संवेदनशून्य बना देता हैं| पैसों के रहते मनुष्य की मनोवृति बदल जाती हैं| इस कहानी का पात्र सानू और रेखा धन के आधिक्य से अपना सामाजिक कर्तव्य भूल जाता हैं पिता के गुजरे सात महीने होकर भी इसके बारे में कोई खबर नहीं मिली हैं| उनके मन में सिर्फ यही चिंता रहती की कैसे दूसरों के सामने अपनी इज्जत बढ़ा सके| इन विचारों के रहते उसे अपने पिता और भाई के बारे में सोचने तक समय नहीं था जिस जीजा पर रेखा किसी ज़माने में मरती थी आज वह उसी के लिए नाचीज बन गयी| पैसा मनुष्य अहंग्रस्त संबंधो मैं आये बदलाव एवं संवेदनशून्यता के लिए प्रमुख उदाहरण के रूप में 'एक बूढ़े की कहानी' को हम ले सकते हैं| बाप द्वारा अपनी छोटी बच्ची का बलत्कार| जो व्यक्ति उसका संरक्षण होना था वह खुद उसका अन्तक बन जाता हैं| इस घटना को देखते ही पाठक संबंधो में आए बदलाव को देखकर आतंकित हो उठते हैं|

काशीजी समकालीन कथाकारों मैं विशेष उल्लेखनीय हैं| उन्होंने सामाजिक अन्यायों और विसंगतियाँ को चित्रित करने के साथ ही साथ उसके विपक्षीय यथार्थ को भी प्रस्तुत किया है| अपने अस्तित्व के संकट से ग्रस्त आदमी के मानसिक हलचल को उभारनेवाली उनकी कहानियाँ सामाजिक यथार्थ को उसकी पूरी समग्रता के साथ प्रस्तुत करती हैं| विभिन्न शैलियों के सहारे उन्होंने इस रचनाधर्मिता को निभाया हैं| उनके पात्र जीवन से मुक्ति नहीं चाहते बल्कि उसे बेहतर बनाने के संघर्ष में संक्रिय रहते हैं| अधिकांश कहानियाँ आदमी के अंतर्द्वद की कहानियाँ हैं| उसकी यह लड़ाई कभी कभी अपने आप से भी हैं| सक्षेप में कंशिजी की कहानियाँ अपने समय की भीषण यथार्थ को अपने में समेटने में सक्षम निकले हैं| एक सचेत रचनाकार के रूप में उनकी सफलता का कर्ण भी कुछ और तो नहीं हैं|

तीसरा अध्याय

उपन्यासकार काशीनाथ सिंह

तीसरा अध्याय

उपन्यासकार काशीनाथ सिंह

समकालीन रचनाकारों में पारंपरिक अवधारणाओं को चुनौती देनेवालों में काशीनाथ सिंह का विशिष्ट स्थान है| काशीनाथ सिंह के कथाकार और कथाकार व्यक्तित्व को व्यापक स्वीकृति मिलने का कारण उनकी वैचारिकता तथा गवई संस्कृति एवं भाषा का प्रयोग हैं| उन्होंने अपने उपन्यासों में समकालीन समाज की भयावह स्थितियों को जीवन्तता प्रदान की हैं| उन्होंने पाठकों के अंतर्मन को शूल जैस चुभ लिया है तथा उनकी संवेदानावों पर गहरी चोट पहुँचाई हैं|

एक रचनाकार के रूप में काशीजी ने अपनी प्रतिबद्धता को प्रकट किया है| वे अपने समय और समाज के प्रति जागरुक रहे हैं| अतः उनकी प्रत्येक रचना अपने समय के मनुष्य के जीवन का दस्तावेज निकली है| उनके पाँच उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं| पहला उपन्यास 1972 में प्रकाशित 'अपना मोर्चा' है| दूसरा 'काशी का अस्सी (2003), तीसरा 'रेहन पर रुधू (2007), चौथा 2012 में 'महुआचरित', पाँचवाँ उपन्यास 2014 में 'उपसंहार|

अपना मोर्चा

सन् 1967 का भाषा आन्दोलन 'अपना मोर्चा' की केन्द्रीय कथा है| वे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यापक के रूप में इस भाषा आन्दोलन का प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं| उसका परिणाम हैं 'अपना मोर्चा' उपन्यास|

'अपना मोर्चा' उस समय तक लिखे गए हिन्दी उपन्यासों में पहला उपन्यास है जिसने अपना समय की युवा पीढ़ी के विद्रोह को सच्ची और प्रखर अभिव्यक्ति दी है| काशी जी ने इस उपन्यास के माध्यम से देश में व्याप्त सारी अनीतियों को उसकी जटिलताओं और कारणों के साथ बेबक ढंग से पाठक के सामने प्रकट किया है| लेखक अपनी कटु अनुभूतियों के जरिए पाठकों की संवेदना को जागृत करते हैं "किताब के कीड़ो! आखिर आँखे खोलकर देखो तो सही, देखने की कोशिश तो करो कि यहाँ कैम्पस में, शहर में, देश में क्या हो रहा है?"[1]

'अपना मोर्चा' में वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर भी तीखा प्रहार किया गया है| आज की शिक्षा हमारी वर्तमान परिस्थिति से कोई सरोकार नहीं रखती| इसमें समाजोन्मुखता के स्थान पर जीवन विमुखता और नवीनता है, "देश की समूची शिक्षा व्यवस्था में जड़ तक फैले हुए ये अन्तर्विरोध अकारण नहीं हैं| इनके पीछे शोषणमूलक साम्राज्यवाद के फौलादी ढाँचे की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु गठित गुलाम शिक्षण तंत्र की अभी भी मौजूदगी है|"[2] इसमें लेखक इस बात पर ज्यादा गैर करते हैं कि समूचे औपनिवेशिक व्यवस्था-तंत्र को उखाड़ फेंककर एक स्वस्थ प्रजातंत्रीय व्यवस्था का सृजन करना है| इसके लिए वे नई पीढी को सजग भी करते चलते हैं| यही इस औपन्यासिक कृति की खासियत है|

काशी का अस्सी

उनका दूसरा उपन्यास है 'काशी का अस्सी'| यह 2002 में प्रकाशित है| बढ़ते बाज़ारवाद और उसमें दम तोडती काशी की पारंपरिक संस्कृति इसका केन्द्र बिंदु है| आज

[1] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ : 9

[2] जगदीश नारायण श्रीवास्तव, उपन्यास की शर्त, पृ : 110-111

संस्कृतियों का विस्थापन हो रहा है| इसका गहरा निरीक्षण उपन्यास में दिया गया है| अस्सी पूरी काशी का प्रतिक बनकर खड़ा है| यह पूरी काशी एवं राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करनेवाली राजनीतिक एवं अन्य तमाम मुद्दों को उठानेवाला एक विश्व प्रतीक हैं| कुछ लोग 'काशी का अस्सी' बनारस पर लिखा गया शोकगीत मानते हैं| बनारसी संस्कृति का मृत्युगीत है| भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद ने देश में देर से दस्तक दी बनारस में बाज़ारवाद का चेहरा बहुत पहले से मौजूद है| यह उपन्यास अपने इतिवृत्त और व्यंग्यार्थ की बदौलत इक्कीसवीं सदी के मुहाने पर दस्तक देती बीसवीं सदी के आखिरी दो दशकों का महा-आख्यान उपस्थित करता है| इसको कथ्य एवं शिल्प की खूबियों एवं खामियोंवाली समीक्षा पद्धति के जरिए नहीं समझा जा सकता|

बनारस का एक छोटा सा मोहल्ला, पप्पू की चाय की दूकान से लेकर मुश्किल से फार्लांग भर पूरब के गंगा किनारे की अस्सी घाट तक इस उपन्यास के कैनवास का फैलाव है| इसमें इस यथार्थ को दर्शाया गया है कि स्वदेशी प्रचार के पाखण्ड के बीच गलोबलाइज़ेशन की अमेरिकी अंधड़ में कैसे सदियों से अर्जित सामुदायिक जीवन की खूबियाँ तथा देशी लोक संस्कृति धराशयी होती जा रही है| इसकी महागाथा है 'काशी का अस्सी'| बीसवीं – इक्कीसवीं सदियों का अद्वितीय संधिपत्र है यह उपन्यास| मौजूदा समय का एक दहकता दस्तेवेज है| यह सामुदायिक देशज परम्परा का प्रतिनिधि है|

उत्तर आधुनिकता के इस महा विधटनकारी दौर में बाज़ार से लेकर व्यवस्था तक आदमी को निपट अकेला कर देने पर उतारू है| आदमी के साथ आदमी न रहा|जो शक्तिशाली है वह दूसरे को रौंदकर आगे बढ़ जाता है तो सचमुच अस्सी की संस्कृति पर घोर

संकट आ जाता है| इस संकट काल में सभी संदिग्ध है| क्या नेता और क्या बुद्धिजीवी, किसी पर भरोसा नहीं लोगों को|

रेहन पर रग्घू

उनकी तीसरा उपन्यास है 'रेहन पर रग्घू'| यह 2007 में प्रकाशित हुआ| 2011 में इसको साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है| इसमें आज के विभिन्न द्वन्द्वों की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति हुई है| इसकी कथावस्तु एक कस्बाई ग्रामीण मानसिकतावाले डिग्री कॉलेज के अध्यापक की व्यथा है जो कि अपने परिवार की बेहतरी के लिए हर संभव प्रयास करता है| पर संतानों की बढ़ती हुई रुझान के कारण वह अकेला पड जाता है| आज के बाज़ारवाद के दौर में रिश्तों को पैसे की कीमत पर देखनेवाले लोगों की मानसिकता का चित्रण हुआ है| इसका शिकार होनेवाले बूढ़े माँ-बाप, उन के जीवन का अकेलापन, मृत्युबोध आदि का चित्रण किया गया है|

जीवन के महाकाव्यात्मक आख्यान के रूप में इस उपन्यास को हम मान सकते है| उत्तर आधुनिक संदर्भ में सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन और परंपरा का नकार किस तीव्रता के साथ हो रहा है उसको भी यह उपन्यास दर्शाता है|

महुआचरित

वरिष्ट कथाकार काशी जी का चौथा उपन्यास है महुआचरित| यह 2012 में प्रकाशित हुआ है| इसमें उन्होंने जीवन अपार अरण्य में भटकती इच्छाओं का आख्यान किया है| मध्यवर्गीय समाज की सच्चाईयों को विशिष्ट कथा रस के साथ प्रस्तुत किया गया है|

अस्सी साल के स्वतंत्रता सेनानी पिता की पुत्री महुआ की देहासक्ति से विवाह तक की यात्रा और फिर उसमें जागता अस्मिता बोध इस कथा को लेकर सामाजिक संदर्भो के साथ प्रस्तुत किया है| स्त्री विमर्श की अनुगूँज के बावजूद यह प्रश्न आकार लेता है – "ऐसा क्या हैं देह में कि उसका तो कुछ नहीं बिगड़ता लेकिन मन का सारा रिश्ता नाता तहस-नहस हो जाता है|"[1]

उपसंहार

उपसंहार में कृष्ण के जीवन के अंतिम दिनों की कथा कहीं गई है जो मार्मिक है उतनी ही उद्वेलक भी| यह जितनी कृष्ण की कथा है उतनी ही द्वारका के बनने और बिगड़ने की भी| कृष्ण महाभारत के सर्वप्रमुख चरित्र है| द्वारका उनकी देन है, उनकी सृष्टि| लेकिन महाभारत जैसे महायुद्ध के उपरांत इसी द्वारका में कृष्ण का और एक रूप दिखलाई पड़ता है| यह रूप ईश्वरीय अलौकिता से दूर एक ऐसे मनुष्य का है जिसकी असाधारण उपलब्धियों के पीछे खड़ी विफलताएँ अब एक-एक कर सामने आ रही है|

जिस द्वारका को उन्होंने अपने मन प्राण से साकार किया था वही तिनका-तिनका बिखर रहा है| जिस कृष्ण के विराट रूप के सामने कुरुक्षेत्र की अठारह अक्षौहिणी सेना अपनी दृष्टि खो बैठी थी, वही कृष्ण अब दुर्बल नजर आते हैं| आखिर क्या है जय का सच्चा अर्थ? सभी सफलताएँ अंत में विफलता में ही परिवर्तित होती हैं? मानव जीवन के ऐसे कई मूलभूत प्रश्नों पर 'उपसंहार' उपन्यास नए सिरे से प्रकाश डालता है| यह उपन्यास इस बात

[1] काशीनाथ सिंह, महुआचरित,पृ : 98

पर ज़ोर देते हैं कि चरम सफलता में है एकाकीपन का अभिशाप| 'महाभारत' के बारे में कहा जाता है कि जो कुछ दुनिया में है वह महाभारत में है और जो उसमें नहीं है वह कहीं नहीं है| 'उपसंहार' पढ़कर इस कथन की सच्चाई भी समझा जा सकता है|

सामाजिकता के विभिन्न आयाम

हिन्दी उपन्यास यथार्थ की ज़मीन पर खड़ा है| इसमें रचनाकार जिस यथार्थ को उजागर करता है उसमें परंपरा और प्रयोग के द्वंद्व से निष्पन्न रचनात्मक ऊर्जा निहित है| इस सत्य को व्यक्त करने के लिए रचनाकार को अपने निजी अनुभवों की ज़मीन को ही तोडना पड़ता है| अपने समय और समाज को रूपायित करने और उससे जूझने के लिए सत्य को बहुत नज़दीक से पहचानना अनिवार्य बनता है| भारतीय जीवन के यथार्थ को वह किसी को नहीं छोड़ते चाहे वह अध्यापक हो, छात्र-छात्रायें, व्यापारी, मध्यवर्गीय जन समूह, पुलिस, प्रशासन या नेता गण उन सब पर उन्होंने अपनी ऊँगली उठाई है| "प्रोफसरों की सभा बाहर कारों और स्कूटरों का जलसा है अन्दर सूट और टाइयों की महफ़िल है| ------- एक खुशबू---- लगातार ठहाके| सैकड़ों लड़के जेल में हैं, सैकड़ों अस्पताल में रहे-रहे स्टेशन पर और यहाँ ठहाके ---------- मेरे अगल बगल बातें हो रही है ---------- साकेत कोलनी में कितने प्लाट, बिकाऊ है? ------- इस सूट का कपडा कहाँ से लिया ? यह पुलोवर बनवाया था या खरीदा है? जल्दी से क्या मिलेगा स्कूटर या बाइक? ------|"[1]

[1] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा,पृ: 14

उनकी समस्या केवल यह है कि – "ल्यों मेरेवाले ट्युटोरियल में एक भी लड़की नहीं है सर्बों ने|"[1] उनका काम केवल विभागाध्यक्ष की चापलूसी करना या उसे धमकी देना रह गया है क्योंकि वह केवल दो ही प्रकार की भाषाएँ समझता है – चापलूसी और धमकी| ग्रामीण और नगरीय संदर्भों में रचनाकार देखते हैं| ग्रामीण जीवन की सच्चाई से जिस संवेदनात्मक सघनता, जिस चारित्रिक वैशिष्ट्य की सृष्टि होती है उनमें ज़मीनी संस्कारों के यथार्थ की प्रतिध्वनियाँ अनुगूंजित है|

राजनीति-शिक्षा के स्तर पर

काशीजी का उपन्यास 'अपना मोर्चा' में भ्रष्ट शिक्षा-तंत्र पर प्रकाश डाला गया है| यानी कि युवा लोग बाहर की घटनाओं से अनजान है| समाज में क्या-क्या हो रहा है यह जानने के लिए वे लोग तैयार नहीं होते| उपन्यासकार अपनी कटु अनुभूतियों को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने के लिए है कि "किताब के कीड़ों! आखिर आँखे खोलकर देखों तो सही, देखने की कोशिश तो करो कि यहाँ कैम्पस में, शहर में, देश में क्या हो रहा है|"[2]

एक तरफ छात्रों का आन्दोलन है तो दूसरी और अध्यापकों द्वारा 'पिकनिक' की योजना बनायी जा रही है| वे लोग सरकार की गलत नीतियों का विरोध भी प्रकट नहीं करते| कहते हैं – "आप होश में तो हैं मिस्टर? सरकारी कर्मचारी है और सरकार के ही

[1] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ : 34

[2] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ : 11

विरोध में वक्तव्य देने की बातकर रहे है? ---------- डाक्टर राय, यह राजनितिक मसला है और ऐसे मामलों से हमारा कोई संबंध नहीं|"[1]

अध्यापकों की तरह वहाँ पढने के लिए आनेवाले छात्रों में नब्बे प्रतिशत के युवा वर्ग बड़े घर के है| उपन्यास में एक प्रसंग है जहाँ उपन्यासकार कहते है कि शिक्षा का स्तिर इतना गिर चूका है कि – "अगर तुम्हारा लड़का आवारा है, लफंगा है, कामचोर है, पूरे गाँव घर का सिर दर्द है, सब मिल कर जहन्नुमा है और तुम उससे अजिज आ गए हो तो एक काम करो – उसे इसमें दाखिल कर दो| हे बबुआ, अगर तुम गिरे आदमी हो, बेईमानी, घूसखोरी धूर्तता रौब, काशन, चार सौ बीसी और चुटिया बनाने के हथकंडो को नहीं जानते तो इस अश्लील कारखाने में आओं और अपनी किस्मत आजमाओ|"[2]

वहाँ का वातावरण इतना इतना बदल गया है कि विश्वविध्यालय में प्यार का भी अर्थ एवं मायने बदल गया है – "तुम प्यार तो करो लेकिन अपना हाथ अपनी ही जेब में रखो| यह याद रहे कि तुम वह कारतूस नहीं हो जो एक बार चल जाने के बाद खाली खोल सा रह जाए! भाई, लंबा रास्ता है और बहुत बार चलना है -------|"[3]

छात्र सहायता कोष तो ज़रूरतमंद विद्यार्थी को नहीं मिलता| बड़े घर के लड़के मनमानी करके अध्यापकों से फार्म भरवाकर देते हैं और एक गरीब विद्यार्थी का हक़ भी

---

[1] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ : 42

[2] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ : 12

[3] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ : 14

झीन लेते हैं| यह बात उठाने पर युवक कहते है – "पचास रुपये का मामला है और जब फोकट में मिल रहा है तो क्यों छोड़ दिया जाए?"[1] अध्यापक भी इन लोगों की सहायता करती है|

आज शिक्षा लोकजीवन से बहुत दूर हो गयी है| वह वर्तमान परिस्थितियों से कोई सरोकार नहीं रखती| शिक्षा समाज-जीवन से पूरी तरह विमुख है| इसमें लोक जीवन की समस्याओं का सीधा साक्षात्कार नहीं होता| इस शिक्षा से मानव का सर्वांगीण विकास नही होते| व्यक्ति और समाज की समस्याएँ जिससे सुलझानी चाहिए थीं वहाँ यह खुद ही पूरे समाज के लिए समस्या बन जाती है| सच्चे अर्थों में शिक्षा का काम जन-जन का मानस बदलना है लेकिन आज की शिक्षा भारतीय युवा लोगों को गलत शिक्षा दिखा दे रही है| आज का चालू शिक्षण तंत्र युवा शक्ति को निर्वीर्य एवं निब्प्रभ कर देता है|

उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार इस बात की ओर प्रकाश डालता है कि मौजूदा शिक्षा पद्धति से हमारा कोई लाभ नहीं| युवा लोग इसके प्रति अपना विद्रोह प्रकड़ करते हैं और पूछते हैं कि – "हिन्दुस्तानी छात्रों का एक विशाल तबका ऐसा भी है? जब खाने को इतना मौजूद है तो लोग भूखे क्यों मरते है? जब सारा शहर रंग बिरंगे कपड़ों से भरा पड़ा है तो लोग नंगे क्यों ? जब इतना ज्ञान, इतनी किताबें हैं तो लोग जाहिल और मूर्ख क्यों हैं? जिसे सुख कहते हैं, वह क्या चीज़ हैं? यह कानून यह संविधान किसने बनाया है|"[2] जब वह

[1] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ : 37

[2] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ : 22

इसका जवाब वर्तमान विश्वविद्यालयी शिक्षा से नहीं पाता तो झुँझला उठता है और कहता है कि "महरबानी करके वह मत पढ़ाइये जो हम नहीं पढ़ना चाहते|"[1]

यदि हम शिक्षा को जड़ से बदलने की निष्क्रिय वकालत करे और राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था को ज्यों का त्यों बनाये रखे तो यह बदलाव मुमकिन नहीं है| किसी स्थापित तंत्र को बदलने के लिए राजनीति, अर्थनीति, शिक्षा नीति और समाज नीति आदि में बदलाव अनिवार्य बनता है|

'रेहन पर रुघू' में एक प्रसंग है|झूठे आरोप लगाकर एक डिग्री कॉलेज के अध्यापक रघुनाथ को निष्कासित करता है| मैनेजर बहुत ताकतवर है, उन्होंने ऐसा किया| इसमें राजनीति की मिली भगत है| रघुनाथ इसके बारे में प्रिंसिपल से सलाह लेते हैं| प्रिंसिपल की बातों से यह बात स्पष्ट हो जाती हैं – "देखो रघुनाथ, चाहे तुम जितनी दौड़ धूप करो निलम्बन का मन बना चूका है मैनेजर! उसकी शक्ति और पहुँच को जानते हो तुम! इसके बाद तुम कचहरी जाओगे मुकदमा लड़ोगे, वह कब तक चलेगा कोई नहीं जानता| हो सकता है, फैसला होने के पहले ही तुम जाओ| हाँ जब तक मुकदमा चलेगा, तब तक पेंशन रुकी रहेगी| यह सब देख कर मेरी तो सलाह है कि तुम वी.आर.एस ले लो|"[2]

समकालीन राजनीति

[1] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ :

[2] काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घु, पृ : 19

तीसरा अध्याय

समकालीन उपन्यासों के अध्ययन के उपरांत यह पता चला कि कुछ उपन्यासों में अतीत की राजनीति का, कुछों में वर्तमान की राजनीति का और कुछ में भविष्य की राजनीति का यथार्थ प्रस्तुत किया है| इस अर्थ में 'काशी का अस्सी' समकालीन भ्रष्ट राजनीति का दस्तावेज़ निकलता है|

ऐसी हालत में लोग नज़र वामपंथी पार्टियों की तरफ आशा भरी दृष्टि डालते हैं| लेकिन वे भी भ्रष्ट हो चुके है| रामवचन पांडे कहता है कि कम्युनिस्ट पार्टियों और डोम में कोई फर्क नहीं हैं| जिस तरह डोम घाट पर लकड़ी वगैरह जुटाकर मुर्दे का इंतजार रहता है, उसी तरह ये पार्टियाँ भी टकटकी लगाए बैठी रहती हैं कि सरकार कब गिरे! अस्सी का एक बड़ा बुजुर्ग नेता है रामवचन पाण्डे| उनके शब्दों में हमारे समाज के नेता लोगों की मानसिकता स्पष्ट हो जाती है| आज की राजनीति अधिकार केंद्रित है – "एक सरकार गिरि, दूसरी सरकार बनी! बनी तो क्या, बनती सी नज़र आई|"[1] राजनीति के क्षेत्र में हमेशा सीट के लिए माँग होती है "और जानते हैं, सबसे बड़ी गलती क्या की उन्होंने? अपनी अपनी लड़ाई शुरू की थी खेतों से, खलिहानों से याने कि उत्पादन की ज़मीन से| यह वह ज़मीन थी जहाँ कांग्रेस, भाजपा लाचार हो गई थी आपके आगे| भाजपा धिधिया रही थी, भीख माँगने की स्थिति में थी अच्छा, पाँच सीटें दे दो| चार दे दो| कोई बात नहीं दो ही दे दो|"[2] राजनीति में आज बाज़ार से सामान लेने के समान नेता सीट माँग रहे हैं|

---

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ 29

[2] वही, पृ : 30

"जब जयललिता, हर्षद मेहता, नरसिंह राव, बोफोर्स, झमुमो, लालू यादव आदि-आदि घोटालों और हवालों की चर्चा करते हुए मैंने उनसे कुछ बाल-सुलभ जिज्ञासाएँ की तो प्रसाद के रूप में खैनी की खिल्ली देने हुए बोले – "प्रोफसर साहब! भ्रष्टाचार लोकतंत्र के लिए आक्सीजन है, है कोई ऐसा राष्ट्र जहाँ लोकतंत्र हो और भ्रष्टाचार न हो? ज़रा नज़र दौड़ाइए पूरी दुनिया पर, ये छोटी-बड़ी राजनीतिक पार्टियाँ क्या है? अलग-अलग छोटे-बड़े संस्थान, भ्रष्टाचार के प्रशिक्षण केन्द्र, सिद्धांत मुखैते है जिनके पीछे ट्रेनिंग दी जाती है| आप क्या समझते हैं, जो आदमी चुनाव लड़ने में पन्द्रह-बीस लाख खर्च करगा वह विधायक या सांसद बनने पर ऐसा ही छोड़ देगा आपको? चुतिया है क्या? फिर राजनीति का तलब क्या हुआ आचार्य? साथ में खड़े शैलेन्द्र ने ऐसे पूछा था जैसे चन्द्रगुप्त ने चाणक्य से पूछा हो| राजीनीति बेरोजगारियों के लिए रोज़गार कार्यालय है, इम्प्लोयेमेंट ब्यूरों सब आर.ए.एस नहीं हो नहीं सकता|"[1] राजनीति का क्षेत्र सबको स्वागत करता है| उसमें शामिल होने के लिए बड़ी खर्च तो नहीं है| किसी भी व्यक्ति को राजनीति में नेता बनने के लिए कोई तकलीफ नहीं है| हमारा इतिहास नेताओं के इस कार्य व्यापार को सहन करते जा रहा है|

बाबरी मस्जिद ध्वंस

बाबरी मस्जिद ध्वंस को भी व्यग्य की दृष्टि से उजागर किया है| अयोध्या में आज तमाशा ही चल रहा हैं इसका संकेत देखिए "अगर प्रोग्राम बनाइए तो कार सेवा के बहाने

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 34-35

हम भी तमाशा देखने अयोध्या चले|"[1] वे राम के नाम लेकर नेताओं के उपदेश सुनकर कुछ सोचने के पहले अयोध्या की इ जा रहे है| वहाँ उस शाम कार सेवकों के जत्थ का नेता नारे का पहला बंद बोलता –

"रामलला हम आयेंगे"

जुलूस के बोलने से पहले ही इधर से राय साहब का लाउडस्पीकर बोलता –

"मस्जिद वही बनायेंगे"

उधर से "बच्चा राम का"

इधर से "भाजपा के काम का"

वे जब तक संभाले तब तक बेंच पर खड़े होकर राय साहब चिल्लाते

रामलला तुम मत घबराना

हम तुम्हारे साथ है|"[2]

नासमझ लोग नेताओं के आदेश सुनकर हर किसी बातों पर टूट पड़ते है| पर उन लोगों के बारे में नेता लोग सोचते तक नहीं| वे इन साधारण लोगों के बल पर अपनी कुर्सी को मज़बूत कर लेते हैं|

---

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 27

[2] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 29

हवाला, घोटाले से सम्बन्धित बातें भी इसमें उठायी गयी है| राजीनीति भ्रष्ट होती जा रही है| इस भ्रष्टाचार से निकालने के लिए हमें कुछ करना ज़रूरी है| नहीं तो नेता लोग अपनी सुख सुविधा के लिए पैसे खर्च करते रहेंगे| हवाले के रूप में आज भी अन्य देशों से पैसा भारत की ओर बह रहा है|

जातिवाद

राजनीति में प्रचलित जातिवाद की ओर भी प्रकाश डाला गया है| 1998 के चुनाव जाती-पांत का मेला ही था| अहीर, कुर्मी, चमार आदि की पार्टियाँ| चुनाव के नारों में खुलता है| "पी लो पाउच, भर लो पेट, फिर न मिलेगे जवाहर सेठ|"[1] "पाउच नहीं दूध चाहिए| बनिया नहीं, अहिर चाहिए|"[2] जवाहर सेठ अहीर पार्टी की ओर से लड़ रहे है| लेकिन अहीर उनके विरोधी है क्योंकि वे बनियाँ हैं| इन नारों को तत्कालीन चुनाव – प्रचारों से जस का तस उठा लिया गया है| आजकल कुलपतियों की नियुक्ति जातिवाद और घूसवाद पर निर्भर करती है| मुलायम – लालू को एक अहीर भैस चांसलर चाहिए| अहीर की अनुकूलता न पाकर लालू बोलते – "बड़ा बुडबक बुझाता है जी! कईसा जादो है? दुनिया आउर लोग हमको – तुमको नेता नेता बोलता है और ई कहता है नेति नेति| पेपरों पढता तबो पता रहता कि हम नेता – हैं नेती नहीं जदि भेंस चांसलर हो जाता तो समझो कि

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 40

[2] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 41

हमारा भी कबाड़ा करता और मुकुल का भी|"[1] लालू के कथन का कितना सटीक 'आँटो विजुअल' है| इसमें गुण्डा राजनीति का भी वर्णन किया है|

चुनाव

संसार का सबसे बड़ा जनतंत्र राष्ट्र है भारत| यहाँ जनता द्वारा चुने गए जन प्रतिनिधि शासन करते हैं| जनता अपनी पसंद के जन- प्रतिनिधि को चुन लेती है| 'काशी का अस्सी' उपन्यास में समकालीन राजनीति के चुनाव से संबंधित प्रसंग है| चुनाव के समय की जनता के कार्यक्रम के बारे बताया गया है – "जब लोकसभा चुनाव की अधि सूचना जारी हुई, जब नामांकन और नामवापसी की तिथियाँ बीत गई, जब पार्टियों के प्रत्याशी अपने झंडों और डंडों के साथ एक दूसरे पर पिल पड़े और जब स्टार प्रचारकों के हेलिकोप्टरों से आसमान धूसर हो उठा ---------- यह अस्सी 'स्लोगन सेन्टर' है सिर्फ बनारस का नहीं, पश्चिमी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश का| यहाँ से जब-तब एक नारा उछलता है और पूर्वाचल की जबान बन जाता है देखते-देखते|"[2] अपने झंडे के साथ अपने पोस्टरों को दीवार में छापकर अपने को ऊँचा दिखने का प्रयन्त करता है| चुनाव के वक्त एक एम.पी के लिए भोजन, रहने के लिए जगह, गाडी सब मुफ्त है| इसके लिए पैसा तो जनता का है| जनता के पैसे से वे सुख का भोग करते हैं|

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 43

[2] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 36

चुनाव के खर्च से सम्बंधित इस प्रसंग को देखिए – "किसी ने छोड़ दिया था कि जन चुनाव – खर्च की निर्धारित राशि पाँच लाख थी, ओ जगह-जगह छोटी-बड़ी सभाएँ होती थी, बैनर लगते थे, पोस्टर छपने थे, पर्चे बाँटे जाते थे| हर शाम जुलुस निकलते थे वाल राइटिंग होती थी, कारें और जीपें दौड़ती रहती थी और अब? अब जब पन्द्रह लाख कर दिया गया, तब कही कुछ नहीं| पता ही नहीं चल रहा है कि दो दिन बाद चुनाव है|"[1] इसके साथ रचनाकार जनता की प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है – "क्यों? हम बताएं क्यों भीड़ से गर्दन घुसेड़कर सरोंज बोले – "इसलिए कि प्रचार की जरूरते नहीं है|"[2]

एक और प्रसंग है – "राजस्थान, हिन्दी, मध्यप्रदेश, मणिपुर – इन चार प्रान्तों में चुनाव हो गए| हर पार्टी ने रुपये लेकर सीट बेचीं, यह भी पता नहीं किया कि उनके घर के वोट भी उसे मिलेंगे या नहीं| इन्ही में कुछ राष्ट्रीय क्या अंतर्राष्ट्रीय नेता भी थे जो अपनी ही विधान सभा के 180 बूथों में से 60 से अधिक के बारे में नहीं जानते| लेकिन इन्ही में से कई जीते भी क्योंकि इनकी नेतागिरी प्रेस पॉलिटिक्स वाली नेतागिरी है| वे अखबारों में अच्छे से अच्छा बयान देते है|"[3]

जनतंत्र राष्ट्र में चुनाव की आवश्यकता है| लेकिन आज जनतंत्र राष्ट्र में चुनाव ज्यादातर पैसे के बल पर चलनेवाला एक उत्सव बन गया है| संसद की सीट पैसे देकर या

---

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 60

[2] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 62

[3] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 91

अन्य किसी रास्ते से हासिल करना एक फैशन बन गया है| आज क्रिमिनल को भी सीट मिलेगी| सत्ताधारियों में क्रिमिनल की संख्या बढ़ती जा रही हैं| यह भी कहना जायज है कि चुनाव में जीतनेवाले राष्ट्र का शासन करते हैं| यह तो बिलकुल ठीक नहीं| इनमें से कुछ लोग शासन ईमानदारी से करते हैं| अधिकांश लोग पैसे कमाने के माध्यम के रूप में इसका उपयोग करते हैं|

भाजपा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की मंदिर राजनीति का खूब खुलकर चित्रण किया है| किस प्रकार उसने सामान्य जनता के मनोभाव को उकसा कर उसे सांप्रदायिकता में बदल दिया, "ग्राहक हिन्दू होने लगे इस बीच, आलू, भिन्डी, करेला, टमाटर, कोहंडा, कद्दू, गोभी मुसलमान हो गए| घाटे पर घोटा रिश्ते में खटास आई| भाई सलीम-अलीम छोड़ चले नईमको| वे चले गए| अलईपुर या जैतपुरा| अपने लोगों के बीच! नईम ने तय किया, वह सिर्फ आलू बेचेगा – आलू-प्याज में हिन्दू-मुसलमान जैसी ई चीज़ नहीं|"[1]

उपन्यास में राष्ट्रीय स्वाभिमान, गोसरक्षण, अयोध्या और पोखरान आदि का वर्णन किया है| "6 दिसंबर की अयोध्या की घटना की देन क्या है? जो मुसलमान नहीं थे या कम थे जिन्हें अपने मुसलमान होने का बोध नहीं था, वे मुसलमान हो गए रातों-रात| रातों – रात चंदा करके सारी मस्जिदों का जीर्णोद्धार शुरू कर दिया| देश की सारी मस्जिदों पर लाउड – स्पीकर लग गए| मामूली से मामूली टूटी मस्जिद पर भी लाउड-स्पीकर लग गया|

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 51

जिस मस्जिद में कभी नमाज़ नहीं पढ़ी थी, उसने भोर और रात में सुनाई पड़ने लगी|"[1] इसी रूप में वह उन स्थितियों को विश्लेषित करता है जिनमें हिन्दू-मुस्लिम के बीच का भाई-चारा खत्म होता चला गया| इसी को भी दर्शाया है|

सांप्रदायिकता की समस्या को भी उपन्यासकार ने अच्छी तरह से उजागर किया है| ईश्वर को अयोध्या में मंदिर से निकालकर मस्जिद में नमाज़ अदा करने ले जाता है और रास्ते में ही उसे अगवा कर मुंबई पंचसितारा होटल के स्वीमिंग पूल में बने मंदिर में लगभग बंदी बनाता दिखाकर फंतासी शैली प्रस्तुत किया है| सांप्रदायिकता का बखान करनेवाला एक प्रसंग है – "भगवान् कुछ समझ और विवेक से काम लीजिए| न तैश में आइए, न नाराज़ होइए| आप कहें न कहें हम समझते हैं| आपकी स्थिति| बड़े बुरे दिन देखे हैं आपने पिछले दिनों| - कितने पूछनेवाले रह गए ये आपको हमारे सिवा? ----- कितने आँकने वाले रह गए थे दखज्जे! बैठे-बैठे मक्खियाँ ही मार रहे थे आप|"[2]

<u>भूमंडलीकरण</u>

भूमंडलीकरण एक ऐसा भूचाल है जिसने पिछले दशकों में संसार का नक्शा ही बदल दिया है| इससे होनेवाली तबाही का रस्वीर स्पष्ट रूप से हम देख सकते हैं| लोग शहरों की ओर भाग रहे हैं जहाँ बेरोज़गारी, गरीबी, भीड़-भाड़, प्रदुषण, नशाखोरी, अपराध वृत्ति

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 93

[2] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 172

आदि बढ़ गयी हैं| इस तरह वह हमें जादुई यथार्थ की मनोहारी दुनिया से वर्तमान असलियत के धरातल पर ला देता है|

देशी उत्पादनों और देशी व्यापार का सर्वनाश ही भूमंडलीकरण की प्रक्रिया है| भूमंडलीकरण और उपभोगसंस्कृति का यह दौर वर्तमान पूँजीवाद का है| उदारीकरण, निजीकरण आदि कई शब्द इसके लिए प्रयुक्त होते हैं| भारत की राजनीति पर भी इसका असर पड़ा है| भूमंडलीकरण की व्यवस्था को खुले मन से स्वीकार किया| बाज़ारीकरण और उदारीकरण की राजनीति ने भारत की आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित किया है| भारतवासियों का यह सपना था कि इक्कीसवीं सदीं में भारत दुनिया के सबसे महानतम शक्ति बन जाएगा| लेकिन इसकी परिणति यह है कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्वबैंक जैसी वित्तीय संस्थाओं के जरीव संचालित बाजारीकरण की राजनीति| भूमंडलीकरण ने देश की आर्थिक, राजनैतिक अधिकारों तथा संस्कृति पर हमला किया है|

समकालीन हिन्दी उपन्यास ने भूमंडलीकरण के परिणाम स्वरूप उत्पन्न सामाजिक असंगतियों पर खुलकर विरोध प्रकट किया है| इसके पहले उपनिवेश काल में उपन्यास ने औपनिवेशिक शक्तियों के खिलाफ अपना सख्त रुष अपनाया था| इस दौर का प्रतिरोध काफी ज़ोरदार है| फिर भी साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रच्छन्न पुनः प्रवेश हो जाता है| इस प्रवेश को रोकना वास्तव में सचेत बुद्धिजीवियों का फर्ज ही है| इसलिए समकालीन संदर्भ के हिन्दी उपन्यासकारों ने इन साम्राज्यवादी शक्तियों के पुनः प्रवेश को रोकने तथा अपना विरोध जाहिर करने का कार्य औपन्यासिक रचना धर्मिता के तहत निभाया है|

काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यासों में भूमंडलीकरण की समस्याओं का वर्णन किया है| उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने भूमंडलीकरण से उत्पन्न व्यापारिक मनोवृत्ति, उपभोक्तावादी संस्कृति इससे उत्पन्न अपसंस्कृति का विकास, ब्रांड संस्कृति, बाज़ारवाद एवं मीडिया और विज्ञापन का प्रभाव आदि की ओर प्रकाश डाला है|

उपभोग संस्कृति

भूमंडलीकरण ने प्रत्येक वस्तु को उपभोग के दायरे में ला खड़ा किया है| कला, संगीत, धर्म, संस्कृति, सम्बन्ध यहाँ तक स्वयं मनुष्य भी इसी श्रेणी में आ जाते हैं| इस उपभोग संस्कृति से उत्पन्न व्यापारिक मनोवृत्ति का 'अपना मोर्चा' उपन्यास में घृणास्पद चित्रण किया है| खानचंद लड़के-लड़कियों की ओर इशार करता है और खजांची और नौकर को समझता है – "इनके मुँह न लागों, इनसे दिल्लगी न करो, इन्हें सहो, झेलो, क्योंकि ये हमारे रोज़गार हैं, उसकी आमद हैं| इन्ही के चलते शहर आबाद है, सड़कें रौशन है, जिन्दगी में खुशियाँ हैं, मज़े ही मज़े हैं| ज़रा सोचो ये ही न होंगे तो हमारी 'नेसकैफे' और 'ब्रूकबांड' का क्या होंगा? 'पांड्स', 'सिल्विक्रीन', निविया', , कहाँ जायेंगे? 'धारीवाल', 'लाल इमली' और 'मॉडल' के ऊनी मालों को कौन पूछेगा? टेरीलीन और टेरिकर की मिलें क्या होंगी? गागल्स, रेडियो, 'जूते, ट्रांसिस्टर, कैमरे, घड़ियाँ, सर्फ़, लक्स, गरज कि पूरे देश का क्या होगा? जब तक विद्या की यह राजधानी है न, तभी तक हमारी गंगा में -------- समझा?

इसलिए बोलो मत| ओठो को सिले रहों| अगर मुँह गालियाँ उगलता हो और जेबें पैसा, तो सौदा घाटा का नहीं हैं|"[1]

खानचंद समझता है, "तुम सड़क पर मत देखो वह तुम्हारी जग नहीं है| वह लड़की जिसके साथ छेड़-छाड़ हो रही है? क्यों? मिस्टर यह न भूलो कि ओठों की लिपस्टिक, गालो का रूज़, माथे की बिंदी, रबर की चोलियाँ, नायलन का बाल ये हमारे सामान हैं, हमारी साजिशें है, हमारे दिए हुए फैशन है और अगर ये नौजवान दिलों में उफान पैदा करते हैं तो यह हमारे लिए हमारी दूकान के लिए ख़ुशी की बात है| उनके गुस्से को वही आँटके रहने दो| उग्र वे ब्लाउस और चोलियाँ फाड़ते है तो तुम्हारी क्यों फट रही है? याद रखो कि लड़का हो या लड़की दोनों ही तुम्हारी 'केश-बुक' के पन्ने हैं| तुम्हारा काम सिर्फ मुस्कुराना है| इतना मुस्कुराओं की दूकान का हर माल मुसकरा उठे और वे दोनों के दोनों अपनी जेब तुम्हारी चाबी के हवाले कर जाएँ|"[2]

यहाँ उपन्यासकार ने व्यापारिक मनोवृत्ति का तीखा चित्रण किया कि मानवीय संवेदना नष्ट हो गई है| सब के सब अपनी जेब भरने पर तुले हुए हैं|

उपभोक्तावादी संस्कृति व बाज़ारवाद

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो गई| शिक्षा के द्वारा सबके लिए सब खुले आम मिल रहे है| महानगरीकरण और आधुनिक तकनिकी मनुष्य की श्रम

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 17

[2] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 17

शक्ति और बैद्धिकता पर हावी होने लगी| बीसवीं सदी के उत्तारार्ध एवं इस सदी के प्रथम दशक में उपभोक्तावाद का विकास हुआ| एक्ट्रोनिक मीडिया और भूमंडलीकरण ने जिस तरह से सुख-सुविधायें प्राप्त करने की भूख और महत्वाकांक्षाओं को जगाया, जिसके फलस्वरूप हमारे नैतिक मूल्यों और आदर्शों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया| इसके परिणाम स्वरूप हमरे पारिवारिक जीवन में बदलाव आया, हमारे राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक चरित्र भी बदल गए| युवा पीढ़ी मीडिया द्वारा प्रचारित सब कुछ पा लेने की अंधी दौड़ में प्रतिस्पर्थी बन गयी| अब हमारे सिंद्धांत और मूल्य वे नहीं गए जिन पर सदियों से हमारा गर्व करते थे|

काशीजी अपने उपन्यासों के माध्यम से उपभोक्तावादी संस्कृति को चित्रित करने का प्रयास किया है| इन से उत्पन्न एक अपसंस्कृति या उत्तर आधुनिक संस्कृति की ओर इशारा किया है| 'काशी का अस्सी' उपन्यास में भूमंडलीकरण से उत्पन्न उपभोक्तावादी मानसिकता एवं बाज़ारवाद को चित्रित करके हमारी जो सदियों की संस्कृति है| वह कैसे ह्रास की स्थिति में पहुँच गयी उसकी ओर इशारा किया गया है| 'काशी का अस्सी' को बनारस का शोक गीत मानते है| बनारस में बाज़ारवाद का चेहरा बहुत पहले से ही मौजूद हैं| इस उपन्यास का एक प्रसंग देखिए – "अब यही देखो! आप लंका से हर शाम आते हो, भांग खाते हो, चाय पीते हो, गपाब्टक करते हो और लौट जाते हो| मग्न रहते हो कि वाह रे हम! लिंग पर ग्लोब उठाकर तान दिया हमने और दुनिया देखती रह गई| कभी जानने की कोशिश कि की क्या हो गया है यहाँ? पता है आपको कि मोहल्ले में कितने मकान खरीदे है इन्होने लोकल आदमियों के नाम से? मकान लोकल अदमी के नाम और रह ये रहे हैं? कितने ऐसे

मकान है जिनकी मरम्मत के लिए इन्होने पैसा लगाए है खुद रहने के लिए| फर्जी शादियाँ की हैं वीज़ा के एक्सटेंशन के लिए, बीसों साइबर केफे खुलवाए है घरों में अपने जनसंपर्क और सुविधाओं के लिए| इसे ही समझते है, 'ग्लोबलाइज़ेशन'| उन्हें जितनी बार आना-जाना हो आयें-जाएँ, जब अक रहना हो, तब तक रहें, लेकिन हम? है हमारी हैसियत एक बार भी अमरीका जाने की, हमारा घर उनका घर है लेकिन उनका घर उन्हीं का घर है हमारा-तुम्हारा नहीं| अभी क्या देख रहे हो, थोड़े दिन बाद ही ये बोलोगे अस्सी जर्जर हो रहा है, ढहरा है, मर रहा है, हमें दे दो तो नया कर दे – एकदम चमाचम| काल बनारस को चमकाएँगे, परसों दिल्ली को ठीक करेंगे परसों पूरे देश को ही गोद ले लेंगे और झुलाएंगे खेलायेंगे अपनी गोदी में है – जसोदा मैया की कि पूतना की|"[1] यहाँ भविष्य के प्रति आशंका का इसलिए दिया गया की अतीत भी इसका संकेत है|

बाज़ार संस्कृति की ओर इशारा करता है – "हम काहे के लिए हैं? इस पुरे मामले का संबंध बाज़ार है| तुम्हारा काम है सरकार देखना, हमारा काम है बाज़ार देखना| हम अपना काम देखते हैं, आप अपना काम देखो| हम तो बाज़ार की एक ही मतलब जानते है सरकार, बाज़ार वह नहीं है जो सड़क पर है, दूकान में है, नुक्कड़ पर है, शोकेस में है, अलमारी में है, किचन में है, टायलेट में है और यही क्यों तुम्हारे बदन पर है, सिर के बालों से लेकर पैर के नाखून तक है|"[2] आज मानव के बीच विभाजित संस्कृति विद्यमान है| सारी चीज एक को

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 113

[2] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 142

मिल रहा है| यह उच्च नीच के भेदभाव का कारण बन जाता है| एक के घर में दूसरे के घर की तरह चीजें नहीं है तो वह भेदभाव का कारण बन जाता है|

बाज़ार चीजों से भरा पड़ा है| ज कुछ भी बनने को सावधानी की ज़रूरत नहीं| बाज़ार से चीजें खरीदकर उसके बल पर कृत्रिम सौन्दर्य को अपनाकर लोग विजय प्राप्त करते हैं| इसके लिए आवश्यक सारी चीजें बाज़ार में उपलब्ध है| ज्यादा खर्च करके उन चीज़ों को लेना आज का कार्य बन गया है| एक और वाक्य को देखिए – "यह भी वक्त है जब बीवियां झुँझलाए और मुर्दा चेहरों के साथ किचेन में घुसती है चाय तैयार करने के लिए और अपनी किस्मत का रोना शुरू करते है| चाय और चूल्हा, बिस्तर और बच्चे – क्या जिन्दगी है अपनी भी? इनके सिवा कुछ नहीं है क्या? है क्यों नहीं – बोलो उनसे, ज़रा बाहर तो नज़र डालो| फास्ट फुड' क्यों बिक रहे? रेस्त्रांऔर होटल किसलिए है? किनके लिए है? किचन की ही मोनोटोनी को तोड़ने के लिए न? जायका ही बदलने के लिए न? माँग लो जो चाहो| कहीं जाने की भी झांझर नहीं| और यह भी बताओ होंठ, दांत, नाक, कान, आँख, बरौनी, भौं, माथा, चमड़ी, बाल इन सबके लिए एक नहीं, बीस तरह की – बीस रंग की – बीस साइज की, सस्ती-से-सस्ती-महँगी-से-महँगी चीज़ों से पार दिया है बाज़ार|"[1] यह हो गई है हमारी संस्कृति| बाज़ार में सब चीजें उपलब्ध हैं| इस प्रकार एक अपसंस्कृति का निर्माण हो रहा है|

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 144

उपभोक्तावादी संस्कृति को 'रेहन पर रघु' उपन्यास में भी चित्रित किया है| यह उपभोक्तावादी संस्कृति मूल्यों के विघटन की संस्कृति है| इस उपन्यास के सभी पात्र आधे अधूरे एवं मन की विकृतियों के शिकार हैं| उनमें अपने स्थापित मूल्यों के प्रति अनास्था का भाव है| वे जिस रास्ते पर आगे बढ़ते चले जाते हैं उसकी दिशा भी तय नहीं कर पाते हैं| उपन्यास में हम इसका प्रत्यक्ष चित्रण देख सकते हैं| इसका युवा वर्ग आज के समय के अनुकूल है| युवा लोग किसी न किसी प्रकार अपने भविष्य लेकर चिंतित है| अपने भविष्य को आगे बढाने के लिए किसी को भी अपनी सीढ़ी बनाने के लिए वे तैयार हैं| इसलिए शादी जैसे पवित्र रिश्ते को भी अपने लक्ष्य तक पहुँचने की सीढ़ी के रूप में इस्तेमाल करते हैं| उसी सीढ़ी का उपयोग करके वे अमेरिका पहुँचते हैं, बाद में एक अन्य रुपयेवाले को देखकर पत्नी को भूलकर उसके साथ रहने लगते हैं| पत्नी को यह राय भी दे देता है कि नया बायफ्रेंड ढूँढ़ लो|

माँ-बाप के प्रति जो दायित्व है वह भी निभाने के लिए उन लोगों के पास समय नहीं है| उन की राय में बच्चों को पढ़ाना, बढ़ाना उन लोगों का कर्तव्य है| बचपन की एक सीढी के रूप में वह उन्हें मान लेता है| उनके प्रति किसी कर्तव्य की चिंता नहीं| पैसा न होने के कारण उन लोगों की खबर तक नही लेता| आज की दुनिया का मायना तो पैसे पर निर्भर है| पहले रिश्ते एवं कर्तव्य आदि पर निर्भर था| लेकिन आज के युवा लोगों के लिए इसका मूल्य नहीं वे मात्र पैसे पर जोर देता हैं|

पैसा कमाने के लिए वे लोग इधर-उधर भाग दौड़ कर रहे है| लेकिन यह दौड़ कही पर जाकर रूकती नहीं जिन्दगी भर ये लोग दौड़ते हैं| उन लोगों के लिए पूर्वजों की संपति

कृषि बातें आदि से कोई मतलब तक नहीं| आज की युवा पीढी एवं शहरी उपभोक्तावादी संस्कृति की विकृतियों का तो यह उपन्यास जीवंत रूप में पर्दाफाश करता है|

रघुनाथ की जीवन स्थितियों के माध्यम से यह दिखाया है कि उत्तर आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति शहरों तक ही सीमित नहीं है, इसका प्रभाव गाँवों में भी तेजी से फ़ैल रहा है| रघुनाथ देखते हैं कि उनका गाँव अब वह गाँव नहीं गया है जिसमें अपनापन प्रेम एवं सांस्कृतिक समन्वय था| हर चीज़ का मूल्य अब पैसों पर आँका जा रहा है| लोगों की मनोवृत्तियाँ बदल हैं| गाँव में टेलीफोन के तार और बिजली की लाइनें बिछी सामन्ती संस्कारों की एकरसता वाला गाँव आधुनिकता की हवा लगने से अपना पारंपरिक स्वरूप खोकर नया रूप धारण कर लेता है|

लोग तो आत्म-केंद्रित हो गए| उनके सभी निर्णय अर्थ केंद्रित हो गए| धन की बेलगाम होड़, कृषि की उपेक्षा एवं बेटों के व्यवहार आदि को लेकर रघुनाथ एक जगह टिप्पणी करता है – "भगवान न करे कि वह दिन आये जब बैंक चावल के दाने बांटो|" जीवन के हर पहलु पर किस तरह कोओपरेटर घुसपैठ हो रही है उसमें इस आशंका को खारिज नहीं किया जा सकता| उपन्यास के अंत में रघुनाथ के गाँव की ज़मीन पर नज़र गडाए उनके भाई का लड़का नरेश किसी माफिया ग्रुप के दो लड़कों को एक दिन रघुनाथ के पास भेजता है| वे लड़के रघुनाथ पर ज़मीन को बेचने के कागज़ातों पर दस्तखत करने का दबाव डालता हैं| पैसों की खातिर कुछ भी कर देने के लिए ऐसे भूमाफिया आज शहरों से लेकर गाँवों तक फैला हुआ है| हत्या, लूटपाट, किसी को भी बेघर कर देना आदि इन माफियाओं के लिए बाएं हाथ का खेल हो चूका है| रघुनाथ पैसों की खातिर आए उन युवकों

को और अधिक पैसों की लालच दिखाकर अपने को ही उनके पास रेहन पर रख देते है और उनके साथ चल देते है| इस प्रकार उपन्यास का यह अंत आज की माफिया अपसंस्कृति के सामने मनुष्य की पराजय का प्रतीक बन जाता है|

विज्ञापन

आज वैश्वीकरण का मुख्य औज़ार है विज्ञापन| उसने उपभोग को उपभोगवाद में बदल डाला है| आज जनता विज्यपन में विशवास रखकर माया लोक में पड़ी हुई हैं| जीवन पूर्णतया विज्ञापन द्वारा निर्मित मापदंड के आधार पर चलता है| टी.वी अखबार आदि माध्यमों के द्वारा विज्ञापन जनता के सामने अपनी माया प्रकाशित कर रहा है| आज टी.वी. में कार्यक्रमों से अधिक विज्ञापन ही देता है| लोगों को अपने वश में लाने के लिए फिल्म स्टार और क्रिकेटर को इकट्ठा करके विज्ञापन प्रकाशित करता है| लोग इस के पीछे के बाज़ार तंत्र के बारे में चिंतित नहीं है| जनता के लिए मौलिक चिंतन आज नष्ट होते जा रहे है| सब कहीं फैशन ही फैशन है|

'काशी का अस्सी' का एक प्रंसग देखिए "एक दिन गुरु ने चौराहे पर एक बहुत होडिंग देखा –गंगा नहाकर आते समय राम-नाम के पहरे में| होडिंग 'क्राउन' टेलीविजन का था और परदे पर एक खूबसूरत हँसती हुई हिरोइन थी| जुल्फें माथे औरे गालों पर और चमकते हुए

सफ़ेद दांत धीरे-धीरे नगर के सारे चौराहे, सड़के, गलियाँ, नुक्कड़ और दुकानें ही नहीं, अखबार भी उनके विज्ञापनों और पोस्टरों से रंगे दिखाई पड़ने लगे|"[1]

यह एक नयी लहर है, नया जूनून है| देशी-विदेशी कम्पनियों के ऐसे होडिंग/पोस्टर और विज्ञापन को आकर्षक बनानेवाले चेहरे और उनकी भाषा| यह देखकर हम उस चीज को खरीदने के लिए तड़प उठते हैं| उसको बिकने के लिए नए नए एजेण्ड है नयी नयी दुकानें हैं और उनके पीछे पागल जनता है| इस प्रकार के विज्ञापनों का लक्ष्य मनुष्य ही है, इस तरह हम बाजार संस्कृति के अंग बनते हा रहे हैं|

यह प्रसंग देखिए – "अरे सुनिए तो जस्ते के भगौने में दाल भी नहीं चुरती है और भात या तो मडिगल्ला' रह जाता है या कच्चा| 'प्रेस्टीज कुकर' क्यों नहीं ले आते, सस्ता भी होता है और अच्छा भी|

(जो बीवी से करे प्यार, वह प्रेस्टीज से कैसे करे इनकार) आज के ज़माने में राख और अबसनन कैन इस्तेमाल करता है जी?

'वाशिंग पाउडर निरमा' क्यों नहीं लाते? बहरे हो क्या, सुनते नहीं है| ललितजी क्या कहती है –

सर्फ़ ले आओ| सर्फ़ खरीदने में ही समझदारी है|

यह कौन सी साबुन ले आए? यह भी कोई लगाते है आज?

---

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 149

बद्री साब की दूकान पर दोनों साबुन देखे थे – हेमामालिनी वाला भी और रेखावाला भी| जाओ इसे वापस कर आओ|"[1]

दुनिया आज बिल्कुल बदल रही है| आज जो चीज हम खरीदते हैं उसी पर केंद्रित है हमारी समझदारी| बाजार की उन्नत कम्पनियों की चीज खरीदे तो हम बनेगे समझदार नहीं तो मूढ़| यही हालत हमारे बीच से ही गुजर रह है| चोजों की इतनी भरमार से लोगों तंग रह गए है| यही भिन्नता का मानदण्ड बन गया है| सब के मन में यह हविश होती है कि किसी भी कीमत पर चीजों को खरीदकर अपना घर भर दिया जाए| विज्ञापनों की करिश्मा से आज बाज़ार की रंगीली दुनिया के प्रति समाज का हर व्यक्ति आकृष्ट है|

मीडिया

प्रत्येक मीडिया समाज की विकास यात्रा का प्रतिनिधित्व करता है| समाज और उसके विकास का दौर जितना सहज एवं सरल होगा उसके संचार माध्यम भी वैसा ही होगा| वे समाज से सीधे जुड़े रहेंगे| आज विशाल पूँजी और टेक्नोलजी ने माध्यमों और मनुष्यों के बीच जबरदस्त विलगाव पैदा कर दिया है| दोनों परस्पर अपरिचित होते है| लेकिन दोनों के बीच संबंधो की एक अदृश्य डोरी बनी रहती है| क्योंकि पूँजी और टेक्नोलजी की प्राथमिकता लाभ और हानि पर केंद्रित है|

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 151

तीसरा अध्याय

'काशी का अस्सी' उपन्यास का एक प्रसंग है – "तलवार मुकाबिल हो तो अखबार निकालों वालो की| ये मालिकों को गरियाते है लेकिन छापते वही है जो वह चाहता है| ये धर्मनिरपेक्ष है लेकिन खबरें धर्मोन्माद की छापते हैं| दंगा, हत्या, लुट-पार, चोरी-डकैती, बलात्कार के शानदार अवसरों पर इनके चेहरे की चमक देखते बनती है|"[1]

अखबारों का अपना एक एथिक्स है| लेकिन आज उस एथिक्स का पालन करनेवाले विरले ही मिलते है| ज्यादातर अखबार चलानेवाले लोगों को अपनी एक अलग राजनीति होती है| वे लोग उससे संबंधित समाचारों को बल देता है| आज धर्म के नाम पर समाज में कोलाहल हो रहा है| अखबार इस प्रकार की स्थितियों में उसे और अधिक बढ़ावा देकर आग में घी डालने का कार्य करता है| इसलिए यह करना सार्थक होगा कि हाथ में कलम है उसके बल पर अखवार में कुछ भी लिखने के लिए लोग तैयार हैं| इसको सार्थक बनाने वाला यह प्रसंग देखिए – "तो भैया, भगवान भला करे हीरालाल बुड़ाऊ का| उन्होंने उसे जाने क्या से क्या बना दिया एक सौदागर| लेकिन यह पक्का कि सौदा हुआ जिसकी खबर अखबारों में नहीं थी| अखबारों में खबर थी बिहारी लाल की पार्टी के 'अधिवेशन की जो कुछ महीने बाद ही मुंबई में हुआ था|

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 18

उसी दरम्यान एक 'डिनर पार्टी' भी हुई थी उसी पंचसितारे होटल में और उसकी भी चर्चा नहीं थी किसी अखबार में| तो पार्टी हुई उन्ही सेठों की ओर से और उसमें शामिल हुआ सरकार का नुमाइंदा-खजाने का वजीर| और वजीर ने एक भाषण दिया-बड़ा धाँसू|"[1]

टी.वी. कार्यक्रम की वास्तविकता के संबंध में ब्रह्मानंद गुरु से कहनेवाला व्यंग्य भरा एक प्रसंग है – "अप टी.वी. तो देखते हैं न? कुछ सीरियल ऐसे आते हैं जैसे 'लाइव शो' हों| और कुछ गायक भी है – गजल गानेवाले, वे गाते रहते हैं और श्रोताओं या दर्शकों की ओर से 'वह-वाह' होता रहता है| वे दिखाई पड़े या नहीं, उनकी हँसी और ठहाके सुनाई पड़ते हैं|"[2] आज टी.वी. चैनलों में अधिकतर धारावाहिक है| लोग इसके सामने बैठकर समय खो देता हैं| इससे क्या मिल रहे हैं इसके संबंध में लोग सोचते भी नहीं हैं| बच्चे इस प्रकार के कार्यक्रमों को देखकर उसी प्रकार का कार्य कर रहे है| टी.वी. चैनलों के कार्यक्रमों की अधिकता से संबंधित एक प्रसंग को देखिए – "टी.वी. के पचासों चैनल लेकिन किसी पर 'रामकथा' हो रही थी, किसी पर 'सन्त प्रवचन', किसी पर 'भजनों' का कार्यक्रम चल रहा था तो किसी पर 'लग्न' और 'राशि' और ग्रहों की चर्चा, किसी पर मथुरा की 'रासलीला' दिखाई जा रही थी तो किसी पर 'वैष्णो देवी', फिल्म| कुछ पर फ़िल्में थी और कुछ पर कहकहोंवाली सीरियल| एक दो चैनल समाचारों वाले भी थे लेकिन एक छोटे से नगर की

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 139-140

[2] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 78

एक छोटी सी कॉलोनी ऐसी कोई ख़ास तो नहीं कि उसका जिक्र हो| उम्मीद थी 'सिटी चैनल' से लेकिन उस पर 'कमल' विषय पर फ़िल्मी अन्त्याक्षरी चल रही थी|"[1]

आज चैनलों के द्वारा ज्योतिषियों से बात हो सकता है| आज का मानव जितने भी विकसित मानते हैं उतने ही अन्दर ही अन्दर अंधविश्वासों से भरे पड़े हैं| सभी लोग साधारण से लेकर राजनीति लोग भी इन ज्योतिषियों की बातों पर आकर अपना धन और समय बरबाद करते इससे संबंधित इस प्रसंग को देखिए – "देश के सभी ज्योतिषी किसी न किसी टी.वी. चैनल पर चौबीस घंटे भाख रहे थे कि बुढ़ावा इस समय किस दिशा में है? पूरब कि पश्चिम की उत्तर कि दक्खिन? कब तक पकड में आ जाएगा? उसकी हँसी देश के लिए शुभ है या अशुभ? देश की गृह दशा कैसी चल रही है? साढ़ेसाती जा क्या हाल है? जिन ज्योतिषियों को कभी कोई पूछता नहीं था, उनकी तूती बोल रही थी चैनलों पर|"[2]

संबंधों में आये बदलाव

भारतीय संस्कृति में रिश्तों का महत्वपूर्ण स्थान है| रिश्ते, परिवार एवं संबंध हमारे जीवन के अभिन्न अंग हैं| लेकिन आज के युवजनों के मन में रिश्तों का कोई मूल्य नहीं| उन लोगों को रिश्ता एक प्रकार के बंधन की तरह है| वे लोग इस बंधन से मुक्त होना चाहते हैं| आज के लोग आत्मकेंद्रित हो गये हैं| ये सब तो आवारा पूँजी से उत्पन्न है| रेहन पर रघु' में इसका चित्रण हम देख सकते हैं| रघुनाथ का बड़ा बेटा संजय के जो कि माता-पिता को

[1] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 158

[2] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ : 162

अनदेखा कर प्रेमी के साथ शादी कर लेता है| संजय के लिए यह अवसर है जिसे वह बाज की तरह झडप लेता है| उपन्यासकार के अनुसार – "संजय ने प्यार किया था सोनल को यह प्यार किसी सडक छाप टुच्चे युवक का दिलफेंक प्यार नहीं था, इसमें गुण भाग भी था और जोड़ घटना भी| जितना गहरा था उतना ही व्यापक|"[1]

यह शादी संजय के लिए सीढ़ी है| जिसके बूते वह अमेरिका पहुँचता है और वर्तमान होड़ में शामिल हो जाता है| "वह एक शुरू करता है कि दूसरी की खोज में लग जाता है| इसे वह महत्वाकांक्षा बोलता है| अगर वही महत्वाकांक्षा है तो फिर लालच क्या है|"[2]

यह महत्वाकांक्षा रूपी लालच उसमें इतना प्रबल है कि वह अपनी पत्नी को छोड़कर अन्य लड़की से अपना रिश्ता जोड़ देता है| वह उस युवती को भी एक सीढ़ी की तरह ही मानता है, अपने लक्ष्य तक पहुँचने की|

संबंधों का पण्यीकरण वैश्विकता की उपज है| यह एक संकट है| पूंजीवाद के प्रारम्भिक समय में संबंधों के बीच में तनाव जारी रहा पर टूटने नहीं शुरुआत था| फिर अधिकार को लेकर संघर्ष उत्पन्न हुआ| लेकिन आवारा पूँजी का वर्चस्व और उसके साधन और साध्य दोनों के बनते जाने की प्रक्रिया में उसने मानवीय संबंधों को सदा के लिए बदल दिया है| पीढीगत सोच के बीच बड़ी बड़ी खाई उत्पन्न हो गयी है| रघुनाथ के लिए

[1] काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घु, पृ : 20
[2] काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घु, पृ : 110

कृतज्ञता बड़ा मूल्य है लेकिन उसके लड़के संजय के लिए कृतज्ञता का कोई मतलब नहीं| सभी रिश्ते उनकी राय में पैसे पर आधारित है|

रघुनाथ के छोटे लड़के से पूरे संबंधों में आये बदलाव ठीक तरह से हम देख सकते हैं| जब बाप उसकी बहन की शादी के खर्च की बात करते हैं तो वह कहता है "यह मुझसे क्यों कह रहे हो|"[1] वह सोनल संजय से सम्पर्क बनाए रखता है और वहाँ से पैसा पाता है| यही राणू आगे चलकर विधवा विजया के साथ लिव-इन रिलेशनशिप में रहने लगता है| पर संग साथ में प्रेम की बजाय पैसे की ज़रूरत है| अपनी भाभी से बात करते हुए धनंजय निर्लज्ज रूप से कहता है – "भाभी मामला कुछ भी नहीं बात सिर्फ इतनी है कि उसे मेरी ज़रूरत है और मुझे उसकी जब तक जाँब नहीं मिल जाती|"[2]

उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में प्यार को एक नये रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है| 'अपना मोर्चा' में उपन्यासकार इसके बारे में जिक्र करते हुए कहते है – "यह ठीक है कि यह सब अच्छा है, लेकिन तुम गरीब हो! हम गरीब हैं| तुम प्यार तो करों लेकिन अपना हाथ अपनी ही जेब में रखो यह याद रहे कि तुम वह कारतूस नहीं हो जो एक बार चले जाने के बाद खाली खोल सा रह जाय! भाई, लम्बा रास्ता है और बहुत बार चलना है|"[3]

---

[1] काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घु, पृ :

[2] काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घु, पृ :

[3] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ : 13-14

रेहन पर रग्घु में प्यार का एक दूसरा रूप चित्रित है| संजय सोनल प्यार करके शादी कर लेते हैं| पर सचमुच संजय ने अपने भविष्य को बनाने के लिए ही प्यार एवं शादी की| सरला एक दूसरा पात्र है जो पढ़ानेवाले अध्यापक के साथ प्यार करती है| उनके साथ बाहर घूमने के लिए जाती है| वहाँ पुलिस पकड़ते वक्त उन लोगों से खुलकर अपने प्यार का इज़हार करता है| ये सब आज की दुनिया की देन है| वह अपने मन में जो आता है इसकी पूर्ति के लिए किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार हो जाता है| लेकिन यह प्यार शादी करने के लिए नहीं| बाद में सरला सुदेश भारती नामक युवक से प्यार करती है उससे शादी करने का सहस नहीं दिखाता, लेकिन उसके साथ घूम-फिर कर आनंद जरुर उठाती रहती है| मीनू नामक पात्र भी ऐसे प्यार की तलाश करनेवाले पात्र हैं| खुले आम से|

'महुआचरित' में महुआ नामक युवती की कथा है| इसमें अपने देहासक्ति को मिटाने के लिए अपने पड़ोसी के साथ घूमना और गर्भवती बनने पर गर्भपात कराना किसी को खबर न पाने के पहले ही अपने दोस्त के साथ शादी करना आदि का चित्रण हुआ है|

समसामयिक समय में मानवीय संबंधों को अर्थ बदल गया, मायना बदल गया है| दरअसल समकालीन समाज में व्यक्ति की संवेदनात्मक के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है| लोग पूरी तरह से आत्म केन्द्रित एवं प्रोफशनल हो गये हैं| दूसरों के इमोशन को पहचानने के लिए उन लोगों के पास समय नहीं है| उपन्यासों के पात्रों के माध्यम से संबंधों में आये बदलाव एवं पीढीगत खाई देख सकते है|

नारी

तीसरा अध्याय

आदिकाल से लेकर साहित्य में कहीं कहीं स्त्री लेखन का तथा स्त्री विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ है| लेकिन एक आन्दोलन के रूप में स्त्री मुक्ति को लक्ष्य बनाकर लिखे गये साहित्य की शुरुआत सन सत्तर के बाद ही दिखाई देती है| आदिकाल मध्यकाल और रीतिकाल में स्त्री का भोग्या रूप ही चित्रित हुआ है| आधुनिक काल में ही स्त्री को लेकर एक बदली हुई मानसिकता का विकास हुआ था

काशीजी के उपन्यासों में दो दशकों के भारतीय यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत है| पुरानी नारी और नवीन विचारवाली नारी का चित्रण है| 'रेहन पर रग्घु' उपन्यास में नारी अस्मिता के बार में उपन्यासकार ने अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है| अस्मिता की बात करते वक्त नारी का जो शोषण हो रहा है समाज में इसका भी चित्रण किया गया है| इस उपन्यास में मुख्य रूप से चार नारी पात्र है जिनमें एक शीला तो पुरानी नारी का प्रतीक है| याने कि सब के लिए अपने पति पर निर्भर रहने वाली| बाकी तीन पात्र अपनी अस्मिता को बनाये रखते हुए आगे पढ़ते हैं|

सोनल इस उपन्यास का एक मुख्य नारी पात्र है जो अपने पति के साथ जीवन बिताना चाहती है| लेकिन पति ने तो उसे अपने लक्ष्य तक पहुँचने के मार्ग के रूप में ही स्वीकार किया था| उसका लक्ष्य तो किसी न किसी प्रकार अमेरिका जाना था| पर यह सोनल को पता नहीं था| वह तो पढ़ी लिखी नौकरीपेशा औरत होने पर भी उसे छोड़कर अन्य युवती के साथ रहने लगता है| पति द्वारा उपेक्षित होने पर भी अपनी शिक्षा के कारण वह नौकरी करके जीवन बिताती है| पति के हरकतों के बारे में उसे पता था लेकिन उसने किसी से कुछ नहीं कहा| अपने कर्तव्यों का पालन करके जिन्दगी को आगे बढाती रही| पति

द्वारा उपेक्षित होने पर भी सोनल अपने सांस-ससुर को अपने साथ रहने के लिए बुलाती है| शीला के चले जाने के बाद भी रघुनाथ वही उसके साथ रहते हैं| अपने जीवन को अधूरा छोड़ना वह नहीं चाहती थी| इसीलिए अपने जीवन साथी के रूप में अपने एक मित्र को चुन लेती है| वह पुरानी नारी नहीं एक नये ढंग की नारी है|

सरला नामक एक अन्य युवती के माध्यम से नारी चेतना का एक नया एवं आक्रामक रूप प्रस्तुत किया गया है| रघुनाथ अपनी बेटी की शादी किसी न किसी प्रकार कर लेना चाहता था| सरला तो पढ़ी लिखी युवती होने पर भी उसकी शादी नहीं हुई, दहेज़ के अभाव के कारण| दहेज़ न देने के कारण एक एक करके कई प्रस्ताव टूट गए| इससे घर के सब लोग चिंतित हैं|

सरला भी चिंतित थी अंत में सरला बाप की परेशानी को देखकर कहती है कि - "पापा मेरे लिए लड़का ऐसा ढूँढ रहे है जैसे कोई गाय के लिए सांड ढूँढता है|"[1] यह तो आज की नारी की सोच है| ये लोग चुपचाप खड़े रहने के लिए तैयार नहीं| सरला अपने बाप से कहती है कि – "आप दूसरों की शर्ते पर शादी कर रहे थे, यहाँ मैं करुँगी लेकिन अपनी शर्तों पर, आप मेरी 'स्वाधीनता' दूसरे के हाथ में रहे थे, यहाँ मेरी 'स्वाधीनता' सुरक्षित है, आप 'अतीत' और 'वर्तमान' से आगे नहीं देख रहे थे, हाँ मैं 'भविष्य' देख रही हूँ जहाँ 'स्पेस ही स्पेस है|"[2] अपने अतीत और वर्तमान को सुरक्षित रखना चाहती है| इसलिए निचली जाति के सुदेश भारती से शादी करने का निर्णय घर में प्रस्तुत करती है| सब लोग उसके विरुद्ध हो

[1] काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घु, पृ : 44

[2] काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घु, पृ : 54

गये फिर भी वह अपने निर्णय से हटती नहीं| पर बाप के निर्णय पर अपना जीवन व्यतीत करने के लिए वह तैयार नहीं थी| अंत में शादी न करके अंत तक अकेली ही जीने का निर्णय लेती है| इसी प्रकार अपने जीवन की महत्वपूर्ण बातों का निर्णय करने का स्वातंत्र्य भी नारी को मिल जाता है|

मीनू भी एक ऐसा पात्र है जो अपने प्यार को घरवालों द्वारा कुचला डालने पर भी अपनी जिन्दगी को अकेला आगे बढ़ाने का निर्णय करती है| मीनू अब अकेले ही रहती है और अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए एक डाक्टर से मित्रता कर लेटी है| यह उत्तर आधुनिक युवतियों की दृष्टि है| प्रेम के बारे में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहती है, "एक बात गाँठ बाँध लो सल्लो, तुम दोनों एक साथ कर ही नहीं सकती| यह समाज ही ऐसा है| प्रेम करो या विवाह करो| और जिससे प्रेम करो उससे ब्याह तो हरगिज़ मत करो| ब्याह की रात से ही वह प्रेमी से मर्द होना शुरू कर देता है| अगर मुझसे पूछो तो मैं हर पत्नी को एक सलाह दे सकती हूँ| वह अपने पति को अपने से बाहर घर से बाहर अगर वह पति का प्यार पाना चाहती है तो घर से बाहर प्रेम करने की छुट दे, उकसाए तो उसके के लिए| क्योंकि वह कहीं और किसी को प्यार करेगा, तो उसके अन्दर का कडवापन रूखापन भरता रहेगा और इसका लाभ उसकी बीवी को भी मिलेगा! बीवी ही नहीं बच्चों को भी मिलेगा| समझा|"[1]

यह सलाह निश्चय ही उत्तर आधुनिक नारी की सोच का परिणाम है| वह प्यार के बारे में भी अपना उपदेश दे रही है – "सुनो प्यार एक खोज है सल्लो| जीवन भर की खोज|

[1] काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घु, पृ : 39

कभी खतम, कभी शुरू| खोज किसी और की नहीं खुद की| हम स्वयं को दूसरे में ढूँढते हैं, एक बिछड़ जाता है या छुट जाता है तो लगता जिंदगी ख़त्म| जीने का कोई अर्थ नहीं रह जाता| आँखों के आगे शून्य और अन्धेरा हर चीज बेमानी हो जाती है| लेकिन कुछ समय बाद कोई दूसरा मिल जाता है और नए सिरे से अँखुआ फूट निकाला है फिर लहलह फिर मह मह! यह दूसरी बात है कि दूसरा भी स्वयं को ढूँढ़ते हुए टकराता है| सच कहो तो प्यार की खूबसूरती हर बार उसके अधूरेपन में ही है| उसकी यानी प्यार की उम्र जितनी ही छोटी हो उतनी ही चमक और कौंध| अगर लंबी हुई तो सडाँध आने लगती है| यह ज़रूर है कि इसे छोटी या लंबी करना हमारे वश में नहीं होता|"[1] ये पात्र अपनी वैक्तिक स्वाधीनता के नाम पर स्वच्छंदता के पक्षधर है| इनके मानस में तरह तरह की विकृतियाँ है| जो आज के समाज को, पारिवारिक संख्या को विश्रृंखलित करती प्रतीत होती हैं| लेकिन उसका आर्थिक शोषण तो घरवाले द्वारा होता है| घरवाले उसकी शादी न कराके उसके पैसे से मतलब रखते थे| उन लोगों का रिश्ता पैसे पर था|

वैयक्तिक स्वाधीनता के नाम पर स्वच्छन्दता के पक्षधर होनेवाले पात्र को 'महुआचरित' उपन्यास में महुआ के माध्यम से प्रस्तुत किया है| महुआ पढ़ी-लिखी युवती है| पी.एच.डी भी की है| लेकिन जीवन में प्यार की कमी वह महसूस कर रही है| पढ़ते समय प्यार करने, शादी करने की बात नहीं आयी| इसके बाद एक प्रकार से अकेलापन महसूस कर रही थी| सहेलियाँ सभी शादी करके अपने अपने जीवन व्यतीत कर रही है| उसके पापा तो देश और दुनियाँ के बारे में सोचते रहते है| पर अपनी बेटी के बारे में सोचता तक नहीं|

[1] काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घु, पृ : 42

इसके बारे में महुआ की सोच है – "तुम्हें तो यह तक पता नहीं कि तुम्हारी बेटी की उम्र क्या है? उन्तीस या तीस, तुम जिन सहेलियों के बारे में पूछते हो, उनमें कितनी माएँ बन चुकी है और कितनी पेट से हैं? तुम यह भी जानते हो कि न दहेज़ दे सकते हो, न मैं वैसी शादी कर सकती हूँ| फिर भी तुम खुल कर क्यों नहीं कहते कि बेटी, तुम्हें जो करना है करो| हम साथ हैं तुम्हारे|"[1]

एक ऐसी युवती जिसका कोई दोस्त नहीं| अपने ही घर की छत को अपनी सहेली के रूप में मानती है और बाते करती रहती है| अपनी मन की इच्छाओं परेशानियों को छत के साथ बाँटती है| अपने शरीर की भूख मिटाने लिए किसी लड़के से प्यार करने के लिए तैयार थी| उसी समय उसका मुलाकात पडोसी व्यक्ति साजिद से हुआ| उनके साथ महुआ हैदराबाद गयी| महुआ के अनुसार "मेरे लिए यह 'कोई साजिद था|

यह संयोग ही था कि यह साजिद था वर्ना वह शिशिर या शशांक या शुभम कोई भी हो सकता था| बस यह थी कि किसी न किसी वजह से वह मुझे भी अच्छा लगना चाहिए था|"[2] उसके साथ घूम कर घर लौटते वक्त कहती है कि "आज के बाद न मुझे रम पहचानते हो न मैं तुम्हे| बस, सारा कुछ यही ख़तम|" हैदराबाद से लौटकर महीने बीत जाने पर महुआ को पता चलता है कि वो माँ बननेवाली है| लोक लाज से डरकर गर्भपात करके पुराने कॉलेज के साथी – हर्षुल से शादी करके जीवन बिताती है| अपने पति के नाजायज संबंध को पहचानते वक्त उसका मन टूट जाता है| एक ऐसा मोड आता है कि उसके पति

[1] काशीनाथ सिंह, महुआ चरित, पृ : 14

[2] काशीनाथ सिंह, महुआ चरित, पृ : 41

महुआ और साजिद के संबंध के बारे में जानते है तो महुआ उसे दूरी बनाये रखती है| महुआ सोचती है की –

"हम हर चीज के बंटवारे सह लेते हैं

लेकिन देह का बँटवारा नहीं सहा जाता|

ऐसा क्यों है?

ऐसा क्या है देह में कि उसका तो कुछ नहीं बिगड़ता| लेकिन मन का सारा रिश्ता नाता तहस-नहस हो जाता है|"[1]

अंत में आकर उसकी अस्मिता जाग उठती है| पति तब उन्हें घर से निकालने से पहले वहाँ से जाने की तयारी करती है| जाते वक्त महुआ अपनी पुराने रिश्ते के बारे में सब कुछ कहकर जाती है| जाते वक्त हर्षुल उससे कहता है कि "निकाल फेंकों उसे| मझे नहीं चाहिए| यह मेरे ढाई महीने के गर्भ की ओर इशारा था|"[2] इसके बदले में महुआ कहती है कि – "मैंने उसी भाव से हँसते हुए कहा – क्यों, जूठा है?

बस कह दिया नहीं चाहिए|

[1] काशीनाथ सिंह, महुआ चरित, पृ : 98

[2] काशीनाथ सिंह, महुआ चरित, पृ : 99

पेट मेरा है| पैदा मुझे करना है| तुम्हें किस बात की तकलीफ हैं|"[1]

हर्षुल मैंने तुमसे कभी नहीं पूछा कि पिछले तीन साल से ही नहीं, आज भी तुम वर्तिका बनर्जी के साथ क्या कर रहे हो? क्या कर रहे हो, जानती हूँ लेकिन नहीं पूछूँगी| इतना याद रखना|"[2] उसे अपनी अस्मिता बोध को प्रकट करते हुए ड्राइवर से कहते हैं – "हाँ, अब चलो भैया लेकिन आराम से| कोई जल्दी नहीं है|"[3] काशीजी ने अपने उपन्यासों में नारी अस्मिता को चित्रित करने के साथ साथ नारी शोषण का भी चित्रण किया है| गाँव के उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग की नारियों का दैहिक शोषण होता है| इसका उल्लेख 'रेहन पर रघु' उपन्यास में हम देख सकते है| पर उसके विरुद्ध कोई आवाज़ भी उठा सकता था अंत में वे लोग अपना विद्रोह प्रकट करते हैं| शोषण का अंत करते उससे बच लेते है|

दलित विमर्श

आज़ादी इतने वर्ष बीत जाने पर भी दलित लोगों का शोषण आज भी हो रहा है| कई गाँवों में दलित आज भी शोषित एवं पीड़ित है| उन लोगों की आवाज़ है दलित विमर्श|

[1] काशीनाथ सिंह, महुआ चरित, पृ : 100
[2] काशीनाथ सिंह, महुआ चरित, पृ :
[3] काशीनाथ सिंह, महुआ चरित, पृ :

तीसरा अध्याय

'अपना मोर्चा' उपन्यास में दलित एवं शोषित युग की दर्दनाक स्थिति को चित्रित किया है| एक प्रसंग है "मेरे बगल में बैठा हुआ कक्षा का एक साथी बार-बार रुमाल अपनी नाक पर ले जा रहा था| जैसे मेरे साथ बैठना उसकी मज़बूरी हो|"[1]

दलित युवा की कैसे पढ़े-लिखे बनकर अपनी जड़ों को भूलकर कैसे बर्ताव करते हैं| इसकी ओर भी प्रकाश डाला है| किसी मैले कुचैले कपडे वाले किसान या मज़दूर को देखकर अपनी नाक पर रुमान रख लेते हैं| वह रेल के डिब्बे में घुसना चाहता है पर वे उनके लिए दरवाजा बंद कर देते | वे उनके बगल में थोड़ी सी जगह माँगते है| नीचे की दिखा देते है| वे रास्ते में कोई ठिकाना पूछते हैं तो लड़के उनसे दूर जाते हैं, वे भूल जाते हैं कि वे ही मैले – कुचैले लोग हैं|

रेहन पर रघु में एक उपक था के रूप में दलित लोगों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है| पिछले दो दशकों में, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार में पिछड़ी और दलित जातियों में जागरूकता आयी है आत्मविश्वास आया है और उनका सशक्तिकरण हो रहा है| इसका चित्रण इसमें है| ग्रामीण और अपेक्षाकृत अनपढ़ इलाकों में भी राजीनीति कितनी सूक्षम जटिल और चालाक ढंग से काम करती है – इसका बेजोड़ उदाहरण है – छब्बू पहलवान की हत्या| चमटोल ठाकुरों को सबक सिखाना चाहता है और इसके लिए शिकार के रूप में चुनता है, छब्बू पहलवान को| छब्बू अपने इलाके के सर्वश्रेष्ठ पहलवान रह चुके है| इसलिए वे ठाकुरों की ताकत के प्रतीक है, लेकिन छब्बू के व्यवहार और रवैये से ठाकुर टोल

[1] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, पृ : 30-31

के लोग खुश नहीं है| छब्बू का उठना-बैठना भी पिछड़ी जाती के लोगों के साथ अधिक होता है| वे उन्हें पहलवानी सिखाते हैं| अपने हलवाले झुरी की पत्नी ढोला के साथ उनका नाजायज़ संबंध है| जहाँ दूसरे लोग इस तरह का काम चमटोल से बाहर छिप-छिपाकर करते हैं, वहाँ छब्बू दिन-दहाड़े झुरी के घर जाकर करते हैं| इसलिए वे आसानी से वेध्य भी थे और वध के योग्य भी|

इस उपन्यास में दलित नारियों की त्रासद स्थिति का चित्रण हुआ है| उच्च वर्ग के खेतों में काम करनेवाली नारियों की स्थिति में कोई फरक नहीं हुआ है| उन लोगों का दैहिक शोषण हो रहा है| लेकिन कोई भी इसके खिलाफ आवाज़ उठाती नहीं| लेकिन उपन्यास के अंत तक आते आते इसके विरुद्ध एक सकारात्मक विद्रोह हम देख सकते हैं| उपन्यासकार के शब्दों में "लेकिन यह बात धीरे-धीरे साफ़ हुई कि जो कुछ हुआ था, अचानक और संयोगवश नहीं हुआ था| इसके पीछे महीनों से चल रही तैयारी थी| इस तैयारी में अकेले पहाड़पुर की चमटोल नहीं आस पास की बीस- पच्चीस गाँवों की चमटोले शामिल थी|"[1] इस बात के लिए भी इंतजार किया गया कि पास के थाने में अपनी जाति का पुलिस अधिकारी पहले आजाये तब घटना को अंजाम दिया जाए| ठाकुर ढोला के लोग कुछ कर नहीं पाये – "वे पूरी बिरादरी की मर्दानगी को चुनौती है, उसे ललकारा गया है लेकिन इस घटना को भुलाना

[1] काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घु, पृ : 76

और इसकी चर्चा न करना ही बेहतर समझा सबने|"[1] छब्बू पहलवान का मारा जाना उन लोगों के विद्रोह का एक उदहारण है|

सकारात्मकता का एक और पहलु निम्नवर्ग की चेतना में होनेवाले परिवर्तन भी है| रघुनाथ के गाँव में कृषि मज़दूर द्वारा की गयी हड़ताल तथा आस पास के गाव के ढोले की विरादरी के लोगों में हुई एकता प्रकारान्तर से हाशिए पर पड़े हुए लोगों में आयी नवीन चेतना को दर्शाती है| लेकिन कृषि मजदूरों की हड़ताल किसी अंजाम तक नहीं पहुँच पाती| उपन्यास में काशी जी ग्रामीण स्तर पर हुए बदलाव की प्रक्रिया का सूक्षम विश्लेषण करते हैं| इस क्रम में वे शहरी तर्ज की व्यवस्थाएँ गाँवों में घुसपैठ को उजागर करती हैं| यहाँ निम्न वर्ग के जीवन में तकनिकी विकास की भूमिका एवं नवीन आर्थिक प्रक्रिया का प्रभाव बहस के दायरे में है| ब्रोकर कल्चर संघर्ष को थोथरा कर रहा था| गाँव में दशरथ यादव का लड़का जसवंत टैक्टर ले आता है और तिहरा लाभ कराता है| ट्रेक्टरों से खेत की जुताई करता है| मजदूरों को उसके छोटे भाई बलवंत के पास शहर में भेज देता है जो दिहाड़ी मजदूरों का ठेकेदार था| आर्थिक प्रक्रिया, तकनिकी विकास तथा कृषक मजदूरों की जटिल स्थिति आदि का भी वर्णन इसमें किया गया है|

उपन्यासकार उपन्यासों में दलितों के एक सकारात्मक विकास को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं| एक प्रकार से वे अपने अधिकार एवं अस्मिता के प्रति सचेत होकर अपना विद्रोह पकड कर रहे हैं| अपने ही ढंग से पाने ऊपर होनेवाले शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाता है|

---

[1] , काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घु पृ : 78

अन्य समस्याओं का वर्णन

काशीजी ने अपने उपन्यासों में कई समस्याओं का उल्लेख किया है| मुख्य रूप से कई बातों का वर्णन करने के साथ-साथ कई गौण समस्याओं का चित्रण भी किया है| वृद्ध लोगों के अकेलापन, मृत्युबोध, तनाव आदि का भी चित्रण किया गया है| तनाव के बारे में कहें तो यह वैश्विक व्यवस्था के त्रासद पक्ष के रूप में 'रेहन पर रघु' में चित्रित किया गया है| इसमें व्यक्ति स्थानिक नहीं रह गया| उसका प्रसार चाहे अनचाहे बहुराष्ट्रीय है| यह बहुराष्ट्रीयता वसुधैव कुटुम्बकम न होकर आरोपित विवशता है| जीवन का तार कहीं सुन्दर एवं अनजान से जुदा हुआ है| उसे उसका भान तो है लेकिन उस पर नियंत्रण नहीं|

निर्णय प्रक्रिया में उसकी भागीदारी नहीं| इस पूरी प्रक्रिया से वह हतप्रभ है| रेहन पर रघु' में रघुनाथ का जीवन इसका उदहारण है| रघुनाथ ने अपना पूरा जीवन परिवार की भलाई के लिए अर्पित किया लेकिन उनका जीवन एक विडंबनात्मक स्थिति से गुजरता है| यह स्थिति उसके बेटे की अमेरिका चाह से जुड़ जाती है| उसने तो अपने बेटे की शादी मैनेजर की बेटी के साथ कराना चाहा लेकिन संजय ने अपनी पसंदिता लड़की से शादी की| इसी कारण वह नौकरी एवं बिरादरी से बाहर हो गया| वह अपने समाज में बेगाना हो गया| उन्हें तो अपने बेटों ने भी अपनी दुनिया में स्थान नहीं दिया| क्योंकि बेटों के अनुसार रघुनाथ तो पुराने ख्यालात के हैं| आज के युवा लोगों की मानसिकता का ज्ञान नहीं| इसी कारण से उसे बेटे की दुनिया में प्रवेश नहीं मिला| रघुनाथ इस बात को लेकर चिंतित भी नहीं था|

रघुनाथ का दुःख हमारे आज के मध्यवर्गीय अनेक पिताओं का दुःख है| जिसे लेखक ने बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है| अपनी पत्नी के साथ अकेले में बैठ हुए रघुनाथ अपने दर्द की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं – "शीला, हमारे तीन बच्चे है लेकिन पता नहीं क्यों, कभी कभी मेरे भीतर ऐसी हक़ उठती है जैसे लगता है – मेरी औरत बाँझ है और मैं निसंतान पिता हूँ, माँ और पिता होने का सुख जाना हमने? हमने न बेटे की शादी देखी, न बेटी की| न बहु देखी न होनेवाला दामाद देखा| हम ऐसे अभागे माँ-बाप है जिसे उनका बेटा अपने विवाह की सुचना देता है और बेटी धौस देती है कि इजाजत नहीं देंगे तो न्योता नहीं दूँगी| और अब तुम्हारी नज़र टिकी है राजू पर कि सारी साधें वही पूरी करेगा| निहाल कर देगा तुम्हें| ऐसा कोई भ्रम हो तो निकाल दो दिमाग से | मुझे पता है कि वह इनसे भी आगे जा रहा है| उसने एक ऐसी विधवा लड़की ढूँढ़ निकाला है जिसके दो साल का बच्चा भी है| यही नहीं, वह कोई अच्छी खासी नौकरी भी करता है| उसी के पैसों से दिल्ली में ऐश कर रहा है| मोटर साइकिल ले ही गया है मस्ती के लिए| बच्चा पालना और ऐश करना-दो ही काम हैं उसके| गये थे डोनेशन की रकम लेकर आज तक पता नहीं चल सका कि एडमिशन लिया भी या नहीं|"[1] रघुनाथ के माध्यम से उपन्यासकार आज की संतानों की बदशक्ल तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत किया है|

उपन्यास के सभी पात्र किसी न किसी प्रकार तनाव से पीड़ित है| शीला अपने बच्चों के भविष्य को लेकर चिंतित है| बेटे जो है ऊँचे ऊँचे पद पाने की इच्छा में यहाँ वहाँ दौड़ रहे

[1] रेहन पर रग्घु, काशीनाथ सिंह, पृ : 89

हैं| सोनल अपनी जिंदगी से नफरत करती है| मीनू अपनी जिंदगी में अकेली है| सारे के सारे पात्र एक प्रकार के अकेलेपन की जिंदगी जीते हैं| एक दुसरे के साथ होने पर भी ये लोग अकेले है|

'उपसंहार' नामक उपन्यास में भी अकेलापन एवं तनाव को चित्रित किया| यह उत्तर महाभारत के कृष्ण कथा को प्रस्तुत किया है| कृष्ण के जीवन के अंतिम दिनों की कथा कही गई है| इसमें द्वारका के बनने और बिगड़ने की कथा है| कृष्ण महाभारत के सर्वप्रमुख चरित्र है| द्वारका उनकी देन है, उनकी सृष्टि है| लेकिन महाभारत जैसे महायुद्ध के उपरांत इसी द्वारका में कृष्ण का एक और रूप दिखाई पड़ता है कृष्ण को ईश्वर के रूप में नहीं बल्कि एक ऐसे मनुष्य का है जिसकी तमाम सफलताओं के पीछे खड़ी विफलताएँ अब एक-एक कर सामने आ रही है| महाभारत के युद्ध के बाद द्वारका का विनाश हो रहा है| कृष्ण फिर भी वहाँ के लोगों को सुरक्षित रखना चाहता है| उनके कानों में यह स्वर गूँज रही है – "वासुदेव, सुख के दिन बीत चुके अब तो भयानक संकट का समय आ रहा है| आनेवाला हर नया दिन बीते हुए दिन से अधिक त्रासद होगा| धरती ने अपना यौवन खो दिया है|"[1]

द्वारका के अंत आते ही वहाँ के लोग मदिरा का पालन करके एक दुसरे पर वार करके अंत का वरण कर लेते है| एक प्रसंग में कृष्ण कहते है – "तुम्हारा अधिकार सिर्फ कर्म करने में है, फल में नहीं| फल कर्म में ही निहित रहता है, भले दिखाई न दे| इसलिए कह रहा है आज द्वारका में जो कुछ हो रहा है, वह मेरे ही कर्मो का परिणाम है| मेरे उपदेश के बाद

[1] काशीनाथ सिंह, उपसंहार,पृ : 115

अर्जुन की दृष्टि भले कर्म पर टिकी रह गई हो, मेरी दृष्टि बराबर उसके परिणाम पर बनी रही अपनी प्रतिष्ठा के लिए, अपनी मर्यादा के लिए, अपने ऐश्वर्य के लिए| मुझे हर हाल में युद्ध जीतना ही था| चाहे धर्म भंग हो चाहे नियम टूटे|"[1] जिस विराट रूपी कृष्ण के सामने अठारह अक्षौहिणी सेना दृष्टि खो बैठी थी, वही कृष्ण अब अवश्य नज़र आते है| उपन्यासकार इस मूल भूत प्रश्न की ओर प्रकाश डालता कि आखिर क्या है जय का सच्चा अर्थ? क्या तमाम सफलताएँ अंत तक आते विफलता में क्यों तिरोहित होती है? मानवीय जीवन के ऐसे प्रश्नों की ओर इशारा किया गया है|

वृद्धों की मानसिकता को रेहन पर रघु में चित्रित है| वृद्ध लोग जब अपनी मृत्यु के समय की बात सोचते ही एक प्रकार को भय एवं अकेलेपन से गुजरने लगते हैं| इसका सशक्त चित्रण किया है| 'उपसंहार' में भी मृत्यु भय एवं अकेलापन का चित्रण है|

काशीजी समकालीन साहित्य के जाने माने हस्ताक्षर हैं| उन्होंने पूरी समग्रता के साथ सामयिक समस्याओं को अपने उपन्यासों में समेटने का प्रयास किया है| उनके उपन्यास नये नये मुद्दों को गंभीरता के साथ प्रस्तुत करते हैं|

[1] काशीनाथ सिंह, उपसंहार, पृ : 107 -108

चौथा अध्याय

काशीनाथ सिंह का संस्मरण साहित्य तथा अन्य रचनाएँ

चौथा अध्याय

संस्मरण साहित्य

हिन्दी गद्य साहित्य का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी से माना जाता है| पर हिन्दी गद्य साहित्य को आदि रूप नाथ साहित्य में प्राप्त हैं| इसका समुचित विकास आधुनिक यूग से ही हुआ हैं| भारतेंदु काल से लेकार आज तक अनेक प्रतिभाधनी साहित्यकारों ने अपने चिंतन मनन एवं संस्कारों से इस विधा को आगे बढाया| परिणामतः वह शाखा प्रशाखाओं में विकसित होकर समृद्ध एवं संपुष्ट हो गया|

बीसवीं शताब्दी के अंत तक हिन्दी साहित्य में गद्य के विविध रूप दृष्टिगोचर होता हैं| उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध जैसी विधायें अपने विकसित अवस्था प्राप्त कर चुकी हैं| परन्तु आत्मकथा, जीवनी, रखाचित्र, संस्मरण डायरी, रिपोर्ताज जैसी गद्य की नवीनतम विधायें अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं|

1.संस्मरण साहित्य; स्वरूप एवं परिभाषा

'संस्मरण' शब्द सम-स्मृ-ल्युट(अण) से उत्पन्न हुआ हैं| जिसका अर्थ हैं 'सम्यक' अर्थात 'भली भाँति स्मरण करना'| संस्मरण का संबंध स्मृति से हैं इसलिए संस्मरण को स्मृतिचित्र नाम से भी सम्भोधित किया जाता हैं| सम्यक शब्द का अर्थ हैं पूर्णरूपेण पूर्णतः अच्छी तरह याद करता या किसी बीती हुइ घटना या व्यक्ति का स्मरण और अन्य घटनाओं, स्थितियों और व्यक्तियों पर पुनर्विचार|

चौथा अध्याय

कतिपय विद्वानों के मतनुसार पाश्चात्य साहिया के प्रभाव से यह विधा हिन्दी में आयी हैं| अंग्रेजी साहित्य में संस्मरण के लिए दो शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं| रेमिनिसेंसज तथा मेंमाँयर हिन्दी में इन दोनो के लिए प्रायः एक ही शब्द का प्रचलन हैं ' संस्मरण'| इनमे थोडा अन्तर दिखाने के लिए संस्मरण तथा आत्म-संस्मरण कह सकते हैं|

साहित्यकार जब अतीत का मंथन और पुनरन्तेपण करता हैं तभी संस्मरण के लिए ज़मीन तैयार होती हैं, 'संस्मरण में संस्मरणकार के वे क्षण अंकित होते हैं जो उसने स्वाम जिये हैं, इसमें लेखक अपने प्रिय व्यक्ति के साथ होने वाली रोचक घटनाओं का लेखा – जोखा कल्पना के अनुरंजित कर मधुर कटु स्मृतियों का वर्णन करता हैं जिनमे उनके अपने ह्रदय की अनुभूतियाँ भी चित्रित होती चलती हैं|" [1]

डॉ रामस्वरुप चतुर्वेदी के अनुसार ' संस्मरण का माध्यम जीवनी – आत्मकथा से प्रेरित होने पर भी शिल्प में उनसे भिन्न हैं| वतुतः नये अकाल्पनिक गद्य-वृत्तों की धारणा संस्मरण को देख कर अच्छे से बनती हैं| आरंभिक जीवनी और आत्मकथा के साथ इतिहास और वृत्त संबंधी कुछ इस तरह जुड़ा कि उनका साहित्यिक रूप अपेक्षाकृत बाद में विकसित हो पाया| पर संस्मरण आरंभ से ही सृजनात्मक गद्य का उपयोग करंता दिखाई देता हैं और अपनी व्यापक प्रकृति के कारण विविध गद्य – रूपों के बीच केन्द्रीय स्थिति में हैं|' [2]

---

[1] मनोरम शर्मा, संस्मरण और संस्मरणकार, पृः 10

[2] रामस्वरुप चतुर्वेदी, गद्य विन्यास अरु विकास, पृः 168

चौथा अध्याय

हरिमोहन सिंह ने संस्मरण विद्या की परिभाषा इस प्रकार की हैं – "संस्मरण गद्य की वह जीवनी परख कथेतर विद्या हैं, जिसमें कोई लेखक किसी विशिष्ट व्यक्ति के जीवन से जुडी मार्मिक आत्मीय स्मृतियों को रोचक और तथ्यात्मक ढंग से वर्णित करता हैं| इस वर्णन में लेखक की अंतरागाता की झलक भी दिखाई देती हैं| आत्मसंस्मरण अपनी जीवन की स्मृतियों से जुड़े चित्र हैं|'[1]

लक्ष्मीकांत शर्मा के अनुसार "व्यक्तिगत संपर्क के आधार पर तथ्यात्मक पद्धति का त्याग कर जब किसी व्यक्ति की जीवन की चारित्रिक निजताओं को प्रकट करने वाली रोचक या मार्मिक घटनाओं को शब्दबद्ध किया जाता हैं तो उसे संस्मरण के नाम से अभिहित करते हैं| संस्मरण के अंतर्गत लेखक जीवन की उन घटनाओं या व्यक्तियों का स्मरण करता हैं जिन्हें वह भुला नहीं सका, जो उसकी मानसिक चेतना के अभिन्न अंग बन गए हैं| इनमे लेखक की मानसिक प्रतिक्रियाओं के आकलन रहता हैं|'[2]

डॉ. शांति खन्ना ने संस्मरण की परिभाषा इस प्रकार दी हैं – 'जब लेखक अतीत की अंत स्मृतियों मैं से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिस्ट कर रमणीय एवं प्रभावशाली रूप से वर्णन करता हैं| उसे संस्मरण करते हैं |"[3]

---

[1] हरिमोहन, साहित्यिक विधायें पुनर्विचार, पृ: 11

[2] भगवान शरण भरद्वाज, हिन्दी जीवनी साहित्य, सिद्धांत और अध्ययन; पृ: 45

[3] शांति खन्ना: आधुनिक हिन्दी का जीवनी सहित्य; पृ: 73

चौथा अध्याय

महादेवी वर्मा के अनुसार "संस्मरण पुरात्तव का उत्खलन नहीं हैं, जिसमें आश्र्यजनक तथा अपरिचित सामग्री मूल्यांकन या अनुमान केलिए प्राप्त होती हैं| संस्मरण में हम अपनी स्मृति के आधारों पर से समय की घूल-पोंछ- पोंछकर उन्हें अपने मनोजगन के निभृत कक्ष में बैठाकर उनके साथ जीवित रहते हैं और उनके आत्मीय संबंधों को पुनजीवित करते हैं\ इस स्मृति – मिलन में मानों हमारा मन बार बार दोहराता हैं, हमें आज भी तुम्हारा आभाव हैं| अन्य आत्मपरक विधाओं में वर्तमान अतीत की ओर चलता हैं, किंतु संस्मरण में अतीत समय का अंधकार पार कर वर्तमान में लौटता हैं|'[1] वे व्यक्ति या घटनायें जो विशिस्ट होता हैं और जिनकी स्मृतियाँ हमारे मस्तिष्क में सदा के लिए बन जाती हैं ऐसी प्रेरक घटनायों एवं हृदय को आंदोलित करनेवाले व्यक्ति ही संस्मरण का विषय बनते हैं| संस्मरण के पात्र कोई आसाधारण या बहुचर्चित व्यक्ति होना अनिवार्य नहीं हैं| साधारण व्यक्तियों पर भी अनेक मात्रा में संस्मरण लिखे गए हैं| हिन्दी साहित्य के कई रचनाकारों ने साधारण विषयों एवं व्यक्तियों पर अपने विचार एवं कार्य के साथ असाधारण रचनायें की हैं| उदाहरणार्थ महादेवी वर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीराम शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीश चंद्र माथुर आदि|

'संस्मरण साहित्य का विषय वे अनुभूतियाँ होती हैं जो रमणीय हैं, प्रभावशाली हैं| अनेक व्यक्ति होती हैं जो हमारे जीवन को एक नई दिशा प्रदान करते हैं, जिनका प्रभाव हमारे व्यक्तितत्व पर पडता हैं और उनकी स्मृतियों को हम भुलाए नहीं भूलते| उसे ही मनोहर एवं विशद स्मृतियों को लेखक संवेदना के रंग से रंगता हैं और रोचक शैली में प्रस्तुत

[1] महादिवी वर्मा, स्मृतिचित्र, पृः 5

करता हैं, तभी संस्मरण का जन्म होता हैं| निष्कर्ष में कहा जा सकता हैं कि स्मृति के आधार पर किया गया संवेदनात्मक चित्रण ही संस्मरण हैं| संस्मरण विधा के संबध में विभिन्न विचारकों के मतों को प्रस्तुत करते हुए संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हिन्दी में रेमिनिसेंसेज तथा मेमाँयर्स अलग अलग संस्मरणात्मक विधायें न होकर प्रायः संस्मरण के अंतर्गत ही विवेचित होती हैं| संस्मरण के पात्र वास्तविक जगत के गतिशील पात्र होते हैं| केवल तथ्यों के आधार पर संस्मरणों का सृजन नहीं हो सकता| संस्मरणों के तथ्य एवं कलपना का संश्लिष्ट रूप देखा जा सकता हैं| कलपना के होते हुए भी संस्मरण अकाल्पनिक गद्य विधा हैं| इसमें तथ्यों का स्थान प्रमुख हैं| जीवन पथ पर अनेक लोगों से हमारा संपर्क होता हैं सभी व्यक्ति या घटना संस्मरण का विषय नहीं बन सकता|

काशीनाथ सिंह का संस्मरण साहित्य

सातवें दशक के बाद जो-कथाकार-संस्मरणकार विशेष रूप से उभर कर आये हैं उनमें काशीनाथ सिंह का योगदान महत्वपूर्ण हैं| जिन कथाकारों ने हिन्दी कथा साहित्य को एक नई दिशा दी उनमे काशीनाथ सिंह का भी महत्वपूर्ण स्थान हैं| हिन्दी कहानी जगत को संपुष्ट बनाने के बाद ही वे संस्मरण दुनिया में आये काशी जी की कोशिश रही हैं कि जो लिखा जाए उसे वे पहले समग्र रूप में जान जाए| उनका यह दृष्टिकोण हम उनके ही संस्मरणों में देख सकते हैं| इतनी सारी कहानी लिखने के बाद भी उन्हें लगता था की कहानियों में पूरी तरह से अपनी क्षमताओं को व्यक्त नहीं कर पाए हैं| कुछ न कुछ छूट जाने का दुःख था| उनके अनुसार कहानियों में पात्र हैं, स्तिथियाँ हैं, संवेदनाएं हैं पर वे हमेशा बाहर ही रह जाते हैं| इसलिए उन्होंने अपने आप को व्यक्त करने के लिए संस्मरणों की रचना

शुरू कर दी| अपनी असाधारण प्रतिभा के बलपर संस्मरणों के प्रवाह को बदलकर एक अभूतपूर्व हलचल पैदा की हैं| संस्मरण विधा जो एक लम्बे समय तक सुप्तावस्था में थी उसे पुनर्जीवित करने का श्रेय काशीजी को प्राप्त हैं| काशीनाथ सिंह के संस्मरण हिन्दी संस्मरण साहित्य में संजीवनी का काम कर गये हैं|

"साहित्य की हर विद्या असीमित सम्भावनाशील होती हैं| उसे बराबर ऐसे हाथो का इंतजार होता है जो कुम्हार की तरह अंदर से तो तनिक सहारा देने पर बाहर अधिक से अधिक ठोक-पीटकर नयी-नयी शक्लें निखरे और उभरे| काशीनाथ सिंह ने अपनी संस्मरण पुस्तक में यही किया हैं| उन्होंने संस्मरण लेखन को एक नया अंदाज और वयस्कता दी हैं|"[1]

काशीजी का तीन संस्मरण हैं| पहला संस्मरण हैं "याद हो कि न याद हो" दुसरा "घर का जोगी जोगडा" तीसरा " अछे दिन पाछे गये|" काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में जहाँ तक वर्ण्य-विषय का प्रश्न हैं वहाँ उनके संस्मरणों के पात्र हिन्दी के जाने-माने लेखक रचनाकार ही नहीं अपितु बनारस बाहर में रहनेवाले सामान्य लोग भी हैं| हिन्दी के विशिष्ट साहित्यकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, त्रिलोचन, घूमिल, रवीन्द्र कलिया, विजयमोहन सिंह, ढूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, कुमार संभव, महेश्वर, कमलाप्रसाद, बच्चन सिंह, विजयशंकर मल्ला, दीक्षित जी और नामवर सिंह आते हैं| अन्य लोगों का भी उल्लेख हुआ हैं| कुछ ऐसे संस्मरण हैं जो बनारस के आमलोगों को लेकर लिखा गया हैं, उनमें नागानन्द, मुक्थिकंठ, तन्नी गुरु, डॉ. गया सिंह, रामवचन पाण्डेय, वीरेन्द्र श्रीवास्तव, देवव्रत मजुमदार, रामजी

[1] श्यामसुन्दर घोष: समीक्षा : जनवरी-फखरी 1992: पृ: 29

राय के आलावा भी ऐसे अनेक पात्र आते हैं जिनका लेखक से संपर्क रहा हैं जो आम पाठकों के लिए अपरिचित पात्र रहे हैं|

याद हो की न याद हो – वरिष्ठ लेखकों एवं गुरुजनों पर केन्द्रित संस्मरण हैं|

काशीजी काशी हिन्दू विश्वविधालय के छात्र रहे हैं| लेखक की शिक्षा-दीक्षा एवं अध्यापन-कार्य उस विश्वविधालय में संपन्न हुआ| इस समय लेखक का संपर्क काशी हिन्दू विश्वविधालय के अनेक अध्यापकों तथा विद्वानों से हुआ हैं| जिनमें प्रमुख हैं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, बच्चन सिंह, विजयशंकर मल्ल, दीक्षित जी तथा नामवर सिंह इनके अलावा कुछ अध्यापकों की भी चर्चा इसमें की गयी हैं|

'याद हो की न याद हो' संस्मरण में पहले हजारीप्रसाद द्विवेदीजी का वर्णनहैं| काशीनाथ सिंह उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों में हैं जिन्हें द्विवेदीजी जैसे साहित्यिक मनीषी एवं आचार्य अध्यक्ष का सानिध्य प्राप्त हुआ हैं| संस्मरण लेखकों ने द्विवेदीजी की महिमा का वर्णन किया हैं| विश्वनाथ त्रिपाठी अपने आचार्य गुरु हजारीप्रसाद द्विवेदी के संबंध में लिखते हैं-" द्विवेदी जी छोटे अपराधी की मन:स्थिति समझकर उपचार करते थे| लोग विद्वान होंगे, मार्क्सवाद के विश्वस्तरीय सिधान्तकार होंगे, किंतु उस देवतुल्य गुरु के सामान मनुष्य नहीं हैं|"[1]

हजारीप्रसाद द्विवेदी सन् 68-69 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रेक्टर बनाये गये| उस समय लेखक ने जो महसूस किया, उनमें द्विवेदीजी की खूबियों जाना और खासकर

[1] विश्वनाथ त्रिपाठी: नामवर के विमर्श: सं सुधीश पचौरी: पृ: 128

खामियों को भी पहचान, उन खूबियों और खामियों को इस संस्मरण में रेखंकित किया गया हैं| इसमें द्विवेदी जी की विद्वत्ता, उनके गरिमामय व्यक्तित्व, बनारस में उनकी लोकप्रियता, उनकी वक्तव्य कला जैसी सभी पक्षों को उद्घाटित किया गया हैं| इतने छोटे से संस्मरण में हजारीप्रसाद द्विवेदी के समूचे व्यक्तित्व की झलक कलात्मक ढंग से समाहित हैं|

प्रतुत संस्मरण आचार्य द्विवेदी के भव्य व्यक्तित्व को उजागर करने के साथ-साथ वर्तमान शिक्षा जगत में कुटिल राजनीति के प्रवेश के परिणामों का भी वर्णन हैं| द्विवेदी जी के केन्द्र में रखते हुए लेखक काशी हिन्दू विश्वविध्यालय के शैक्षणिक माहौल एवं विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की मानसिकता को उजागर करता हैं| काशीनाथ जी अपने आचार्य गुरु हजारीप्रसाद द्विवेदी को एक मनुष्य पात्र के रूप में देखते हैं| द्विवेदी जी को वे अतिमानवीय के रूप में चित्रित न करके उनकी मानवीय कमज़ोरियों के भी तटस्थता के साथ प्रस्तुत करते हैं| यही वजह हैं की काशीनाथ सिंह के संस्मरण पाठक वर्ग को इतना आकर्षित करते हैं और आत्मीय लगते हैं|

वरिष्ट कवि त्रिलोचन पर लिखा गया संस्मरण काशीनाथ सिंह की शैलीगत विशिष्टता को स्पस्ट करता हैं| जिसप्रकार का व्यक्ति 'त्रिलोचन' संस्मरण में आता हैं वह वास्तविक जगत का न होकर अदृश्य जगत का त्रिलोचन हैं| कवि त्रिलोचन का चित्रण किवदंतीय शैली में हुआ हैं| बनारस में त्रिलोचन को लेकर अनेक किंवदन्तियाँ मशहूर थी| इस संबंध में काशीनाथ सिंह लिखते हैं-"देखने के बाद मैंने पाया कि सुनाई पडनेवाले त्रिलोचन दिखाई पड़ने वाले त्रिलोचन का ही विस्तार हैं| फर्क मात्र इतना हैं कि दिखाई पड़नेवाला त्रिलोचन बहुत कुछ 'शास्त्र विरुद्ध' और मुक्त छंद' की तरह, जबकि सुनाई पड़नेवाला त्रिलोचन 'शास्त

विरुद्ध' और 'छंद मुक्त' सच कहिए तो सुना हुआ त्रिलोचन कही ज्यादा काव्यात्मक, ज्यादा उल्लासपूर्ण और ज्यादा प्रेरक हैं|'[1] कहना न होगा कि काशीनाथ सिंह के त्रिलोचन दृश्य परंपरा का न होकर श्रुति परम्परा का त्रिलोचन हैं| त्रिलोचन की आर्थिक परिस्थितियों से पाठकों को परिचित करते हैं| पैसों की तंगी के कारण त्रिलोचन की स्वाभिमानी वृत्ति यहां पर स्पष्टता के साथ उजागर की गई हैं| काशीनाथ सिंह मात्र दंतकथाओं के त्रिलोचन को ही नहीं देखते बल्कि उनकी सजग आँखे किम्वदनीय आचरण को भेदकर असली, वास्तविक जगत के त्रिलोचन को भी देख लेते हैं| यह संस्मरण हिन्दी के एकश्रेष्ट संस्मरणकार की अपने वरिष्ट लेखक के श्रधांजलि प्रति हैं| काशीजी ने विवेच्य संस्मरण में स्वाभिमानी, मुसीबतों से न डिगनेवाले, भयंकर अर्थाभाव से जूझनेवाले कवि त्रिलोचन के संघर्षरत व्यक्तितत्व को मुखरता प्रदान की हैं|

नामवर सिंह को भारतीय भाषाओं के साहित्यालोचना के संदर्भ में एक शिखर पुरुष माना जाता हैं| नामवर सिंह बड़े भाई होने के साथ-साथ काशीजी का दार्शनिक गुरु भी था| काशीजी स्वीकार करते हैं कि उनके रचनाकार व्यक्तितत्व के निर्माण में नामवर सिंह का योगदान महतवपूर्ण हैं| लेखक का आत्मस्वीकृति हैं कि "नामवर सिंह का भाई होने के नाते नुकसान चाहे कितना हुआ, लाभ यह हुआ कि साहित्य कर्म को मैंने गंभीरता से लेना सिखा| उसे पार्ट टाइम या शौकिया कभीनहीं समझा| साहित्य के प्रति समपर्ण वह पूर्ण समपर्ण हमने उनके सिखा|"[2]

---

[1] काशीनाथ सिंह: हँस: अप्रैल - 1999: पृ: 20

[2] काशीनाथ सिंह: आलोचना भी रचना हैं: पृ: 181

चौथा अध्याय

'गरबीली गरीब वह' नामक संस्मरण में काशिन्नाथ सिंह ने नामवर जी के जीवन की एक निश्चित, संक्रमणशील अवधि को प्रस्तुत किया| चंदौली संसदीय क्षेत्र लोकसभा के उपचुनाव लड़ने के बाद नामवर सिंह को काशी हिन्दू विश्वविध्यालय से निष्काषित किया गया और फिर एक लम्बे समय तक वे बेरोजगार रहे| वास्तव में 'गरबीली गरीब वह' संस्मरण प्रख्यान आलोचक नामवर सिंह के व्यक्तित्व संबंधी उस अभिज्ञ पक्षों को उजागर करता हैं जो हिन्दी संस्मरण साहित्य को काशीनाथ सिंह की विशिष्ट सृजनामक देन माना जायेगा|

काशीनाथ सिंह की मित्रता अनेकानेक लोंगों से रही हैं, परंतु मित्रता की जो तीव्रता कवि घूमिल से हैं वह और किसी से नहीं| काशीजी घूमिल से साथ की अपनी गहरी दोस्ती से संबंध में लिखते हैं- "घूमिल मेरा दोस्त था| ऐसा दोस्त कि उसके बाद इस नगर में दोबारा ऐसा कोई न आ सका जिसे अपना दोस्त कह सकूं| उसे गुजरे आज सोलह साल हो चुके हैं तब से मैं अकेला हूँ| आज भी अस्सी जाता हूँ में, लेकिन कोई ऐसा दिन नहीं आया जब चौराहे पर पहुचते ही उसकी या न आई हो| नगर की वे सारी जगहें और वे सारे अड्डे, ठिकानें, दुकानों और वे घाट और वे फूटपाथ, और वे गलियों जहाँ-जहाँ में गया हूँ या जाना हूँ या गुजरना हूँ –ऐसा कभी नहीं होता कि घूमिल के न होने का या अकेले होने का अहसास न हो|"[1]

[1] काशीनाथ सिंह: याद हो की न याद हो:पृ:82

चौथा अध्याय

काशीनाथ सिंह का धूमिल पर लिखा मर्मस्पर्शि संस्मरण हैं – "जी ही जाते हैं आह मत पूछो" जो उनकी पुस्तक 'याद हो की ना याद हो' में संकलित हैं| इसमें घूमिल पर भी विचार किया गया| काशीजी ने घूमिल के कवि व्यक्तित्व के विभिन्न संदर्भो को बतलाते हुए युगीन परिप्रेक्ष्य में उनकी कविताओं की समीक्षा की हैं| घूमिल में अपनी काव्यसृजन को मात्र मनोरंजन का साघन नहीं माना और न ही उसे खाने-कमाने या व्यक्तित्व को चमकाने की चीज माना हैं बल्कि कविकर्म को उन्होंने अपना सामाजिक एवं मानवीय उत्तरदायित्व समझा|

काशीनाथ सिंह द्वारा घूमिल पर रचा गया संस्मरण सिंह करता हैं कि उनमें मानवीय संवेदनायें कितनी गहरी थी| काशीनाथ घूमिल की खामियों – कमजोरियों को भी इसमें चित्रित किया हैं| यहाँ परस्पर प्रशंसा या स्वार्थपरक मित्रता ने होकर एक मानवीय और विलक्ष्णबोघ की मित्रता हैं|

समकालीन साहित्यकार-मित्रों पर लिखे संस्मरणों में काशीनाथ सिंह का 'किस्सा साढ़े चार यार ' एक महतवपूर्ण संस्मरण हैं| जिसमें काशिनाथजी अपने समकालिक रचनाकर मित्रों रवीन्द्र कालिया, विजयमोहन सिंह, दूधनाथ सिंह तथा ज्ञानरंजन आदि को याद करते हैं| इस संस्मरण में अपने मित्रों के व्यवहार सम्बन्धी विशिष्टत्तायों को ही नहीं दर्शाती बल्कि बड़ी ही कुशलता के साथ वे नई कहानी आन्दोलन के वरिष्ट कहानीकार कमलेश्वर पर भी प्रहार करते हैं| रविन्द्र कालिया के साथ बीती हुई एक घटना को आधार बनाकर लेखक ने कमलेश्वर के साथ – साथ अनेकानेक समकालीन साहित्यकारों की पोल

खोल दी हैं| काशीजी ने इसमें विजयमोहन सिंह के विशिष्ट जीवन शैली एवं समीक्षक व्यक्तित्व की ओर प्रकाश डाला हैं| इसमें उनके अकेलेपन की त्रासदी को दिखाया हैं| काशीजी यहाँ पर घर-परिवार की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हैं|

दूधनाथ सिंह से अपनी प्रथम भेंट का वर्णन करके तत्कालीन लेखकों की विषम आर्थिक दशा को दर्शाया हैं| उनके स्वाभाव विशेष की ओर संकेत करते हैं| काशीजी के अनुसार इस आदत का कारण था उनके आस –पास की परिस्थितीयां| काशीनाथ सिंह इसके लिए दूधनाथ को दोषी न मानकर उस समाज को ही दोषी मानते हैं जो इसके लिए जिम्मेदार हैं- "इलाहबाद का ही पढ़ा-लिखा, सारी प्रतिभा के बावजूद डर-डर का मारा, अंतजार्तीय विवाह के कर्ण घर से दुत्कारा, दूसरों की किताबों की प्रूफरीडरी करके जिसने यौवन गुजरा – ऐसा नौजवान अपने ही नगर में काम के लिए एडियां घिसता रहे, फालतू का विरोध सहता रहे, लोगों के उपहासों और मजाकों के बीच यहाँ से वाहाँ नाचता रहे, आज किसी तरह परसों का जुगाड़ बिठाया ही था कि कल पत्ता साफ इससे उसके अंदर सुरक्षा का भय पैदा न हो तो क्या हो?

दूघनाथ का झूठ दूधनाथ पर नहीं इलाहाबाद की साहित्यिक संस्कृति पर करारी टिप्पणी हैं|"[1] अंत में लेखक दूधनाथ सिंह को एक अन्यन्त संवेदनशील पिता के रूप में भी चित्रित करता हैं| संस्मरण में दूधनाथ सिंह के व्यक्तित्व के विविध पक्षों को उद्घाटित करने के साथ लेखक ने उनके अपने समधी होने का रोमांचक किस्सा भी बयान किया हैं|

[1] काशीनाथ सिंह: याद हो कि न याद हों: पृ: 146

इस संस्मरण में ज्ञानरंजन का भी वर्णन हैं| ज्ञानरंजन संबंधी दो विशेषतायों का जिक्र हुआ हैं| पहली विशेषता यह हैं की ज्ञानरंजन मद्यप्रदेश में साहित्यकार के रूप में विशेष चर्चित हैं और दूसरी विशेषता यह हैं की वे एक अच्छे संगठनकर्मी हैं तथा उत्कृष्ट आयोजक भी- "मैंने किसी भी मंच पर उसे माइक के आगे नहीं देखा| अव्वल तो वह आयोजनों को बाहर से देखेगा, सुनेगा, अंदर आएगा नहीं और आएगा भी तो कही भीड़ में या पीछे बेठेगा|"[1] उनके कृतित्व एवं लेखन शैली पर भी प्रकाश डाला हैं|

इस पुस्तक का अन्य संस्मरण हैं 'नगननन्द चरितम वल्द अस्सी चौराह| इसमें काशीजी ने बनारस की जनता के विशिष्ट चरित्रों को विषय बनाया हैं| सामान्य व्यक्तियों पर लिखे संस्मरणों में नागानन्द एक मात्र ऐसा व्यक्ति हैं जिन पर लेखक ने विस्तार पूर्वक लिखा हैं| एक ऐसा व्यक्ति जो साहित्य के प्रति निष्ठावान रहते हुए भी साहित्यकार न बन सके| तमाम कमजोरियों के बावजूद वे अपने भीतर साहित्य रूपी ज्योति को निरन्तर सुलगते रहे परन्तु कभी प्रतिष्ठित लेखक नहीं बन पाए| नागानंद के अतिरिक्त अनेकानेक गौण पात्र काशीजी के संस्मरणों में आये हैं| बनारस में रहनेवाले इन पात्रों में तन्नी गुर, डॉ. गया सिंह, रामनारायण, वीरेंद्र श्रीवास्तव, रामवचन पण्डे, देवव्रत मजूमदार आदि| अन्य संस्मरण लेखक जहाँ साधारण पात्रों के चरित्रांकन करते समय उनके असाधारण गुणों को चित्रित करने का प्रयत्न करते हैं वहाँ काशीजी उन लोंगों की साधारण जीवन-शैली को पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं|

[1] काशीनाथ सिंह: याद हो की न याद हो: पृ:151

'देख तमाशा लड़की का' संस्मरण में भी उन्होंने सामान्य पात्रों का अंकन किया हैं| बनारसी जीवन की मस्ती, फक्कडपन, आत्मविश्वास का अतिरेक, ओज सभी बहुत खुले अन्दास में अभिव्यक्त हुए हैं| बनारस के इन सामान्य पत्रों के अलावा काशीजी अपने परिवार के सदस्यों को भी याद करते हैं| जिसमें प्रमुख हैं उनकी माँ बागेश्वरी देवी तथा मंझले भैया रामजी सिंह|

a. <u>घर का जोगी जोगडा</u>

काशीजी का पहला संस्मरण तो अपने गुरुजनों समकालीन रचनाकारों, मित्रों, सहयोंगियों तथा सामान्य जनता को अभिव्यक्त करते हैं| लेकिन उनका दूसरा संस्मरण पूर्णरूपेण अपने बड़े भाई नामवर जी पर आधारित हैं|

इस पुस्तक का पहला सम्स्मंर हैं 'जीयनपुर' इसमें काशीजी अपने गाँव के बारे में और अपने पिता-माता, अपने सभी पारिवारिक बातों को प्रस्तुत करते हैं| अपने बचपन के बारे में भी कहा गया हैं|

दूसरा संस्मरण हैं 'गरबीली गरीब वह' इसमें कशीजी नामवरजी के बारे में ही लिखा हैं| नामवरजी की नौकरी के बारे में, काशी विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्त, चुनाव लड़ने के कारण वहाँ से निष्कासित होना, घर की दयनीय स्थिति, संघर्षों से जूझते उनका लेखकीय व्यक्तित्व, बेरोजगार की समस्या से जूझते जीवन का चित्रण आदि इसमें मिलता हैं| इसमें नामवर के व्यक्तित्व के दो रूप अभिव्यक्त हुए हैं| एक रूप प्रतिष्टित समीक्षक का| दूसरा रूप हैं बड़े भाई का घर परिवार की समस्याओं से चिंतित व्यक्ति| संक्षेप में कहा जा सकता हैं

कि लेखक ने अपने गुरु एवं भाई के व्यक्तितत्व के सभी महत्वपूर्ण पक्षों को बड़ी आत्मीयता के साथ उजागर करने का प्रयास किया हैं|

इस पुस्तक का तीसरा संस्मरण हैं 'घर का जोगी जोगडा' इसमें काशीजी ने नामवर जी का ऐसा चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया हैं जिससे हम पहले कभी परिचीत नहीं थे| नामवर जी की शादी, उनका परिवारिक जीवन, बच्चों के प्रति उनका प्रेम, अपने जीवन का अकेलापन, अपना रचनाकर्म, भाइयों के प्रति प्यार, आदर सभी बातों का उल्लेख हैं| साहित्य जगत में एक कट्टर आलोचक के रूप में समझे जानेवाले नामवर जी एक साधारण मनुष्य की सभी परेशानियों से जूझने वाले थे| अकेलापन झेलते जीने के लिए अभिशप्त थे| कई बिमारियों से पीड़ित थे| इस प्रकार नामवरजी के जीवन के अनदेखे पहलुओं से परिचित करनेवाले संस्मरण हैं घर का जोगी जोगडा|

b. <u>आच्छे गिन पाछे जाये</u>

काशीजी की इस संस्मरण पुस्तक में 8 संस्मरण संकलित हैं| इन आंठ संस्मरण में पहला सम्स्मंर हैं

<u>रहना नहीं देस बिरान हैं</u>

पहला संस्मरण अपने गाँव से संबंधित हैं| उसमें अपने पिता और उनके भाइयों के बीच के बटवारे की बात हैं| काशीजी की और परिवार की आर्थिक विपन्नता का चित्रण हैं| माँ बाप की मृत्यु के बारे में भी कहा गया हैं| नौकरी के लिए साक्षात्कार देते रहने की बात, नियुक्ति के बारे में, नौकरी मिलने पर हुई मुसीबतों का वर्णन आदि हैं| अपने साथ

आत्मीयता से पेश आनेवाले लोंगों का भी वर्णन हैं| लेखकों के बीच के तनाव में संघर्षों की बात भी आत्मीयता एवं सरसता के साथ हमारे सामने प्रस्तुत की गई हैं|

दूसरा संस्मरण कलकत्ता में बांकेलाल हैं| इसमें काशीनाथ का दोस्त राम आधार सिंह का चित्रण हैं| उनके साथ काशीजी की दोस्ती, उनकी हँसी मजाक, साहित्यकारों के प्रति उनका रवैया आदि का चित्रण हैं| यही राम आधार सिंह हैं भाषाविद डॉ. आ.ए.सिंह – प्रसिद्ध कोशविज्ञानी| उनके साथ के पत्राचार का वर्णन हैं| उनकी मृत्यु के बारे में भी इसमें गया हैं| लेकिन उनका मानना हैं कि राम आधार उसके आथ ही हैं|

'मुसफिरखाना में चार दिन' शीर्षक संस्मरण में काशीजी अपने प्रिय दो मित्रों के बारे में कहते हैं| जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के थे| उनमें एक हैं कथाकार कुमार संभव और दूसरा पत्रकार महेश्वर| उन लोंगों के बीच की मित्रता गुरूजी के साथ उन लोंगों का संबंध आदि चित्रित हैं| समाज के लिए उन लोंगों का योगदान उन लोंगों से मिलकर किये गये संघर्ष| आखिर उन से हुई दूरी सभी का वर्णन इसमें संजीदगी के साथ काशीजी ने किया हैं|

'कहानी की वर्णमाला और ' इसमें काशीजी ने अपने लेखकीय व्यक्तित्व को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया हैं| अपने लेखकीय व्यक्तित्व का विकास और इसमें नामवर जी का योगदान आदि की ओर इशारा किया गया हैं| उनका मानना हैं कि कहानी अन्ततः कहानी हैं, चाहे उसे जैसे और जितना तोडो-मरोड़ा| दूसरी बात यह हैं कि कहानी विचारों से नहीं

बनती वह बनती हैं जिन्दजी से, वह जिन्दगी जो समाज समाज में कई स्तरों पर फेली हैं, और किसी रूप में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही हीं|'[1]

उन्होंने कहानी लिखने की आवश्यकता के बारे में तथा अपनी कहानियों के बारे में विचार-वितर्क प्रकट किया हैं| साहित्य की विचार धाराओं के बारे में अपना विचार प्रकट करते हुए समाज में बदलाव लाने की अनिवार्यता की ओर भी इशारा किया हैं|

'इक्कीसवी सदी के देश का सफर' इसमें काशीजी ने अपनी जापानी यात्रा का वर्णन किया हैं| यहाँ के लोंगों की आत्मीयता एवं संस्कृति का चित्रण करने के साथ साथ आधुनिकीकरण की गंदी परिणतियों एवं सांस्कृतिक विघटन को भी दर्शाया गया हैं| जापान के बुराकु क्षेत्र के लोग जो शोषित एवं पीड़ित हैं उसका भी वर्णन किया गया हैं| मजदूरों को जानवरों की तरह माननेवाले ठेकेदारों का भी वर्णन इसमें हुआ हैं| 'परिवेश की स्मृतियों में' परिवेश पत्रिका को शुरू करना इसके लिए लेखकों को किन किन मुसीबतों को झेलना पड़ा इसका ब्यौरा भी प्रस्तुत किया गया हैं|

'या तरुवर मंह एक पखेरू' इसमें अपने तीन गुरुओं पर जैसे दीक्षित जी, विजयशंकर मल्ल तथा बच्चन सिंह पर लिखा हैं| बच्चन सिंह, विजयशंकर मल्ल तथा सेंट्रल हिन्दू कांलेज के अद्यापक दीक्षित जी को लेखक एक विशिष्ट अंदाज में पेश करते हैं| दीक्षित जी काशीजी के कांलेज के दिनों में अध्यापक रहे हैं| कॉलेज के प्रथम दिवस पर ही वे विद्यार्थियों के हाथ

[1] काशीनाथ सिंह, आछे दिन पाछे गये: पृ: 81

में "तुलसी सन्देश' की एक प्रति थमा देते हैं| दिक्षित जी सारे शहर में जाने जाते हैं अपने मशहूर 'हैट' के कारण| उन्हें तो एक अलग टाइप के अद्यापक के रूप में प्रस्तुत किया गया हैं|

विजयशंकर मल्ल और बच्चन सिंह का संग साथ बड़ा लंबा रहा हैं| दोनों की मित्रता के अनेक मजेदार प्रसग इस सम्स्मंर में हैं| म्ल्ल्जी को क भुल्लकड़ तथा अपने फायदे – नुकसान के प्रति बेहद सजग, व्यवहारशील व्यक्ति के रूप में चित्रित किया हैं| इसी क्रम में काशीजी का तीसरे गुरु हैं हिन्दी साहित्य के वरिष्ट आलोचक बच्चन सिंह| लेखक का यह संस्मरण बच्चन सिंह के व्यक्तित्व को विश्लेष्णात्मक ढंग से रेखांकित करने के साथ साथ उनके आलोचना –कर्म पर भी प्रकाश डालता हैं| बच्चन सिंह प्रारम्भिक समय में काशीनाथ के अद्यापक भी रहे हैं और उसकी पि.एच.डी. के सहयोगी गाइड भी| वे कालांतर में बनारस विश्वविद्यालय के अद्यापक के दौर इस बच्चन सिंह के सहयोगी अद्यापक भी रहे|

'तीसरे भाई की खोज में प्रानपियारे' हिन्दी आलोचना के प्रतिष्टित समीक्षक कमलाप्रसाद पर केंद्रित हैं| इसमें कमलाप्रसाद जी की संगठन क्षमता तथा आयोजन कला की चर्चा की गई हैं| कमलाप्रसाद की साहित्यिक प्रतिबद्धता को भी विश्लेषित करने का कार्य भी किया गया हैं| साहित्य की प्रत्येक विधा में युगीन परिस्थितियों का चित्रंण बड़ी मात्रा में हुआ हैं| कारण यह हैं कि कोई भी रचनाकार युगीन परिवेशों अलग रहकर अपनी साहित्यिक साधना नहीं कर सकता| युगीन परिस्थितियों का समावेश हुआ हैं|

<u>सामाजिक आर्थिक एवं राजनितिक परिवेश</u>

चौथा अध्याय

काशिनाथ सिंह की रचनाओं में स्वाधीनता परवर्ती सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनितिक परिवेश का चित्रण हुआ हैं| संस्मरणों में उन्होंने विभिन्न रचनाकारों, मित्रों, आचार्यों, एवं शिष्यों को भी प्रस्तुत किया हैं|

1 सामाजिक परिवेश

रचनाकार अपने युगीन परिवेश से सदा प्रभावित होता हैं| उनके व्यक्तित्व का विकास सामाजिक आर्थिक सीमाओं के अंतर्गत होता हैं| काशीनाथ सिंह ने उत्तर प्रदेश की संस्कृति और ग्रामीण अंचल का अनदेखा नहीं किया हैं| बनारस न शिक्षा प्राप्त रचनाकार अपने ग्राम्य जीवन के अनुभवों को विस्मृत नहीं कर पाते| सामाजिक परिवेश से तत्पर्य व्यक्ति विशेष की सामाजिक स्थिति, पारिवारिक प्रणाली और जन सम्माज में प्रचलित जाती, घर्म, विश्वास एवं विचारघारा आदि से हैं|

आर्थिक परिवेश

आधुनिक मनुष्य की बहुत सारी समस्याओं का मूल अर्थ से सम्बधित हैं| आम आदमी निरंतर इस समस्या से जूझ रहा हैं| हिन्दी साहित्य जगत के कई रचनाकाओं को आर्थिक कठिनाइयों से जूझना पड़ा हैं| अपने संस्मरणों में उन लोंगों की चरित्रगत विशेषताओं को उद्घाटित करने के साथ साथ उनकी आर्थिक परिस्थिति का भी यथार्थ अंकन हुआ हैं| कवि त्रिलोचन की आर्थिक विपन्नता का चित्र प्रतुत करते हुए काशीजी लिखते हैं – “बनारस में त्रिलोचन का इतिहास क्लर का इतिहास रहा हैं| बेकारी के साथ साथ सन् 75 में बनारस

छोड़ने के पहले के पैंतीस-चालीस सालों का इतिहास| हस की प्रूफरीडरी और जोनपुर में दो दिनों से मास्टरजी से शुरू होकर एक अखबार से दूसरे, तीसरे चौथे अखबार तक| समय समय पर ट्यूशनें भी की और उस 'सभा' में नौकरी भी जिसके मालिक की सूरत से उसे घिन आती थी|" [1]

यथापि काशीजी ने अपने पात्रों की आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण यथास्थान किया हैं तथापि आर्थिक परिवेश संबंधी उनका सबसे महत्वपूर्ण संस्मरण हैं 'गरबीली गरीबी वह' जिसमें लेखक ने हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक और अपने बड़े भाई नामवर सिंह की आर्थिक परेशानियों का यथार्थ अंकन किया हैं| अपनी बेकारी के दिनों में नामवर सिंह जिन परिस्थितियों से गुजर रहे थे उन परिस्थितियों का चित्रण करते हुए काशीजी लिखते हैं – "मुझे याद हैं कुर्ते – धोतियाँ फट-फट जाती थी और वे अक्सर कभी माँ को और कभी मेरी पत्नी कुसुम को टाँकने के लिए पकड़ते थे| उधार उन्होंने कभी किसी से लिया नहीं|"[2] लेखक ने स्वयं की ठीक परेशानियों का यथार्थ भी अंकित किया हैं| काशीजी लिखते हैं – "घर की समस्याये इस बीच और विकट हो चली थी| दो साल में किराया बडाने के बावजूद मकान – मालिक ने मकान खाली करने की नोटिस दे दी| पिताजी का असंतोष अपनी जगह था|"[3]

---

[1] काशीनाथ सिंह, याद हो की न याद हो; पृ: 46

[2] काशीनाथ सिंह; याद हो की न याद हो, पृ: 235

[3] काशीनाथ सिंह; याद हो की न याद हो, पृ: 162

वैसे ही बनारस में रहनेवाली सामान्य जनता का चित्र प्रस्तुत किया हैं – "माथे पर चन्दन की बेंदी, मुँह में पान और तोंद सहलाता हाथ न किसी के आगे गिडगिडाना न हाथ फैलाना| दे तो भला , न दे तो भला! उधर मंदिर इधर गंगा, और घर में सिलबट्टा! देने वाला 'वह' जजमान भोसड़ी के क्या होगा? भांगछानी निपटे और देवी दर्शन के लिए चल पड़े| चौक में कुछ नहीं मगर पिए जा रहे हैं – ताव के साथ| चेहरे पर कोई तनाव नहीं, कही कोई फ़िक्र नहीं ------|"[1]

काशीजी ने अपने अन्य मित्र दूधनाथ सिंह, घूमिल, रविन्द्र कालिया, महेश्वर, कुमार संभव की आर्थिक समस्याओं का चित्रण भी यथासंभव किया हैं| दूधनाथ सिंह को अर्थाभाव के कारण जियनपुर से बनारस तक लगभग सत्तर अस्सी मील को दूरी हैं जिसे पैदल तय करना पड़ा| यह बीते हुए युग की बात बही हैं| इसप्रकार अपने प्रिय नायकों की यथार्थपरक आर्थिक परिस्थितियों को दिखने का प्रयत्न लेखक ने किया हैं|

<u>राजनितिक परिवेश</u>

संस्मरण साहित्य के अनेक प्रसंगों में युगीन राजनीति का प्रभाव थोड़ी-बहुत मात्रा में पाया जाता हैं| हजारी प्रसाद द्विवेदी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रेक्टर बने तब इस विश्वविद्यालय के आधिकांश विद्यार्थी एक ओर राजनीति के कुटिल जाल में फंसे हुए थे| दूसरी ओर वहाँ का चुनाव मात्र विद्यार्थी तथा विश्वविद्यालय तक सिमित नहीं हैं| इसके पीछे 'प्रोक्टेरियल बोर्ड' और नगर प्रशासन के भी हाथ थे| चुनाव लड़ने के कारण ही काशी

[1] काशीनाथ सिंह; याद हो की न याद हो, पृः 213

हिन्दू विश्वविद्यालय से नामवरजी को निष्कासित किया गया था| उन्नीस सौ उनसठ में वे कम्यूनिस्ट पार्टी को ओर से चंदौली संसदीय क्षेत्र से लोकसभा का उपचुनाव लड़े थे| उन दिनों की चुनाव गतिविधियों का चित्रण लेखक ने बहुत ही सजीवता के साथ किया हैं| वे अपने मित्र धूमिल के साथ अपने तबादले को रोकने के लिए उत्तरप्रदेश को राजधानी लखनऊ गये थे| वहाँ उनके और धूमिल को हुए कटु अनुभवों के एवं राजनितिक खोखलेपन को चित्रित किया| राजनीति से सम्बंधित अनेक छोटी बड़ी घटनाओं का यथार्थ वर्णन लिखक ने किया हैं| इस संदर्भ में लेखक का 'देख तमाशा लड़की का' संस्मरण तत्कालीन राजनीति से विशेष प्रभावित हैं| अस्सी की सामान्य जनता समकालीन राजनीति से कितना प्रभावित हैं इसकेलिए एक नमूना देखिए – "गोपाल ने पानवाले की दूकान के सामने सुर्ती ठोकते हुए रामवचन पांडे से कहा – "पूरा देश एक भयानक हादसे से गुजर रहा हैं| आप यहाँ खड़े हैं और कौन जाने आपकी सीट के निचे बम रखा हो आप यादव के समर्थन में बोलिए, बामन मार देंगा, बामन के समर्थन में बोलिए, यादव मार सकता हैं, आप दाड़ी रखे हुए हैं, हो सकता मदनपुरा या नई सड़क से गुजरते हुए बच जाये, लेकिन हिन्दू मुहल्ले से भी बच निकलेंगे इसकी कोई गारंटी नहीं हैं| [1] यह एक प्रकार से देश की सांप्रदायिक और राजनितिक दुरव्यवस्था पर सटीक टिप्पणी भी हैं|

लेखक ने स्वयं की राजनितिक मान्यताओं संबंधी चर्चा भी की हैं| समकालीन दौर में राजनीति कई रूपों में व्यक्ति के जीवन में व्यापी हुई हैं| इसलिए कहीं तरस्थ होने के

[1] काशीनाथ सिंह; याद हो की न याद हो, पृ:180

गुंजाइश नहीं हैं| काशीजी ने विश्वविध्यालय के आचार्यों की परस्पर राजनीति के साथ-साथ परिवारिंक राजनीति को ओर भी संकेत किया हैं|

साहित्यिक परिवेश

काशीजी के संस्मरणों में साहित्यिक परिवेश विशेष रूप उभरकर सामने आए हैं| पिछले चालीस वर्षों के बनारस की सहित्यिक गतिविधियों को अगर जानना हो तो काशीजी के संस्मरण साहित्य का थोडा अंश ही पर्याप्त होगा| बनारस की साहित्यिक गोष्ठियों से सम्बन्धित लेखक की टिप्पणी देखिए – "बनारस में ओंकार परिषद और दूसरी संस्थाओं की साहित्यिक गोष्ठियों शनिवार या इतवार की शाम को होती थी जिनके लिए चाहते हुए भी धूमिल नहीं रुक पाता था| और वे गोष्ठियां साधारण न होती थी| त्रिलोचन, नामवर केदारनाथ, शिवप्रसाद, बच्चन सिंह, विष्णुचन्द्र शर्मा, विजयमोहन आदि के साथ बड़ी तदाद में युवा कवि और लेखक जिन गोष्ठियों में हुआ करें उसकी गंभीरता और प्रखरता और उत्तेजकता की कल्पना की जा सकती हैं|"[1]

बनारस के साहित्यप्रेमी साहित्यिक पत्र – पत्रिकाओं के लेकर कितनी रुची रखते हैं इनका भी उल्लेख उन्होंने किया हैं| "ये सभी 'कृति', 'ज्ञानोदय', 'कहानी', 'नई कहानियाँ' 'धर्मयुग' जैसी साप्ताहिक एवं मासिक पत्रीकाओं में छपी रचनाओं से इस कदर वाकिफ रहते

[1] काशीनाथ सिंह; याद हो की न याद हो, पृः 63

थे कि इनके चौकन्नेपन पर मुझे आश्चर्य होता था| यही नहीं अभी अभी बजार में आई कोई भी किताब दुसरे दिन उनमें से किसी-न-किसी के हाथ में नजर आती|"[1]

अस्सी के बड़े बड़े साहित्याकारों ही नहीं सड़कों पर रहने वाले साधारण जनता भी हिन्दी के प्रति गहरा लगाव दिखाती थी| इसकेलिए सही प्रमाण हैं द्विवेदी जी पर लिखे गए संस्मरण उन्होंने बनारस के आलावा सतना, जबलपूर, जैसे शहरों एं हुए साहित्यिक समारोहों का वर्णन भी आत्मीयता के साथ किया हैं| इसके अलावा 67 में कथाकार गोविन्द मिश्र के घर में हुए एक खानी संगोष्ठी में बदलते समय के अनुसार साहित्यकारों में जो चारित्रिक गिरावट हो रही हैं उसकी औरे भी इशारा किया गया हैं|

साहित्यकारों से सम्बंधित चर्चायों के अलावा साहित्यिक पत्र – पत्रिकाओं की चर्चा भी लेखक ने की हैं| इन में प्रमुख हैं स्वय लेखक द्वारा संपादित "परिवेश" पत्रिका, कमला प्रसाद द्वारा सम्पादित "वसुधा" ज्ञानरंजन द्वारा सम्पादित "पहल" नामवर द्वारा सम्पादित "आलोचाना" मोहन राकेश द्वारा सम्पादित "सारिका" आदि|

इसके अलावा अनेक विदेशी रचनाकारों तथा उनके साहित्यिक महत्व को भी प्रतिपादित करने का कार्य किया हैं|

<u>सांस्कृतिक परिवेश</u>

[1] काशीनाथ सिंह; याद हो की न याद हो, पृः 205

चौथा अध्याय

काशीजी पिछले पैंतालीस सालों में बनारस शहर के निवासी हैं| वहाँ की सांस्कृतिक पुष्टभूमि से काशीजी पूरी तरह से परिचित हैं| बनारस शहर की खासियत को लेखक इस तरह प्रतुत करते हैं –

"अखंड हरिकिर्तनों का शहर !

रात-रात कव्वालियों और बिरहा-दंगलों का शहर!

कंधे पर लंगोट या लंगोट की पगड़ी बाँध सिर शहर!

पान की दुकानों के आगे सुबह शाम गप्पे मारता और ठहाके लगाता शहर!

गालियों और गालियों, घाटों और मालियों, हर-हर महादेव के नारों आयर तालियों का शहर!

प्राणों से प्यारा शहर

दुनिया में न्यारा शहर

आखों का तारा शहर

मस्ती का मारा शहर

हाय हाय हमारा शहर!" [1]

[1] काशीनाथ सिंह; याद हो की न याद हो, पृः 132

बनारस की सांस्कृतिक परिवेश के अंतर्गत वह के तीज-त्यौहार, होलि का उत्सव, मेले. काव्य-सम्मेलन, आदि सम्मिलित हैं| अस्सी वासियों के रहन-सहन तथा वेश-भूषा का चित्र लेखक ने बड़ी रोचक शैली में प्रस्तुत किया "कमर में गमछा कंधे पर लंगोट औउर बदन पर जनेऊ- यह यूनिफार्म हैं अस्सी का"[1]

संस्मरणों में बनारस की भाषिक संस्कृति भी उभरकर सामने आयी हैं| अस्सी चौराहे पर रहनेवाले लोंगों की भाषा का नमूना देखिए - "खडाऊ पहनकर पाँव लटकाए पान की दूकान पर बैठे तन्नी गुरु से एक आदमी बोला –'किस दुनिया में हो गुरु! अमरीका रोज-रोज आदमी को चंद्रमा पर भेज रहा हैं और तुम घंटे-भर से पान घुला रहे हो?

मोरी में 'पचू' से पान की पीठ थूककर गुरु बोले –"देखों' एक बात नोट कर लो! चंद्रमा हो या सूरज – भौंसडी के जिसको गरज होजी, ...यहाँ आयेगा| तन्नी गुरु टस से मस नहीं होंगे हियाँ से! सांझे कुछ|"[2]

<u>सौद्देश्यता</u>

काशीजी के संस्मरणों की और एक विशेषता उनकी वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हैं| व्यक्तिगत अनुभवों के कारण ही ये संस्मरण स्मरणीय बन पड़े हैं| अपनी गहरी संवेदनाओं से लेखक ने संस्मरणों को जीवन बना दिया हैं| प्रस्तुत संस्मरणों से हिन्दी के गणमान्य साहित्यकारों की सृजन घर्मिता से तथा स्वाभाव के अनेक अनजान पहलुओं से

[1] काशीनाथ सिंह; याद हो की न याद हो, पृ: 92

[2] काशीनाथ सिंह; याद हो की न याद हो, पृ: १५८

भी परिचित होने का सुअवसर मिलता हैं | इसके अलावा वे "नागनंद चरितम वल्द अस्सी चौराह' और 'देख तमाशा लडकी का' जैसे संस्मरणों में भी बनारस की साहित्यिक और भाषाई संस्कृति की विशेषताओं से परिचित कराते हैं| काशीजी ने अपने वरिष्ट तथा समकालीन रचनाकारों के बारे में बिलकुल तटस्थ भाव से अपना अभिमत प्रकट किया हैं|

संस्मरणों की रचना प्रक्रिया संबंधी पक्ष पर काशीजी लिखते हैं- " कितना मुश्किल और खतरनाक और चुनौती भरा काम हैं, अपने बहुत - करीब के व्यक्तियों और स्थितियों के बारे में लिखना, "भीतर' भी होना और घूमिल का विपक्ष उसके दो टूक वक्तव्यों और निर्णयात्मक स्वरों से बावजूद अन्तविर्रोघों और उलझनों का पुलिन्दा हैं| वह पूँजीवादी शोषण के भी खिलाफ हैं, मध्यवर्ग के भी और जनता के भी| उनका कोई हमदर्द नहीं हैं, इसलिए उसकी किसी के साथ हमदर्दी नहीं| वेश परिवर्तन चाहता हैं, लेकिन व्यक्तिवाद की कीमत पर नहीं| वह कविता के ऐसे बगीचे की कल्पना करता हैं जिसमें केवल एक पेड़ हो – घूमिल का और वह बगीचा भी कहलाए| वह प्रतिक्रियावादी पार्टियों के खिलाफ था, मगर हिटलर का तारीफ़ कर्ता था|

2) <u>जनवादी लेखन : कितना जनवादी?</u>

काशीनाथ सिंह ने जनवादी साहित्य की चर्चा के संदर्भ में साहित्य और राजनीति के संबंध को लेकर अपना राय सटीक ढंग से प्रस्तुत किया हैं| प्रगतिवादी लेखन की असफलता पर टिप्पणी करते हुए मार्क्सवादी रचनाकारों की मानसिकता की ओर प्रकाश डाला हैं राजनिति और साहित्य मार्क्सवादी सिद्धांतो पर आधारित बड़ी और छोटी अलग-अलग

इकाइयाँ हैं जो एक सामान्य उद्देश्य से संचालित होकर एक जुट हो जाती हैं| दोनों परस्पर एक-दुसरे से टकराते हुए आगे बढ़ते हैं| "बाहर भी रहना, अच्छाईयाँ और कमजोरियों से बुनी और बनी 'आदमियता को ढूँढ निकालना जो उस व्यक्ति को बुरे-से-बुरे वक्त में भी 'लेखक' की जिम्मेदारी से लैस किये गए हैं|"[1]

संस्मरण लिखने की सोद्देश्यता की ओर इशारा करते हुए काशीजी कहते हैं- संस्मरण लिखते समय मैं उस आदमी के समूचे टेक्स्ट को पकड़ना चाहता हूँ| टेक्स्ट का मतलब हैं, वह मूल आदमी जो अपने जीवन में और अपनी रचनाओं में फैला हुआ हैं, उस फैले हुए विस्तृत संघर्षों से गुजरा हुआ आदमी, वस्तुतः कहाँ जीवित हैं, वह अपने समूचे संसार में कहाँ हैं, - मैं संस्मरण लिखते समय उसकी खोज करता हूं| क्योकि मुझे लगता हैं कि वह आदमी अकेला नहीं हैं बल्कि उसके जैसे ढेर सारे आदमी इस घरती पर फैले हुए हैं| उसे पढ़ते हुए वे लोग अपने को भी उस आदमी में देख सकते हैं|"[2]

काशीनाथ सिंह के संस्मरणों की विशेषता यह हैं कि उनके संस्मरण युगीन परिवेश से संबंध हैं| वे एक विशिष्ट शैली के सम्भावनाशील रचनाकार हैं| पुरानी लीक से हटकर उन्होंने अपने संस्मरणों में अभिव्यक्ति के नए आयामों को प्रशस्त किया| अब भी वे इस कार्यक्रम में सक्रिय हैं|

<u>नाटक – घोआस</u>

---

[1] काशीनाथ सिंह: याद हो कि न याद हो: भूमिका से

[2] काशीनाथ सिन से साक्षात्कार से: आलोचना भी रचना हैं: पृ: 125

चौथा अध्याय

काशीजी के उपन्यास और संस्मरण के नाटक और आलोचनात्मक लेखन के क्षेत्र में योगदान किया हैं|

घोआस 1967 में प्रकाशित उनका नाटक हैं| प्रथम विश्वयुद्ध के बाद नाटक से क्षेत्र में बड़ी तेजी से परिवर्तन हुआ| विकृत मनोवृत्तियों का चित्रण अधिक होने लगा| द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद व्यक्ति अत्याधिक संत्रास हो गया| उसका अस्तित्व संकट उभरकर सामने आया| साहित्य में इसकी अभिव्यक्ति होने लगी| यही से असंगत तत्वों को साहित्य में स्थान मिलने लगा| घोआस काशीजी का एक असंगत नाटक हैं| इसमें नाटककार का मानना हैं कि व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक का समय जबरदस्ती से जी रहा हैं| असंगत नाटक व्यक्ति के भीतर यथार्थ को अधिक व्यक्त करते हैं| इसमें परंपरागत मूल्यों के प्रति आस्था नहीं| जीवन की विद्रूपताओं और विकृतियाँ इसका आधार हैं| प्रतीकों के माद्यम से जीवन यथार्थ को चित्रित करते हैं| इसकी प्रस्तुती हास्यप्रधान और अतिश्योक्तिपूर्ण होती हैं| थीम में सूक्ष्मता होती हैं लेकिन क्रमबद्धता नहीं| असंगत नाटक के चरित्र विघटित सामान्य होते हैं| इसमें पारंपरिक भाषा को महत्व नही देते| प्रतीकात्मक मंच को आधिक महत्व देते हैं|

हिन्दी में असंगत नाटकों का लेखन 1960 ई के बाद प्रारम्भ हुआ| विश्वयुद्धों, भौतिक वृत्तियों और मशीनी आविष्कारों का प्रभाव भारत पर भी पड़ा| हिन्दी में नये नाटक का प्रारंभ भुवनेश्वर की एकांकी 'तांबे की कीड़े (1946)' से होता हैं| आगे असंगत नाटकों का हिन्दी में व्यवस्थित सृजन डॉ. विपिन कुमार अग्रवाल के 'तीन अपाहिज' एकांकी से होता हैं| उनका 'लोटन' नाटक असंगत नाटकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं| लोटन तीन अंकों का लघु नाटक हैं| इसमें जीवन की विसंगतियों को काफी गहराई से पकड़ा गया हैं|

चौथा अध्याय

हिन्दी में असंगत नाटक संख्या में अधिक नहीं हैं| असंगत नाटकों में लक्ष्मीकांत वर्मा का 'अपना अपना जूता', डॉ. शम्भुनाथ सिंह के 'दीवार की वापसी', और 'अकेला शहर' काशीनाथ सिंह का 'घोआस' मुद्राराक्षस के 'मरजीवा', 'योर्स फेथफुल', 'तिलचट्टा' और 'तेंदुआ', मणि मधुकर का 'रसगंधर्व', सत्यव्रत सिन्हा का 'अमृतपुत्र आदि' प्रमुख हैं|

काशीनाथ सिंह का 'घोआस' नाटक पहाड़ी क्षेत्र का एक कस्बे और उसके आस-पास के परिवेश को रेखांकित करता हैं| कस्बे के पास एक डेरा हैं जिसमें कुछ लोग रहते हैं और मछली मारकर तथा लकड़ी काटकर अपनी जीविका चलते हैं| ये अपनी जिन्दगी सचमुच हाँफत हुए बीत रहे हैं| सब के सब निरर्थक और संत्रास गस्त जिन्दगी जी रहे हैं| पासी, घिसा,मास्सा, पूजी तथा नाजी- सब पात्र अपनी समस्याओं से घिरे हैं| ये कुछ बोल नहीं सकते| इनकी जबाने बंद हैं| वंहा 'कोई' हैं जो सबको मार रहा हैं| उसके मुह में उनका लहू लग गया हैं| चर्मन को अपने अपने पक्ष में कर लिया| उसी ने पाजी की हत्या कराई| नाजी उससे बदला लेने चाहते है पर वह न मिला| वह घीरे घीरे पासी को भी तोड़ता जा रहा हैं| उसके कारण सभी के संबंध विघटित हो गयी| सब एक दुसरे के प्रति नफरत लिए जी रहे हैं| वे लोग घर में रोते हैं, पर बाहर मिले तो लगता हैं कि उन्हें कोई गम ही नहीं| 'कोई' अपने हित में दूसरों का इस्तमाल किया जा रहा हैं| वह इस्तमाल कर्ता हैं उसे पता नहीं चलता कि उसे इस्तमाल किया जा रहा हैं| नाजी मस्सा से कहता हैं –

"वह तुम्हे हमेशा आगे कर्ता हैं में चाहता हूँ कि चर्मन के साथ हरकत करने का कोई मोका मिले, वह मुझे मारे और मुझे भी मारने की जगह दे, लेकिन वह सामने से हट जाता हैं और अपनी जगह तुम्हे कर देता हैं| वह हमेशा तुम्हे या किसी न किसी को मुझ जैसों का

विरुद्ध लाठी की तरह इस्तमाल कर्ता हैं जबकि जनता हैं मैं तुम्हारा कुछ नही कर सकता| मुझे तो गुस्सा इस बात पर हैं कि लोग अपने को इस्तमाल क्योँ होने देते हैं ---- ऐसा भी होता हिं कि हम इस्तमाल हो जाते हैं और नहीं जानते| यही तो उसकी खूबी हैं वह कितनी बारीकी से मुझको ही मेरे खिलाफ इस्तमाल कर लेता हैं|"[1]

'' हमारी आकर्मण्यता को बड़े सशक्त रूप में प्रस्तुत करता हैं| इसकी प्रतीकात्मकता बड़ी सटीक हैं| इसमें कोई व्यवस्थित कथा नहीं हैं और न कोई चरमोत्कर्ष, पर भीतर से कथा-सूत्र काफी ढीला हैं| इसके संवाद अधिक गतिशील नहीं हैं| नाटक बहुत चलता हैं| इस नाटक का कार्यव्यापार कम और कथोपकथन अधिक हैं| नाटक खुले मंच का हैं और तीनों अंको का रंग स्थल भी एक ही हैं|

हिन्दी के असंगत नाटक के क्षेत्र में काशीजी का भी नाम उल्लेखनीय हैं|

<u>आलोचना</u>

<u>आलोचना भी रचना हैं</u>

यह काशीजी की आलोचनात्मक पुस्तक हैं| इसमें काशीजी ने अलग अलग मुद्दों को लेकर अपने और अपने दौर को समझने और समझाने की कोशिश की हैं| इसमें तो 10 आलोचनात्मक लेख संकलित हैं| विपक्ष का कवि: घूमिल, जनवादी लेखन: कितना जनवादी, आज की कविता का व्याकरण कुछ संकेत-सूत्र, कहानी की वर्णमाला और में, प्रथम विश्व हिन्दी सम्मलेन और हम, गोदान: तीस साल बाद, हिन्दी कहानी पर गार्डन रोडारमल,

[1] काशीनाथ सिंह: घोआस : पृ: 35

परमाणु-युग और समकालीन साहित्य संस्कृति, लोक संस्कृति और साहित्य लेखक की भूमिका का भारतीय संदर्भ इस लेखों के अलावा दो लेख भी संकलित हैं बातें: कुछ यहाँ की-कुछ वहां की, बातें ही बातें: न यहा कि न वहाँ की आदि|

विपक्ष का कवि: घूमिल में गरीब घूमिल के कवि व्यक्तित्व एवं विचार घराओं पर प्रकाश डाला हैं| घूमिल के व्यक्ति जीवन को सबसे पहले चित्रित किया| उनके और पड़ोसियों के बीच का संघर्ष भी वर्णन का विषय रहा| काशीजी के मत में घूमिल के कवि की अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ और प्रतिक्रियाएँ पड़ोसी की हैसियत, और हरकतों से टकरा-टकराकर विकसित हुई हैं| घूमिल के व्यक्तितत्व में एक खास तरह का डैश था| इसकी दो वजह थी – एक तो कम शिक्षा का कॉम्लेक्स और दुसरा यह बोध कि साहित्यकारों की दुनिया सिर्फ साहित्यिक समस्याओं के विश्लेषण और किताबों तक सीमित हैं| उनको गाँव से जीवन संपर्क था| घूमिल उन दिनों हर उस जगह जाता था जहां से उसे कुछ सीखने और जानने को मिलता| वह जिज्ञासाओं, शंकाओं और सवालों से भरा था|

नामवर सिंह के साथ परिचित होने पर उसे मास्टर साहब के रूप में स्वीकारने की बातों का उल्लेख हैं| घूमिल कहता था "भाषा अपनी जिम्मेदारी नहीं निभा रही हैं| कुछ हैं जो भाषा खा रहे हैं|"[1] उसने कहा कि "पहले लोग कहते थे, कविता करेंगे| आज हम कहते हैं, कविता हो या न हो, हम आदमी करेंगे"[2] घूमिल में आत्मरति इस हद तक बढ़ने लगी कि उसके पास कविताओं के सिवा बात करने के लिए कुछ भी नहीं रह गया था| उसे खुद के

[1] काशीनाथ सिंह: आलोचना भी रचना हैं: पृ:17

[2] काशीनाथ सिंह: आलोचना भी रचना हैं: पृ: 21

सिवा सब गलत दिखाई पड़ने लगे और अपनी कविताओं के सिवा सारी कविताएं घटिया लगने लगी| घूमिल के कविता लिखने का जो अंदाज हैं उसे देखकर काशीजी को रीतिकालीन आचार्यों की याद आ जाती हैं| वह कविता करना नहीं था बनाना था| घूमिल की कविता अनेक प्रकार की सक्तियाँ हूँ देख सकते हैं|

"-हर आदमी एक जोड़ी जूता हैं

जो मेरे सामने

मरमत्त के लिए खड़ा हैं [मोचिराम]

आजादी के बाद गावों को कविता का विषय नहीं बनाया जाता था| पर उन्होंने गाँव को विषय बनाया वहाँ के आदमी को देखा काम को देखा, अन्न के पीछे हड्डी-पसली एक करते हुए लोगों को उसे कविता का विषय बनाया| बंगाल के नक्सवाडी किसानों आन्दोलन ने आखिल भारतीय स्तर पर लेखकों को जनचेतना और जनशक्ति का एहसास कराया| वहाँ से साहित्य में बदलाव आना शुरू हुआ| उनके अनुसार साहित्य मानवीय संवेदनाओं के दान-प्रतिदान की गतिशील प्रकिया का भाषाबद्ध इतिहास हैं| जनवादी लेखक का काम हैं उस गतिशील प्रकिया की जीवन बिम्ब प्रस्तुत करना जो पढनेवाले के मानसिक संसार में हलचल पैदा करें|

<u>आज की कविता का व्याकरण</u>

चौथा अध्याय

भारतेंदु के जमाने के साहित्य की भाषा जनसामान्य की भाषा बनी| परिणामतः साहित्यक भाषा एवं अभिव्यक्ति में मार्मिक बदलाव हुए| नई कविता भी भूमिका की कविताओं में ज्यादातर इसी प्रकार के शब्दों विशेषणों और मुहावरों के जाल हैं जिसकी अतिसरलता के कारण पाठक वस्तुगत यथार्थ की गहराई तक पहुंच नहीं पाए| यदि हम विशेषणों पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि भाषा के विशेषण औरत और प्रकृति पर केन्द्रित हैं|

'नई कविता' के कवियों की संवेदना ने अपने लिए एक बड़ी ही धूर्त और बातूनी भाषा की रचना की हैं जो एक औरत तो अपनी प्रकृति में सर्वहारा वर्ग की जुबान से मेल खाती हैं| वह रोजमार्श की ठोस चीजों को धुएँ की लकीरों में बदल देती हैं और चीजों की अपनी शख्सियत को मिटाकर उन्मिन धपला पैदा कर देती हैं| नतीजा यह होता हैं कि चीजों का फर्क मिट जाता हैं| और अर्थच्युत होकर वस्तुस्तिथि को धुंधला बना देता हैं| आगे जाकर कविता के शब्दों के बीच कोई अंतराल या दरार नही छोड़ देती, वह उस दरार को भी 'आदमी' की शक्स में प्रस्तुत करती हैं| युवा कवी के लिए कविता आदमी का चेहरा हैं| आज की कविता 'कविता' की रूठ मान्यता से कितना बाहर निकल आई हैं| यह युग कवी की इस आत्मस्वीकृति से स्पष्ट हो जाता हैं|

आज की कविता में विशेषणों के प्रयोगों का एक गुसरा स्तर दिखाई पड़ता हैं| लगता हैं विशेषण किसी संज्ञा के मुहताज नहीं, स्वयं सार्थक होना चाहते हैं जैसे उन्हें विशेष्य से बाहर अपने अस्तित्व की फ़िक्र हो आई है| आज कविता से सीधे जब 'वस्तु' या आदमी का सामना किया तो उसके इर्दगिर्द की प्राकृतिक वस्तुएं अपने-आप बाहर निकल गई|

सब मिलकर आज की कविता का मूल्यांकन अच्छी और बुरी से संदर्भ नहीं 'सामयिकता' और आवश्यता के संदर्भ में होना चाहिए| किसी भी रचना की सार्थकता उसकी ऐतिहासिक भूमिका में ही निष्पन्न होती हैं और इसमें संदेह नही की आज की कविता ऐतिहासिक जरूरतों के प्रति 'नई कविता' के समानान्तर अधिक सजग और सर्तक हैं|

4. 'कहानी की वर्णमाला और में'

इसमें काशीजी अपनी रचना के बारे में तथा कहानी उनके लिए कैसे खास हुए इसके बारे में कहते हैं| भारतेंदु और प्रेमचंद जैसे लोंगों के रचनाकाल की बातें करते हए उनके समय में लिखने के लिए किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा हैं उसका यथार्थ प्रस्तुत करती हैं|

उनके रचनाकार कार व्यक्तित्व का विकास कैसे हुआ| इसमें नामवर जी की योगदान कौन सा हैं? उनके उपदेशों से ही सीरियस लेखन की ओर मुड़े|

कहानियाँ लिखने के बाद ही काशीजी ने लिखने का मतलब जानना शुरू किया था| उन्होंने बाद में कई पत्र पत्रिकाओं को देखने पढने के बाद यह महसूस किया समाज वर्गों में बाँटा हैं, इसलिए लेखक भी वर्गों में बाँटे हैं| पत्रिकाएँ भी किसी-न-किसी वर्ग के लिए होतीं हैं इसलिए एक जनवादी लेखक को सभी पत्रिकाओं में नहीं लिखना चाहिए| साहित्य क्रन्तिकारी परिवर्तन या शक्तिशाली हथियार हैं| इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर उन्होंने राजनीति का साथ अपने साहित्य के लिए पकड़ा|

उन्होंने अपने साहित्य और वस्तु-जगत के यथार्थ के बीच के फैसले को खोलकर सामने रखा, जीवन और जगत और साहित्य के आत्मसंबंधों पर लोगों से बातें की| साहित्य की जनवादी परम्परा के बारे में अपनी सोच के तौर तरीकों पर फिर गौर किया|

5. प्रथम विश्व हिन्दी सम्मलेन और हम

प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन जो नागपुर में हुआ था उसका वर्णन हैं| देश-विदेश से प्रतिनिधियां आये थे सम्मेलन में भाग लेने के लिए| पहले और दुसरे दिन तो किन्ही ठोस बातों पर चर्चा नहीं हुई तीसरे दिन हिन्दी भाषा को अंतरराष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रसंघ की एक भाषा के रूप में स्वीकृत किए जाने का प्रस्ताव, हिन्दी को शिष्ट जनों को भाषा बनाने का प्रयत्न, लेखक को जनता की जरूरतों के साथ खड़े होने की आवश्यकता, अंधायुग और धर्मयुग आदि पर गहरी बहसें हुई|

6. गोदान: तीस साल बाद

प्रेमचंद को नये ढंग से पहचानने एवं परखने का प्रयास इस लेख में काशीजी ने किया हैं| वे गाँव के लेखक इसलिए थे कि गाँव के आदमी थे| उन्होंने उसे देखा ही नहीं समझा भी था, यही कारण हैं कि वे होरी की जिन्दगी न जीते हुए भी उसकी तबाही के कारणों की खोज के दौरान शोषण के उन तमाम संदर्भ-शुत्रों तक पहुच जाते हैं, जिनके सहारे महाजनी सभ्यता की कनात खड़ी हैं|

प्रेमचंद स्वराज को गरीबों की आवाज मानते थे| अपने इतिहास से जितना गहरा और जाहिर लगाव प्रेमचंद का रहा हैं, उतना शायद ही हिन्दी के किसी लेखक का रहा हों|

होरी गोदान का नायक हैं| गोदान का कथानक होरी के चरित्र को दो ऐसी मूलभूत विशेषताओं पर टीका हैं, जो बीसवीं सदी के आरंभ से ही भारतीय किसानों के जीवन का आधार रही हैं| वे हैं धरम और जात| मरते दम तक इन दोनों की रक्षा के लिए काम करता रहा| अंत में उसकी 'मरजात' भी चली जाती हैं, 'धरम भी नहीं रहता और होरी को रामसेवक के हाथ दो सौ रूपए में अपनी आखरी कन्या, रूपा बेच देनी पड़ती हैं|

इसमें शक नहीं की होरी की गाय प्रेमचंद का प्रेस हैं| उसके जीवन का लालसा| प्रेस के निरंतर के घटे ने प्रेमचंद को ऐसा कर्जदार बनाया कि वे जीते-भी उस घाटे को पूरा न कर सके| असल में प्रेमचंद की स्थिति गोदान में कुछ उस तरह की हैं| उपन्यास के पत्रों के माध्यम से ही गोदान की आलोचना की हैं| हिन्दी का एक बड़ा उपन्यास हैं गोदान और प्रेंचंद के जमाने को देखें तो भूत बड़ा| वस्तुतः जनतांत्रिक संघर्ष में गोदान के सही मूल्य का पता तब चला हैं, जब उसके समानांतर उसी वर्ष प्रकाशित छायावाद के महान काव्य 'कामायनी' को रख लेते हैं, और तुलसी और भरतेंदु को मिलाने वाली रेखा को प्रेमचंद तक बढा देते हैं|

7. <u>हिन्दी कहानी पर गार्डन रोडाररमल के विचार</u>

रोडरमल केलिफोर्निया विश्वविद्यालय में दक्षिण एशिया की भाषाओं और साहित्य के सहायक प्रोफ़ेसर थे| उन्होंने 'गोदान' और अपने-अपने अजनबी का ही नहीं अनेक महत्वपूर्ण कहानियों का अंग्रेजी में रूपांतर किया हैं| उन्होंने साहित्य संबंधी अपना विचार प्रकट किया हैं| 50 के पहले की कहानियों में टूटते पारम्परिक संबंधों को प्रकट करते समय, बड़े दुःख का

एहसास होता था| लेकिन खराब माँ बुरी माँ आदि का उल्लेख नही होता था| 60 के बाद की कहानियों में बिलकुल बदलाव देख सकते हैं| उनके अनुसार परिवर्तन चाहिए साहित्य में| उन्होंने नई कहानी, महिला लेखन के बारे में भी अपना विचार प्रकट किया हैं| साहित्य संबंधी अपने कई विचारों को इसमें प्रकट किया हैं|

8. परमाणु-युग और समकालीन साहित्य

अणु-युग ने टेक्नालाजी, औधोगीकरण, आधुनिकीकरण और नगरीकरण के माध्यम से जिस गती से मनुष्य को मशीन बनाया हैं| अतः यह कहना असंगत नही होगा कि साहित्य का सृजन के पीछे महायुद्ध की विभीषिका से पीड़ित लोंगों को वेदना हैं| अमानवीय अत्याचारों के विरुद्ध रचनात्मक हस्तक्षेप हैं| अमेरिका के अणु संस्कृति की प्रतिक्रिया में हिन्दी संस्कृति और बीच साहित्य का हुआ और यूरोप में अस्तित्ववाद की|

1960 के बाद अणुयुग को अपने देश में भ्रष्टाचार, लूट, बेईमानी, फरेब, ऊच-नीच, जातिवाद, नौकरशाही की शक्ल में देखा, और महसूस किया कि इनसे लड़ने का हथियार 'साहित्य' हैं जो कम प्रभावशाली और कारगार नहीं| उनके मत में साहित्य के माद्यम से जनता के अन्धविश्वास रूढिवाद, जडसंस्कार, कर्मकाण्ड, पिछड़ेपन पर प्रहार किया जा सकता हैं|

9. संस्कृति, लोक संस्कृति और साहित्य: संकट और दायित्व

संस्कृति और श्रम का अटूट संबंध हैं जहां श्रम हैं वहाँ संस्कृति हैं, जहां श्रम नही, वहा संस्कृति भी नहीं हैं| श्रमजीवी जातियों की संस्कृति ही लोक-संस्मृति हैं| औरत काम करते

समय, नहाने जो गीत गाती हैं प्रायः वह लोकगीत होता हैं| बच्चों को लोरियाँ एवं कहानियाँ सुनाके बच्चों को सुलाती हैं| मशीनी संस्कृति के आगमन तक यह संस्कृति सुरक्षित रही|

मशीनी श्रम के विकास से मानव श्रम समाप्त होने लगा| लोक संस्कृति संत में फस गयी| लेकिन वह किसी न किसी प्रकार आज भी सुरक्षित हैं| सांस्कृतिक समस्याओं को राजनितिक और आर्थिक समस्याओं के काटकर न तो समझा जा सकता हैं न उनका हल ही ढूंढा जा सकता हैं| आज हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता हैं सांस्कृतिक एकता| उसकेलिए विदेशी तत्वों का त्याग अनिवार्य हैं| क्योंकि वह ह्रासोन्मुख, प्रतिक्रियावादी और अधः पतित संस्कृति हैं|

10. <u>लेखक की भूमिका का भारतीय संदर्भ</u>

भारत तो बाहर के देशों से अच्छा संबंध रखने वाले हैं| पहले विदेशी लोगों की नजर हमारी योग-साधना, धर्म, अध्यात्मिकता, वेद, पुराण, मुर्तिकाल और संगीत पर थी| आज भारत गरीब हैं अतः साम्राज्यवादी देशों की नजर से भारत को न देखना चाहिए| स्वाधीनता के बाद साम्राज्यवाद देश के भीतर आतंकित उपनिवेश हमेशा कमज़ोर समूह की तलाश करता था| सभी धार्मिक भावना को आधार पर क्षेत्र बनाता हैं कभी गरीबी को नहीं तो गरीबी और भाषा के आधार पर| क्यूंकि भारत जैसे विशाल देश में ऐसे विषय क्षेत्र, पिछड़े इलाके या कमज़ोर समूह बहुत हैं| आधुनिकतावाद, अजनबीपन, अकेलापन अलगाव बोध, मृत्यु बोध, व्यार्थता बोध, आदी पारिभाषिक शब्दों से शहर साहित्यकारों की आँखों में चका चौद पैदा कर रहा था| गाँवों और कस्बों से शहर में पढने वाले और नौकरी करने आए

युवा लेखकों के पास जनवादी साहित्य परम्परा की विरासत थी| आजादी की आशा आकांक्षा, विश्वास और आदर्श थी|

उनके अनुसार साहित्य सामजिक परिवर्तन का हथियार हैं| इस प्रकार नारे के साथ रचनात्मक शक्ति आम जनता के लिए और प्रगतिशील साहित्य की खण्डित परम्परा से अपने को जोड़ते हुए अपने लेखन का 'जनवादी लेखन' नाम दिया| प्रगतिशील और जनवादी लेखन केवल हिन्दी का नहीं बल्कि सभी भारतीय भाषाओं में साहित्यिक-सांस्कृतिक आन्दोलन की हैं|

11. <u>बातें : कुछ यहाँ की कुछ वहाँ की</u>

इस के तीन छोटे छोटे अंश हैं| पहला अस्वीकृत रचना, दुसरा मुदर्रिस का दर्द और तीसरा पढाई का मतलब|

'एक अस्वीकृत रचना' में काशीजी और एक शोध छात्र के बीच की बातचीत हैं| परिवेश पत्रिका में छपने के लिए एक लेख समर्पित किया गया था| उस छात्र ने उसे न छापने की बात को लेकर परेशान था| उसकी परेशानी को दूर करते हुए साहित्य से क्या मतलब होना चाहिए उसका लक्ष्य क्या हैं इन सब की ओर लेखक प्रकाश डालते हैं| काशीजी उस छात्र को समझाते हैं कि "आप जीवन के लिए लिख रहे हैं, और वे में जीवन के लिए लिख रहा हूं|"[1] अंत में काशीजी यह बात कहकर समाप्त करती हैं कि – "आप लिखिए, दो

[1] काशीनाथ सिंह: आलोचना भी रचना हैं: पृ:114

बार में न लिखी पाएं तो बार-बार लिखिए| अपने विचारों को पैदा कीजिए| अपनी भाषा को तीखी और तल्ख बनाइए|"[1]

'मुदर्रिस का दर्द' इसमें काशीजी ने विश्वविध्यालय के प्राध्यापकों की दयनीय स्थिति और उपेक्षा के बारे में बताया हैं| वहाँ प्राध्यापकों को छात्र गण 'पालतू' और 'दलाल' कहकर पुकारते हैं, दफतरों में तो घंटों तक खड़ा रहना पड़ता था फाइल आगे बढ़ाने के लिए| अधिकारी वर्ग उसे दुत्कारते थे| इन बातों से तंग आकर प्राध्यापक आत्महात्या भी करते थे| पर काशीजी यह बात भी हमारे सामने रखते हैं कि जो प्राध्यापक बाहर पढाने के लिए जाते हैं| यानी भारत के बाहर उन्हें प्रतिष्ठा एवं सम्मान मिलता था| उनके नाम राष्ट्र का गौरव भी बढ़ता था| भारत के विश्वविद्यालयों में एक प्रकार का ब्यूरोक्रेटिक स्थिति हैं| वहाँ के अध्यापकों की मानसिकता ही समस्या हैं| अधिकांश शैक्षणिक अधिकारी अपने विषय में प्रख्यान विद्वान होते हैं पर एक प्रकार का 'अधिकार का मद' हैं उनके आचरण में| प्राध्यापकों की नियुक्ति भी योग्यता के अनुकूल नहीं होती थी| काशीजी ने प्राध्यापकों के क्षेत्र में आनेवाली समस्याओं पर अपना दृष्टि डाली हैं| 'पढाई का मतलब शीर्षक लेख में उन्होंने उस समय की शिक्षण प्रणाली तथा शिक्षा के स्तर पर अनिवार्य परिवर्तनों के बारे में विचार किया हैं| सबसे पहले 'सेमेस्टर सिस्टम' लागू होने के बारे में विचार किया हैं| अधिकारी वर्ग मौजूदा शिक्षा प्रणाली को बदलने की बातें कर रहे हैं| कई बार सुविधा भोगी शासक वर्ग ने यह धोषणा की कि हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण भारतीय समाज को शिक्षा से लैस करना हैं और निरक्षरता खत्म करनी हैं|

[1] काशीनाथ सिंह: आलोचना भी रचना हैं: पृ:116

काशीजी के अनुसार 26 वर्षों की शिक्षा पध्दति इसका जवाह हैं कि वह पूंजीपतियों –ज़मीनदार लड़कों को नेतृतव देने के लिए शिक्षित कराती रही तो मजदूरों –किसानों के लड़कों को सेवक बनाने के लिए| इनकी दूसरी कमी यह हैं कि जिन्दगी के संघर्षों से काटकर शिक्षा को विध्यालयों तक और ज्ञान के ग्रंथों तक सिमित रखना| बाह्य जगत में घटित घटनाओं को अपने कार्य क्षेत्र से बाहर का हैं ऐसा समझ बैठे|

वर्तमान शिक्षा-निति से किसानें, मजदूरों और मध्यवर्गीय घरानों से आने वाले विद्यार्थी असंतुष्ट हैं| वे इस सामंतवादी व्यवस्था को हटाकर समाजवादी व्यवस्था को आगे बढ़ाने का आह्वान देते हैं| जिन सामग्रियाँ दुसरे प्रकार की व्यवस्था और दृष्टि की माँग कर रही हैं| वह दृष्टि शिक्षा के क्षेत्र में होनेवाले शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने को हैं| समाजवादी शिक्षा श्रम के प्रति सम्मान का भाव रखती हैं और धार्मिक वर्गों के साथ तालमेल रखते हुए अपना विकास चाहती हैं| शिक्षा राजनीति का सबसे महतवपूर्ण अंग हैं और राजनीति का अर्थ हैं विश्व पूँजीवादी और साम्राज्यवाद के विरूद्ध मुक्ति केर लिए सर्वहारा का संघर्ष| अतः समाजवादी व्यवस्था शिक्षा के इसी उद्देश्य से संचालित हैं|

'प्रेमाचार' में काशीजी ने लीलाधर जगूड़ी जी के साथ अपने पत्र व्यवहार की बात की हैं| जगूड़ी जी ने काशीजी की 'आदमी का आदमी' कहानी पढने के बाद की अपनी प्रतिक्रिया जाहिर की हैं| उन्होंने कहानी भाषा और कथ्य में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया हैं उससे ऐसा भ्रम हुआ हैं कि वह उसे कहानी माने या कविता| जवाब में काशीजी ने लिखा की जगूड़ी जी के मन में कही न कही कविता की रूढ़ी अब भी विद्यमान हैं उन रूढ़ीयों को

तोड़कर आगे बढने की बात की हैं| जिस कविता की बात कर रहे हैं वह इतिहास हो गया हैं| उन्होंने आज की दुनिया के साथ लिखने और आगे बढ़ने की प्रार्थना की हैं|

'हस्तक्षेप कहानी के बहाने' शीर्षक लेख में लेखक की कहानी को मान्यताओं और मूल्यों के आधार पर विश्लेषित करते हैं| कहानी में यथार्थ का चित्रण करते वक्त लेखक को कई कठिनाइयों का सामना करना पढता हैं| पात्र तो अतियथार्थवादी होते हैं| इसलिए उनकी कहानियों के पात्र झूठ हैं या कल्पित उसको लेकर कोंई सफाई देने की जरूरत नहीं होती| आदमी को समूची भूमिका में देखने की कोशिस उनकी कहानियों में हैं| आदमी को अपनी ज़मीन से काटकर नहीं उनकी समूची भूमिका में देखना ही कहानी का लक्ष्य होना चाहिए|

'अपना मोर्चा के आस पास' इसमें अपना मोर्चा के लिखने के बारे में तथा उस उपन्यास के प्रकाशन के बारे में लिखा है| इस उपन्यास के लिखते समय वे विश्वविद्यालय के प्राध्यापक थे| उन्होंने इसके विषय के रूप में एक दूसरे आन्दोलन को लक्ष्य किया था पर लिखने के बाद वह युवा संघर्ष का बन गया| उपन्यास के आने के बाद लोगों की मानसिकता एवं मतों का वर्णन भी किया गया है| काशीजी वही लिखता है जो उसे बखूबी जानता है|

'प्रेमचंद और हम' में अपने पर्व, तीज-त्यौहार तथा ग्रामीण समस्यावों को गहराई से चित्रित करने का जो कार्य प्रेमचंद ने किया है उसका विश्लेषण है| अज्ञेय जी का उल्लेख भी है| मनोविश्लेषणवादी और भाववादी लेखकों की जड़ें जो इलाहबाद में जम गई उसका

चित्रण भी किया गया है| प्रगतिशील लेखन ने साहित्य में जो बदलाव उपस्थित किया उसका जिक्र भी इस लेख में किया गया है|

'नई कविता' के समानात्तर नई कहानी पत्रिका भी इलाहबाद से ही शुरू की गई| 60 के बाद अकहानी, अकविता, भूखी पीढ़ी, आलोचना की निरर्थकता, सचेतन कहानी, समांतर कहानी आदि आन्दोलन और औपनिवेशिक और आधुनिकतावादी साहित्य आदि के आने पर लेखकों के बीच उत्पन्न तनाव मार्क्सवादी कथाकारों का आगमान जैसी ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख भी इस लेख में हुआ है| प्रेमचंद के यहाँ किसान की समूची जिन्दगी दिखाई देती है जबकि नई कहानी के दौर में गाँव और अंचलों के कथाकारों के यहाँ सिर्फ हरियाली है, वह जिन्दगी नहीं|

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि संस्मरण के क्षेत्र के अलावा नाटक, आलोचना के क्षेत्र में भी काशीजी ने अपनी एक विशिष्ट शैली को आगे बढ़ाया| आलोचना में रचना संबंधी अपना दृष्टिकोण को हमारे सामने प्रस्तुत किया है| इस प्रकार लगभग सभी विधाओं में अपना सान्निध्य उन्होंने ज़ाहिर किया हैं| अपनी अलग दृष्टि से उन्हें संपुष्ट भी|

पांचवाँ अध्याय

काशीनाथ सिंह की रचनाओं का संरचना पक्ष

पांचवाँ अध्याय

कहानियों की शिल्पगत

रचनाकार अपने भावों और विचारों को पाठकों तक पहुँचाने के लिए अभिव्यक्ति के कई विधानों का सहारा लेते हैं| अभिव्यक्ति को ज्यादा रोचक, आकर्षक एवं प्रभावशाली बनाने के लिए रचना में तरह-तरह के प्रयोग करते हैं| कभी भाषा के माध्यम से तो कभी शिल्प के माध्यम से| वस्तुतः "एक निश्चित लक्ष्य अथवा तकाल प्रभाव की पूर्ति के लिए की रचना में जो एक विधानात्मक प्रक्रिया उपस्थित करती है, वही उस की शिल्पविधि है|"[1]

समकालीन कहानी में आकर कहानीकार ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए शिल्प के स्तर पर नयी भंगिमाएँ उपस्थित की तथा इसके जरिए कहानी के रूप को परिष्कृत किया| उसमें नए विचारों को आत्मसात करने की क्षमता को भी विकसित किया| समकालीन कहानी में वे समस्त शिल्पगत प्रवृत्तियाँ विद्यमान है, जो वस्तुतः कहानी-कला की आधार शिलाएँ हैं| काशीनाथ सिंह ने भी अपनी कहानियों में शिल्प के नवीन उपादानों को उपस्थित किया है| शिल्पगत प्रवृत्तियोंको दृष्टि से काशीनाथ सिंह की कहानियाँ कला के विशिष्ट प्रतिमान हैं|

<u>किस्सगेई</u>

इसमें कहानी की शुरुआत एक किस्सा बोलने के अंदाज में होंतीं है| पुराने ज़माने में कहानियाँ ऐसी लिखी जाती थी| समकालीन दौर में इस शैली को अपनाकर अच्छी कहानियाँ लिखी गयी है| काशीनाथ सिंह की कहनी 'कहानी सरायमोहन की' बिलकुल इसी

[1] हिन्दी कहानी की शिल्प-विधि का विकासः लक्ष्मीनारायण लाल पृः 3

अन्दाज में शुरू होती है| "कलिकाल की बीसवीं शताब्दी के आठवें चरण में एक बाबू साहब जो मौज जियपुन के निवासी थे और जिसका नाम धनुदारी सिंह था सुकवा के लट्ठा भर ऊपर आने के बाद जाड़े की रात में चुपचाप घर से निकले|"[1]

चोर कहानी का आरंभ भी इसी तरह हुआ है, "जून की एक दोपहर नई कोलोनी की सुनसान सड़क से गुजरते हुए निकाम पीपल के दरख्त के निचे खड़ा हो गया| वह पसीने से तर था और उसकी खाकी वर्दी"[2] 'मिसाजातकम' का आरंभ भी इस शैली में हुआ हैं- "अतीत काल में वाराणासी में ब्रहनदत्त के एक और ग्यारह योनि में उत्पन्न होकर पोटठपाद नाम से मार्ग के किनारे विचरण करते थे|"[3] कहानी की कमजोरी यह है कि किस्सागोई अंदाज में शुरू होकर कहानी में किस्सा बीच-बीच में टूटती नजर आती है|

<u>नाटकीयता</u>

कहानी में नाटकीयता का प्रयोग कहानीकार इसलिय करती हैं ताकि वे कहानी के मर्म को स्पष्ट रूप से पाठकों तक पहुँचा सके| काशीजी की आधिकांश कहानियों में इस शैली का प्रयोग मिलता है| संवादों के माध्यम से उन्होंने इस शैली को अपनाया है| "लाल किले के

[1] कहानी उपख्यान: काशीनाथ सिंह: पृ: 336
[2] कहानी उपख्यान: काशीनाथ सिंह: पृ: 119
[3] कहानी उपख्यान: काशीनाथ सिंह: पृ: 178

बाज" में जादू की पत्नी का सिर जब उसके कन्धों पर पड़ता है तब उसे जगाकर वह कहता है – "डियर, यह कन्धा किसी नारी के सिर के लिए नहीं, राईफिल के कूँदे के लिए हैं|"[1]

"लोग बिस्तरों पर" में कहानीकार ने अतिनाटकीयता का प्रयोग किया है| अतिनाटकीयता पुरी तरह से 'फैंटेसी' बन जाती है| इसमें चमत्कारपूर्ण चुटकुलों का प्रयोग किया हैं| "लड़के की आवाज से लाश में हरकत हुई| आँखे छन से गिरी और उसके चेहरे पर आ सटीं|

"जी में कासिम हूँ", वह बोला|

"कासिम हो या खड़े हो", मजाक में तोंद थरथराई और वह बैठे [2] काशीजी ने संवादों को लेकर कुछ विशेष प्रयोग किये हैं और उन्हें अपने सीधे अर्थों से अलग रख कर विरोधाभास की नाटकीयता से जोड़ा है| इस संदर्भ में कुछ उद्धरण दृष्टव्य है – "अगर ये सवारियाँ हैं, तो फिर केवल आ और जा क्यौं रहे हैं?" या "क्या ये आदमी घर में बैठे क्यौं नहीं रह सकते थे जो सड़क पर छल रहे हैं?"[3] (कस्बा, जंगल और साहब की पत्नी)| 'अपने लोग' में एक प्रसंग देखिए "क्या तुम दफ्तर नहीं जा रहे?" मैंने जान बूझकर पूछा, तुम जानते हो की में दफ्तर नहीं जा रहा|" मैं कैसे जा सकता हूँ तुम जानते हो आज रविवार हैं ..... ऐसे दफ्तर इधर कहाँ हैं?

---

[1] कहानी उपख्यान: काशीनाथ सिंह: पृ: 178

[2] कहानी उपख्यान: काशीनाथ सिंह: पृ 64

[3] कहानी उपख्यान: काशीनाथ सिंह: पृ 40

'हाँ में जानता हूँ दफ्तर इधर नहीं है|'

'फिर में दफ्तर कैसे जा सकता हूँ?'

'हाँ फिर तुम दफ्तर नहीं जा सकती|"[1]

'सदी का सबसे बड़ा आदमी' कहानी की रचना उन्होंने इस शैली में की है| पूरी कहानी में नाटकीयता हमें दिखाई देती है| शौक साहब का खिड़की के पास बैठकर गली में थूकना और गली में उनकी पीक के इंतजार में खड़े लोग पे सब उनकी नाटकीयता का ही परिचय कराते हैं| कहानी के बीच-बीच में एक नौजवान शैक साहब को ललकारता हुआ प्रवेश करता है और बहुत देर तक शैक साहब और वहाँ इकट्ठे हुए लोंगों आश्चर्य में डाल देता है और बीच में ही गायब हो जाता है, "लोग टकटकी लगाए खड़े रहे कि देखें, इस क़त्ल की रत में क्या होता है, बूँद कब गिरती है? इसी बूँद का इन्तजार करते-करते और होते-हवाते सुबह हुई, तो चारों तरफ एक सनसनी दहशत फ़ैल रही थी| .....नौजवान वहाँ नही था जहाँ पड़ा था|"[2] इसी तरह नाटकीयता इसमें कूट-कूट कर पड़ी है| शिल्प की दृष्टि से प्रस्तुत कहानी काशीजी की महतवपूर्ण कहानियों में से एक है|

काशीजी ने अपनी कहानियों के जरिए उन सामाजिक वास्तविकताओं को प्रस्तुत किया हैं जहाँ लोग सुख लोलपुता के लिए किसी और की मेहरबानी के इंतज़ार में अपनी कीमती वक्त गंवाया करते हैं| काशीजी ने इस सामाजिक सत्य को नाटकीयता प्रदान कर के

[1] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह: पृ 85

[2] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 227

कहानी के शिल्प को रोचक बनाया है| "सफल शिल्पकार सामाजिक वास्तविक्ता को नाटकीयता प्रदान कर कहानी में उपस्थित कर देता है, फलतः उसे उसके तथ्य निरूपण की आवश्यकता नहीं रहती|"[1]

'सुधीर घोषाल' में कहानीकार क्रांति का परिचय पाठकों को कहानी के बीच में देता हैं| पहले प्रशासकीय क्रियाकलापों को उसके अभेद ढांचे और रहस्यमय को बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है| क्रांति को उन्होंने बहुत ही नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है| "वस्तुतः नाटकीय परिस्थिति के निर्माण के द्वारा कहानीकार पाठक को प्रत्यक्ष रूप से कथा की भूमि पर प्रतिष्ठित कर देता है और उसे कथा से समस्त व्यापारों का भागी बना देता है|"[2] सुधीर घोषाल लेखक के मत में प्रशासक के प्रति जो रोष है उसको प्रकट करते हुए कहता है ई दस लेबरों को ज़िंदा आग में भुन दिया और भी बहोत बहोत अत्याचार किया.....हम ज़िंदा नई छोड़ेंगे इसको हम जाने नेई देगा|"[3] इस प्रकार सुधीर घोषाल जब अपना इरादा जाहिर करता है तो पाठक कहानी के अंत की कलपना बखूबी कर लेते हैं| उनके मत से प्रशासक के गायब होने के संबंध में सारी शंका दूर हो जाती है|

कहानीकार नाटकीय परिस्थिति का निर्माण करके, बड़ी आसानी से पाठकों को एक ऐसी मनोभूमि तक ले जाता है जहाँ वह किसी भी परिणाम को झेलनी के लिए प्रस्तुत है| नाटकीय परिस्थितियों को कहानी में उजागर करके कहानीकार पाठक को उस परिणाम का अवगत कराता है ताकि उसकी संवेदना उस परिणाम से तादाम्य प्राप्त कर सके| नाटकीयता

[1] हिन्दी कहानी प्रक्रिया और पाठः सुरेंध चौधरी पृः 92

[2] हिन्दी कहानी प्रक्रिया और पाठः सुरेंध चौधरी पृः 134

[3] कहानी उपखानः काशीनाथ सिंह पृः 213

कहानी के शिल्प को ज्यादा मजबूत करती है और काशीनाथ सिंह ने नाटकीयता द्वारा अपनी कहानी कला को श्रेष्ट बनाया है|

आत्मकथात्मक

कहानीकार अपने भावों और विचारों को पाठकों के सामने स्पस्ट करने के लिए कभी आत्मकथात्मक शैली का इस्तमाल करता है| काशीनाथ सिंह ने अपनी बहुत सी कहानियों में इस शैली का प्रयोग किया है| "अपना रास्ता लो बाबा" में देवनाथ के आत्मकथन के माध्यम से कहानीकार ने कहानी के मर्म को प्रस्तुत किया है "सारी जिन्दगी सारी दुनिया और सारा जमाना तुम्हारे सामने है और तुम एक बेमतलब के बुड्ढे को लेकर मुँह लटकाए बैठे हो|"[1] देवनाथ का ही नहीं बल्कि पूरी मानसिकता को उभारा है|

'कविता की नई तारीख' में कवि जी सानु के घर में बेइज्जत होकर आँसू गुस्से और गलानि से भरकर आत्मकथात्मक शैली में अपनी मृत्यु का घोषणापत्र तैयार करता है| "छोटी-छोटी लालचों और उम्मीदों, तिरस्कारों और खुशामदों .....से बना यह में..... अपने होने के बेहतर और आरामदेह बनाने के लिए इज्जत रखने के लिए शाहिदाना जिम्मेदारियों के साथ तीस सालों से लाक की तरह धधकता रहा हूँ|"[2] इस शैली के माध्यम से कहानीकार पात्रों की मानसिक स्थिति को बहुत ही स्पस्ट रूप से पाठकों तक पहुचने में सफल हो जाते हैं|

[1] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 314

[2] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 390

पांचवाँ अध्याय

प्रतीकात्मकता

कहानीकार आंतरिक सत्यों को मूर्त करने के लिए कभी –कभी प्रतीकों का सहारा लेता है| प्रतोकों के द्वारा कहानी और भी प्रभावपूर्ण बनती है| वस्तुतः प्रतिक को कथा की मुख्य परिस्थिति के बीच रखकर कथाकार घटना का विधान करता है और इस प्रकार कथानक को नया मोड़ देता है, “सुधीर घोषाल” में सुधीर घोषाल व्यक्ति से अधिक एक सामूहिक शक्ति का प्रतीक है जो अन्याय और अत्याचार के खिलाफ एक सुनियोजित लड़ाई का नक्शा तैयार करता है|” [1] कहानीकार ने सुधीर घोषाल को कहानी के बीच में उपस्थित कर कहानी के मर्म को उद्घाटित किया है|

‘जंगलजातकम’ नामक कहानी शिल्प के पुन:संस्कार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है| इसमें कहानीकार एक नई शिल्प विधि के माध्यम से औधोगीकरण के दुष्परिणामों की ओर संकेत करते हैं| इस कहानी में जिस जंगल का उल्लेख किया ज्या है वह एक प्रतीकात्मक जिसके द्वारा कहानीकार ने देश की वास्तविक स्थिति का बोध दिलाया है| इस कहानी के बूढ़े बरगद के माध्यम से मनुष्य की एकता और अस्मिता का महत्व बनाया गया है|

स्थानीयता

स्थानीयता से मतलब उस स्थान से हैं जहाँ पर कहानी घटती है और जहाँ पर कहानीकार कहानी के लिए अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करता है| कहानी की सफलता में वातावरण का बहुत बड़ा हाथ है| वातावरण कहानी को सही पुष्टभूमि प्रदान कर देता है

[1] सिलसिला: मधुरेश: पृ: 110

जिससे कहानी का विकास होता है| "सुधीर घोषाल" में पूरी कहानी बिहार के पहाड़ी इलाके में घटित होती है| वहाँ के वातावरण का विवरण कहानी को सही पृष्टभूमि प्रदान कर देता है, "यह एक अजब माहोल होता है जब अँधेरे के नीचे चारों तरफ कोयला पकाने की घघकती हुई भट्ठियां होती, आग की लपलपाती हई लपेटे आसमान चूमती रहती..... उस इलाके का सारा आसमान धुएँ और कोयला की बदबू से भर उठता.....|"[1] स्थान के इस वर्णन से कहानीकार ने पहली से ही पाठकों को कहानी में निहित भीषण अवस्था की ओर संकेत किया पूरी कहानी में बिहार की पहाड़ियों का विस्तृत विवरण बिखरा पडा है|

काशीनाथ सिंह की शिल्पगत प्रवृत्तियों में ब्योरों का अपना एक विशिष्ट स्थान है| उन्होंने अपनी कहानियों में ढेर सारे ब्योरे प्रस्तुत किए हैं| समकालीन कहानी के रचना बिधान में ब्योरों का महत्वपूर्ण स्थान है, "इनके जरिए लेखक कहानी के वातावरण का निर्माण ही नहीं करता, कथ्य का बोध भी कराता है| इसके द्वारा संवेदना और विचार के बारीक तन्तुओं की पहचान में सहायता मिलती है|"[2]

'अपना रास्ता लो बाबा' में बाबा के आगमन को लेकर देवनाथ की जो मानसिकता है उसको कहानीकार ने विस्तृत ब्यौरा देकर स्पस्ट किया है – "बाबा बोलते गए और देवनाथ मुँह लटकाये चुपचाप सुनते रहे – टट्टी के बारे में, पेशाब के बारे में, भूख के बारे में घुटना और रीढ़ के दर्द के बारे में साँस फूलने के बारे में..... देवनाथ या तो सुन रहे थे या बड़े गौर

[1] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 204

[2] बीसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध: हिन्दी कहानी: नरेन्द्रमोहन: पृ: 63

से सुन रहे थे| वे गुमसुम फर्श की ओर ताक रहे थे जहाँ चीटियाँ कतारे बनाने लगे गई थीं| उनके माथे की रेखाए थी क्यूंकि बाबा उन्हें कही से रोगी नजर नहीं आ रहे थे|"[1]

यहा देवनाथ के मन की हलचल के माध्यम से कहानीकार पूरी मध्यवर्गीय मानसिकता को उभरा है|

'वे तीन घर' में भी कहानीकार ब्यौरा देकर विपत राम की बदली हुई जिन्दगी का बोध कराता है| "मदन ने खड़े-खड़े ड्राइंगरूम का जायजा लिया..... बैठक छोटी साफ़ सुथरी और अच्छी थी| उसके आगे एक छोटा सा लॉन था जिसमें दो बेंचे पड़ी थी और जो खिड़की से दिखाई पड़ता था|"[2]

'कविता की नई तारीख' कहानी में भी सानू और रेखा की बातों के माध्यम से कई ब्योरों की सहायता से कहानी को आगे बढ़ाया गया है|

काशीजी ने कही-कही कहानीयों में अनावश्यक ब्योरों को देकर कथानक को विस्तृत करने का काम भी किया है| 'अपना रास्ता लो बाबा' इसकेलिए एक अच्छा उदाहरण है| 'डाइनिग हाल' में कुर्सियों पर बैठकर बच्चे किताब पढ़ रहे थे – "गर्मी का मौसम था| एक पेड़ पर मैना बैठी थी|"[3] 'बच्चे किताब पढ़ रहे थे' जिससे पूरे वातावरण का बोध तो मिल जाता था पर किताब की पंक्तियों को सुनाने की आवश्यकता नही थी| जो भी हो ब्योरों का प्रयोग करके कहानीकार ने रचना के माहोल को पूरी तरह से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया हैं|

---

[1] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 307-308

[2] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 273

[3] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 308

पांचवाँ अध्याय

भाषा

साहित्य का मूल माध्यम भाषा है जिस पर उसकी शक्ति, उत्कृष्टताऔर सप्रेषणीयता निर्भर रहते है| भाषा के माध्यम से रचना के आन्तरिक सत्यों का उद्घाटन होता है| रचनाकार शब्दों को सामान्य से अधिक अर्थ देकर अमूर्त संवेदनाओं को मूर्त कर देते हैं|

समकालीन कहानी ने जिन जीवन यथार्थ को अपना कथ्य बनाया उसकी भाषा भी उसी रूप में प्रस्तुत हुई है| जीवन से अधिक निकट होने के कारण भाषा सरल, सहज और प्रतीत होती है| भाषा के बारे में काशीजी का कथन है कि – "भाषा हमारी तरह एक जीवित सावयव प्रक्रिया. है, जिसके भीतर फैले हुए संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय वगैरह स्नायु –जाल की तरह है| यदि वे वाक्य में आएँ तो इनका निजी अर्थ और अस्तित्व होना ही चाहिए| उनका फालतू या बेजा इस्तेमाल कुछ वैसा ही अपराध है जैसा बिना जरूरत के किसी आदमी को कही खड़े रहने का हुक्म देना|"[1] उनके अनुसार भाषा का अपना एक निजी अस्तित्व होती है|

काशीजी अपनी भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए नए नए प्रयोगों को अपनाया है| उन्होंने कहानियों में भाषा का प्रयोग किया है जिससे जिन्दगी की खुशबु आती है – " काशीनाथ की भाषा में अतिपरिचित सौंधी जमीन जुडी हुई है, सच्चाई की खुशबु है इसके की रंग-गंध और स्तर है| काशीनाथ सिंह ने कहानी को एक खास तरह का मुँहफट और खर्राट

[1] आलोचना भी रचना हैः काशीनाथ सिंहः पृः 55

जबान दी हैं|"[1] उन्होने नाटकीय स्थितियों को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए नाटकीय भाषा का प्रयोग किया है| 'सुधीर घोषाल' में कहानी के मर्म का उद्घाटन करने से पहले और उसके पश्चात् वातावरण का वर्णन बहुत ही नाटकीय अंदाज में किया गया है| "दूसरी मंजिल से आते हुए ठहाके दिन भर गुनगुनाते हुए रिकॉर्ड..... वुलफी की गुर्राहट , बकरों के सिर, मुर्गों के उड़ते हुए घड|"[2] भाषा के इस नाटकीय रूप द्वारा कहानीकार पाठकों को कहानी का मर्म झेलने के लिए पहले ही तैयार कर लेते हैं|

'सदी का सबसे बड़ा आदमी' में भी उन्होंने भाषा के नाटकीय रूप को प्रस्तुत किया है| कहानी में नौजवान का शौक साहब से टकराने के पीछे कोई खास वजह तो नहीं था फिर भी यह विद्रोह उस व्यवस्था या समाज के स्वत्व हरण करने वाली प्रवृत्ति के खिलाफ है जो जनता को बेवकूफ बनाकर अपने इशारों पर नचाता है| यह विद्रोह कहानी के भीतर दिखाई देता है| भाषा की नाटकीयता से रचना में अंतनिर्हित इस सच्चाई को कहानीकार ने प्रकट किया है|

समकालीन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में कही न कही अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग खुले आम किया है| काशीजी भी अपनी कहानियों में इसका प्रयोग किया है| 'डाइनिंग रूम' 'ड्राइंगरूम' 'एयर कंडीशन' 'डीयंर' 'बोयस्कोप' सस्पेंड जैसे कई अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करके कहानी को अधिक जिवन्त बनाया है|

---

[1] वागर्थ - सितंबर 1998: पृ: 28

[2] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 210

पांचवाँ अध्याय

काशीनाथ सिंह की कहानियाँ ढेठ बनारसी बोली में लिखी गयी कहानियाँ हैं| उन की भाषा में मुहावरों का सुंदर प्रयोग तथा यत्र-तत्र अंग्रेजी एवं फारसी शब्दों के साथ-साथ भोजपुरी के शब्द भी देखने को मिलती हैं| इनकी कहानी 'सुबह का डर' में राय साहब बसंत की माँ को सान्त्वना देते हुए कहती हैं "ठीक, सब ठीक हैं| लेकिन यह फुक्का फाड़ना बंद करो|"[1]

"तो तुम्हारी क्योँ फट रही हैं?"[2]

कहानियों में बोलचाल की जीवन धर्मी गंध बरकरार रखने के लिए गालियों का भी प्रयोग किया है| जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा स्वतंत्रता की साँस ले रही है| 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' में उन्होंने भाषा को इस रूप में प्रयुक्त किया है| शैक साहब की तारीफ़ करते हई लोग कहती हैं – "लेकिन यह पक्का जान लो कि इतना रोबीला और खुशट मर्द कही ढूंढे न मिलेगा| जरा धनधनाती बुलन्द आवाज तो सुनो "ऐ साले, हरामखोर, चिरकुट|"[3] इस बोलचाल की भाषा का प्रयोग करके कहानीकार ने कहानी की भाषा को अत्याधिक प्रभावशाली बनाने की कोशिश की है|

काशीनाथ सिंह ने अपनी कहानियों में बड़ी सहजता से ठेठ बनारसी बोली में अपने भावों को व्यक्त किया है 'माननीय होम मिनिस्टर के नाम' कहानी का एक प्रसंग देखिए –

---

[1] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 108

[2] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 112

[3] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 223

"साले तुम तहसीदार ही, कोई तोप नहीं|"[1] इसी कहानी का दुसरा प्रसंग है –"ऊ कानूनगो है और इ क्या है चुटिया है|"[2] 'लाल किले के बाज' में भी काशीजी खुले आम गालियों का इस्तेमाल किया है – "साले, हरामी. चोट्टे. कमीने| अब दिन लद गये तुम्हारे लद गये|"[3]

इसी तरह की भाषा का प्रयोग करके कहानी को अधिक प्रभावशाली बनाया है|

काशिनाथ सिंह की भाषा की और एक विशेषता है कि ग्रामीण जीवन को लेकर जब वे कहानी लिखते हैं तब उसी जनपदीय भाषा का प्रयोग वे करते थे| 'कहानी सरायमोहन की' में उन्होंने जियपुन के निवासी बाबु-साहब के जरिए इसको प्रकट किया| "जाड़े में यही बड़ा ऐब है| रत ससुर लम्बी होती है, काटे नहीं कटती'..... पंडीजी, हम लोगों को दाना ही खाना चाहिए था| उसके घरम-अघरम को कोई बात न थी|"[4]

काशीनाथ सिंह नामक कहानीकार की एक और विशेषता है व्यग्यात्मक उक्तियों का प्रयोग| रचना में व्यंग्य का महत्व असंदिग्ध है क्योंकि "मानव-विचार और व्यवहार की व्यापक और व्यावहारिक परख वस्तुतः सहिष्णु व्यग्यों द्वारा ही होती है, क्योंकि रचना के रूप में व्यंग्य अंतर्विरोधों और विषमताओं को इंगित कर उसे संतुलन और सामंजस्य की

[1] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 156
[2] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 157
[3] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 198
[4] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 353

दिशा में अग्रसारित करते है|"[1] काशीनाथ सिंह अपनी कहानियों में जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त अंतर्विरोधों को व्यंग्य की तीखी मार से पर्दाफ़ाश किया है|

सबसे आधिक जीवंत और तीखा व्यंग्य उन्होंने राजनितिक परिवेश में व्याप्त भ्रष्टाचार पर किया है| राजनीति की आड़ में काम करनेवाली स्वर्थोन्मुख, व्यक्तिकेंद्रित प्रवृत्तियों तथा इनको प्रोत्साहित करनेवाले राजनितिक नेताओं को उन्होंने पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है| "माननीय होम मिनिस्टर के नाम" में उन्होंने रामप्रसाद मौर्या के जरिए ऐसे राजनितिक नेताओं पर व्यंग्य किया है जो "माननीय" और "मिनिस्टर" शब्दों के सही अर्थ भी नहीं जानते| कहानी में कास्तकार के जरिए कहानीकार मौर्या पर व्यंग्य किया है "हम तीन घंटे से आपको ढूंढ रहे है – कभी यहाँ कभी वहाँ| यहाँ छिपे बैठे है और ऊपर से माक्स मार रहे हैं..... इस तरह क्या घुर रहे हैं आप? समझते हैं हम डर जाएँगे?"[2] कहानीकार ने ऐसे स्थलों पर व्यंग्य की तीक्ष्णता को प्रकट करने के लिए तीखी भाषा का भी प्रयोग किया है|

राजनितिक नेताओं पर व्यंग्य करने के साथ-साथ उन्होंने मध्यवर्ग के जीवन पर भी व्यंग्य किया है| मध्यवर्ग की जीवन दृष्टि में जो संमझौता पर भी है वह व्यंग्य केलिए गुंजाइश पैदा कर देती है| व्यापक रूप से मध्यवर्ग का जीवन व्यंग्य का विषय रहा है| मध्यवर्गीय मानसिकता पर व्यंग्य करते हुए कहानीकार सोना के माध्यम से कहती हैं – "एक

[1] हिन्दी कहानी: प्रक्रिया और पाठ: सुरेन्द्र चौधरी: पृ: 99

[2] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 158

बात का जवाब दोगे?.....अगर बेईमानी बुरी चीज है तो ये चीजों क्या अच्छी लगरही है और अगर ये सचमुच अच्छी है तो बेईमानी और घुसखोरी कैसे बुरी है|"[1]

'लाल किले के बाज' में तथाकथित क्रन्तिकारी नायकों के नकाब उतारा है| व्यग्यात्मक दृष्टि से इस कहानी को हमारे सामने प्रस्तुत किया है| जादू नामक पात्र के जीवन की सभी बातों को क्रांति के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत किया है| "सन 1857 के ऐतिहासिक गदर के लगभग एक सौ पन्द्रह साल बाद मेरे जीवन की राज्य क्रांति घटित हुए|"[2] नायक अपनी सुहागरात में पत्नी सोना को दास कैपिटल भेंट कर्ता है| इसी तरह व्यग्यात्मक बातों के माध्यम से कहानीकार क्रन्तिकारी ढोंग रचानेवाले लोगों पर तीखा प्रहार किया है|

काशीनाथ सिंह जानवादी चेतना से जुडी कहानीकार होने के कारण उन्होंने अपनी कहानियों में भाषा की एक नयी संवेदना विकसित की है| उसमे सरलता और सहजता की व्यक्ति के लिए नयी संभावनाएँ जगायी है| उपर्युक्त विवेचन से यह स्पस्ट होना है कि काशीनाथ सिंह ने अपनी कहानियों में शिल्प के नवीन विधानों को उपस्थित कर कहानी को अधिक रोचक एवं आकर्षक बनाया है| इसलिए हम निसंकोच यह कह सकती हैं कि उन्हें इस दिशा में काफी सफलता भी प्राप्त हो चुकी है|

[1] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह पृ: 379

[2] कहानी उपखान: काशीनाथ सिंह: पृ: 195

पांचवाँ अध्याय

उपन्यासों की संरचनात्मक विशेषता

उपन्यास में लेखक अपनी अनुभूतीओं और भावों की अभिव्यक्ति शिल्प के माध्यम से करता है| उपन्यास के आंतरिक स्वरुप के साथ उनका बाहय स्वरुप भी मेल खानेवाला होना चाहिए| वैसे तो उपन्यास में अधिक महत्वपूर्ण कथ्य होता है परन्तु उस कथ्य या विषय के प्रस्तुतिकरण में उपन्यास का बाहय स्वरुप शिल्प सहायक भी होना चाहिए और लचिला भी| इसका मतलब यह नहीं कि बाहय स्वरुप या शिल्प का महत्व कम है| शिल्प की उपेक्षा उपन्यास की सफलता को क्षति पहुँचा सकती है| बीसवी सदी में उपन्यास का पारम्पारिक स्वरुप परिवर्तित हुआ है| आज शिल्प को भी कथ्य के सामन ही महत्व दिया जाने लगा है और शिल्प की चर्चा के बिना उपन्यास की समीक्षा अधूरी मानी जाने लगी है| आधुनिक उपन्यासकारों के लिए उपन्यास केवल मानव-जीवन का चित्र ही नहीं बल्कि “कैसे कहना है” यह भी उतना ही महत्वपूर्ण प्रश्न है| इसलिए आज का आलोचक भी उपन्यास को कलाकृति के रूप में परखना चाहता है, उसकी विविध रचना-शैलियों, भाषिक उपकरणों-बिम्ब, प्रतीक, संकेत आदि को सामने रखते हुए वह उपन्यास की शिल्पगत समीक्षा करता है|

उपन्यास मुलत: जीवन से जुडी है इसलिए उपन्यास की भाषा की भी अलग पहचान होती है| इसलिए प्रारम्भ में जब उपन्यास लिखे गए तब उनमें सीधी,सरल, इकहारी वर्णनात्मक भाषा से काम चलता था| पाठक कहानी या चरित्र के लिए उपन्यास पढ़ता था न कि भाषिक वैशिष्ट को पाने के लिए| इसलिए उपन्यास की समीक्षा में भाषा पर विचार बहुत कम होता रहा|

परन्तु आधुनिक उपन्यासों में हमें भाषा का जो नया रूप और नई भूमिका नजर आती है उस पर व्यापक विश्लेषण की आवश्यकता है|

उपन्यास में 'वर्णनात्मकता' तथा कहने के तरीके का अपना स्थान होता है| पर यह साध्य नही बल्कि साधन मात्र है| प्रमुख है अनुभूति का सम्प्रेषण| इसलिए आज का उपन्यास-लेखक भाषा के प्रति विशेष सजग है| अनुभव को संप्रेषित लायक मूर्त, पारदर्शी भाषा की तलाश वह करता है| इसकेलिए वह गद्य में काव्य-भाषा के उपकरण प्रतीक, विम्ब, संकेत आदि का प्रयोग करके भाषा में कसावर, तराशीपन, सूक्ष्मता और संवेदना क्षमता लाने का प्रयास कर रहा है| फलस्वरूप आज के हिन्दी उपन्यासों में भाषा के नये-नये तेवर, रंग-रूप, नजर आ रहे है| सिर्फ वर्णनात्मकता से ऊपर उठकर भाषा सृजनात्मकता के स्तर पर पहुँच गयी है|

भाषा के समान शैली के क्षेत्र में भी नए-नए प्रयोग उपन्यासकारों द्वारा हो रहे हैं| कथानक के अनुरूप रचना शैलियों का प्रयोग करते हुए लेखक अपनी "शैली के प्रति सजगता का परिचय दे रहे हैं| एक उपन्यासकार के रूप में काशीनाथ सिंह ने भी भाषा और शैली की प्रति जागरूकता दिखाकर अपने उपन्यासों को उच्च आयाम प्रदान करने की कोशिश की है| अपने औपन्यासिक कथ्य के अनुरूप ही भाषा शैली का चयन करके लेखक ने अपनी अभिव्यक्ति क्षमता को प्रमाणित किया है|

<u>शैली</u>

पांचवाँ अध्याय

काशीजी के उपन्यासों की संरचनात्मक विशेषता पर विचार करते समय पहले हमें इस पर नजर डालना चाहिए कि कैसे उपन्यासकार ने उपन्यास को प्रस्तुत किया है| उपन्यास प्रस्तुत करने की कई शैलियाँ प्रचलित हैं|

'अपना मोर्चा' उपन्यास को काशीजी पहले वर्णनात्मक ढंग से विक्षुब्ध विश्वविद्यालय की तीन चार घटनाओं को प्रस्तुत करती हैं| उनमें सामयिक स्थिति की जटिलता पूरी तरह से व्यक्त होती है| बाद में 'ज्वान' नामक पात्र के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था में राजनीति के घुसपैट को चित्रित किया गया है| लेखक स्वय 'ज्वान' के रूप में उपन्यास में प्रस्तुत होते हैं| वर्णनात्मक ढंग में प्रारंभ होकर उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में परिवर्तित होता है| एक प्रसंग से हमें यह मालूम हो जाता है| "मैं अपने को हर मोर्चो पर रखना चाहता हूँ और अंत में झुंझला उठता हूँ एक अबूझ घृणा मेरे बदन में भर जाती है और तब एक रास्ता बचता है मैं अपने भीतर की सारी घृणा को दोनों हांथों से उलीचना शुरू कर दूँ, उलीचता रहूँ और देखूँ कि घृणा के सिवा मैं क्या बचा पाता हूँ|"[1]

यह उपन्यास लिखते समय स्वयं काशीजी विश्वविद्यालय के अध्यापक थे इसलिए उनकी व्यक्तिगत छाप इस में जरुर हम देख सकते हैं| उन्होंने युवा आन्दोलन एवं उन लोगों के संघर्ष को अपने उपन्यास में प्रस्तुत किया है| इस उपन्यास ने वास्तविकता के लिए नए पहलू को हमारे सामने प्रस्तुत किया हैं|

[1] काशीनाथ सिंह: अपना मोर्चा: पृ:

पांचवाँ अध्याय

'काशी का अस्सी' संस्मरणात्मक शैली में लिखा एक उपन्यास है| इसमें पाँच लेख है| एक लेख तो डायरी शैली में भी लिखा गया है| डायरी शैली यानी जिसमें बुनावट सधन, कथ्य कसा हुआ ठोस और वैयक्तिक हो| इस संदर्भ में कुछ कामिक रिलीफ और कुछ जातिप्रथा को तार-तार करनेवाले प्रसंग है| जैसे शुक संवाद, महाभारत की जबालीकथा| जबाली कथा ब्रहमणवाद और जातिप्रथा को एकदम नंगा कर देती है| राजनीतिक मुस्कान के रहस्य की पर्तें खोलने के लिए मोनालिसा का जबरदस्त काव्यबिम्ब लाया गया है| लोकतंत्र की असलियत को उजागर करने के लिए जातक और पचतंत्र का खूब प्रयोग किया है| अस्सी के यथार्थ पात्रों के लेखक ने काल्पनिक नाम नहीं दिया सबको यथावत पूरी रसमयता में प्रस्तुत किया है| इन कथाओं की संस्मरण विधा में आवाजाही तो बनी रहती है किंतु इन्होने संस्मरण न होकर एक दृष्टियुक्त कथा का रूप धारण कर लिया है| वास्तविक पात्रों की जीवन उपस्थिति का बयान किया| यहीं काशी संस्मरण, कहानी कथा के प्रचलित गद्य रूपों का अतिक्रमण क्र उपन्यास को एक बिलकुल न्या रूप प्रदान करती हैं|

'रेहन पर रग्घू' में उपन्यासकार ने एक व्यक्ति की सोच को विवरणात्मक शैली में प्रस्तुत किया है| उपन्यास का मुख्य पात्र है रघुनाथ ही इस उपन्यास का केन्द्र है| उपन्यास की कथावस्तु का विकास उन की यादों के माध्यम से होता है| किसी भी जटिल विषय को प्रस्तुत करना उनका लक्ष्य नहीं| सम-सामयिक समस्याओं को चित्रित करने की कोशिश है| यादों से उपन्यास की शुरुवात होने पर भी उपन्यासकार ने पहले प्रकृति का वर्णन करके बारिश के मनमोहक दृश्यों का चित्रों किया है साथ ही कथावस्तु को आआगे बढ़ाया| उनका

लक्ष्य साधारण मध्यमवर्गीय परिवार का चित्रण करना था| उपन्यासकार ने वर्णनात्मक शैली को अपनाकर उपन्यास का सृजन किया है|

समस्या का वर्णन

पात्रों की सृष्टि भी उपन्यास्कार ने उपन्यास की कथावस्तु के अनुरूप की है| उपन्यास का लक्ष्य तो उस समय की भाषाई आन्दोलन के बारे में कहना था| लेकिन उपन्यास बनते बनते यह लक्ष्य बदल गया| युवा लोगों की मानसिकता, शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति की घुसपैठ, लोगों की मानसिकता, व्यापारिक मनोवृत्ति आदि का चित्रण भी किया जया है| मतलब की काशीजी ने उपन्यासों के पात्रों का रूपायन कथावस्तु के अनुरूप किया है| ज्वान नामक पात्र के माध्यम से गलत राजनीति एवं युवा लोगों के मानसिक तापमान का चित्रण किया है| इसके पात्र संख्या में कम है| लेकिन बखूबी ढंग से उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से इस क्षेत्र में बदलाव लाने की कोशिश की है| उपन्यासकार ने पत्रों के अनुकूल कथागति को आगे बढ़ाया है|

उपन्यासकार समस्याओं को पत्रों के संवाद एवं आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया है| 'अपना मोर्चा' उपन्यास में काशीजी ने 'ज्वान' नामक पात्र के माध्यम से समाज में व्याप्त अनीतियों के विरुद्ध आवाज उठाया है| आज की शिक्षा व्यवस्था के प्रति अपना द्वेष प्रकट किया है| देश में क्या-क्या हो रहा है इसकी ओर ध्यान न देकर 'समीक्षा के मानदण्ड पर एक नितिदीर्घ निबंध लिखिए या पुष्टिमार्ग का महत्व समझाते हुए अष्टछाप के कवियों का परिचय दीजिए|' इसी तरह की शिक्षा पद्धति से कोई फायदा नहीं| उन्होंने यह भी दिखाया

है कि राजनीति कैसे शिक्षा के जगत को बर्बाद करता है| ज्वान के आत्मकथन से उपन्यास आगे बढ़ता है|

समस्याओं के चित्रण करने में काशीजी की एक विशेष रुचि है| उनमें एक-एक उपन्यास का विषय अलग-अलग है| "काशी का अस्सी" में काशीजी एक प्रमुख समस्या को हमरे सामने प्रस्तुत करती हैं| आधुनिकीकरण मशीनीकरण, और अब भूमंडलीकरण और बाजाखाद ने हमारी सहज जीवन पद्धति को किस रूप में बदल दिया है उसका स्पष्ट उल्लेख उनके उपन्यासों में उपलब्ध है| वह न केवल मूल्यों के ह्रास की कारुणिक गथा है बल्कि पूरी सांस्कृतिक विद्धुपता को अस्सी के माध्यम से प्रस्तुत किया है| अस्सी के विभिन्न पात्रों, चरित्रों को अपने खिलन्दडी अंदाज में प्रस्तुत करता हुआ लेखक कभी प्रांतीय राजनीति और कभी पुरे देश की राजनीति पर अपनी दार्शनिक चिन्ता को दर्शाया है| देश के ज्वलन्त समस्याये जैसे चुनावों की दलगत राजनीति, जातिगत समीकरण साम्प्रदायिकता आदि पर व्यंग्यात्मक दृष्टि डाली गयी है| काशीजी यूनिवर्सिटी की छात्र राजनीति, पत्रकारिता, आरक्षण की राजनीति, बढती महँगाई, नेताओं की चुनावी राजनीति और आपादमस्तक भ्रष्टाचार में डूबी शासन व्यवस्था, बाबरी मस्जिद प्रकरण के पहले और बाद का समय परिवेश, सभी राजनितिक दलों की जातिगत प्रलोभन की बात, न्याय व्यवस्था तक खरीद डालने के हथकंडे वाराणसी आनेवाले विदेशियों का बनारस के गुरुओं द्वारा बेवकूफ बनाना, अस्सी का पुरातन से आगे बढ़कर साइबर कैफे की दुनिया तक पहुँचना, खले बजार के पर्दे के पीछे के रहस्य, ब्यूटी पार्लर, विदेशी वस्तुओं का उपयोग, फास्ट फ़ूड कलचर आदि को चित्रित किया है| अस्सी के पात्रों को अपने असली नाम से चित्रित किया है| उनका कोई

कालपनिक नाम नहीं दिया है| काशीजी ने यह भी दर्शाया है कि कस काशी का सांस्कृतिक पतन हो गया है|

'रेहन पर रुधू' की पात्र-सृष्टि की उपन्यास की कथावस्तु के अनुरूप है| इसके मुख्य पात्र रघुनाथ से सम्बंधित हैं अन्य सभी पात्र एवं घटना| माध्यवर्गीय परिवार को चित्रित करने के लिए रघुनाथ जैसे एक डिग्री कॉलेज के अध्यापक को चुन लिया गया है| उनके बेटों के माध्यम से युवा लोगों की मानसिकता का चित्रण भी किया गया है| सभी पात्र रघुनाथ, शिला, संजय, सोनल, सरला, धनंजय सभी ने अपनी भागीदारी की है|

सोनल के माध्यम से यह दिखाया गया है कि एक पढ़ी लिखी नौकरी पेशा स्त्री का अपने पति द्वारा शोषण कैसे किया जाता है| सरला के माध्यम से पढ़ी लिखी होने पर भी दहेज़ न देने के कारण शादी न हो पाने की स्थिति का चित्रण हुआ है| छब्बू पहलवान के माध्यम से दलितों के शोषण के यथार्थ को दर्शाया गया है|

"महुआचरित" में उपन्यासकार ने महुआ नामक युवती की मानसिकता एवं घुटन की चित्रित किया है| इसमें महुआ नामक युवती के माध्यम से मद्यवर्गीय समाज की सच्चाईओं को कथा-रस के साथ प्रस्तुत किया है| अस्सी साल के स्वतंत्रता सेनानी पिता की पुत्री है महुआ| पिता हमेशा समाज के लिए चिंतित थे| वे कभी भी बेटी के बढती उम्र के बारे में या उसके जीवन के बारे में सोचते तक नहीं| महुआ स्वयं सोचती है कि 'तुम्हे तो यह तक पता नहीं कि तुम्हारी बेटी की उम्र क्या है? उन्नीस या तीस, तुम जिन सहेलियों के बारे में पूछते हो, उनमें कितनी माँए बन चुकी हैं और कितनी पेट से हैं? तुम यह भी नहीं जानते हो कि न

दहेज दे सकती हो न मैं वैसी शादी कर सकती हूँ| फिर तुम खुलकर क्यों नहीं कहती कि बेटी तुम्हे जो करना है करो| हम साथ है तुम्हारे|"[1] शादी न कर पाने की स्थिति में तथा अपना परिवार न बना पाने के कारण महुआ की परेशानी बढ़ जाती है| वह "डिप्रेशन में चली गई थी| बजार से गुजरती तो कनखियों से इधर-उधर देखने लगती की लोग मुझे देख क्यों नहीं रहे है? कोई मेरी चाल का कमेन्ट क्यों नही पास आकर रहा है कि उस बच्चे में मुझे दीदी क्यों नहीं कहा? आंटी क्यों नहीं कहा?"[2] सभी समय महुआ परेशान थी| महुआ की देहासक्ति से विवाह तक की यात्रा और उसमें जागे अस्मिता बोध आदि को लेखक ने समुचित सामाजिक संदर्भों के साथ प्रस्तुत किया है| शादी के पहले का उन्मुक्त जीवन उसके परिवारिक जीवन को तबाह कर देता है| महुआ एक व्यक्ति के साथ शादी के पहले संबंध रखती थी यह जानकार पति उससे घृणा करता है| लेकिन पति दुसरे लड़की के साथ नाजायज संबंध रखने की बात की तो वह क्रोध हो जाती है|

'उपसंहार' उपन्यास काशीजी का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें उत्तर महाभारत की कृष्ण कथा को नए ढंग से प्रस्तुत किया गया है| इसमें कृष्ण के जीवन के अंतिम दिनों की कथा कही गयी है| उपन्यासकार का लक्ष्य मात्र गाथा को कहना नही बल्कि कृष्ण को एक साधारण मानव के रूप में चित्रित करना था| जिस कृष्ण के विराट रूप के सामने कुरुक्षेत्र की अक्षौहिणी सेना अपनी दृष्टि खो बैठी थी, वही कृष्ण अब आवश्य है| कृष्ण के मन में यह सवाल उठता है, 'आखिर क्या है जय का सच्चा अर्थ? क्या तमाम सफलताएँ अंत में

[1] काशीनाथ सिंह महुआचारितः पृः 14

[2] काशीनाथ सिंह महुआचारितः पृः 30

विफलता में क्यों निरोहित होती है? मानव जीवन का ऐसे प्रश्नों को नये सिरी से प्रकाश डाला है| चर्म सफलता में निहित है एकाकीपन का अभिशाप| इस प्रकार उपन्यास को एक दार्शनिक धरातल प्रदान करके काशीजी ने सामाजिक समस्या को पौराणिक संदर्भ में आंकने की कार्य किया है|

<u>भाषा</u>

साहित्य की प्रत्येक दिशा मे भाषा का महत्व सर्वोपरि है| भाषा ही वह माध्यम है जिसके सहारे लेखक पाठकों के अंतः करण में प्रवेश कर्ता है| साहित्याकार के लिए कलात्मक विचारों से साथ-साथ सुंदर भाषा का होना आवश्यक है| सुंदर भाषा से हमारा मतलब है, ऐसी भाषा जो पाठकों के ह्रदय पर अपना प्रभाव छोड़ सके|

काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में भाषा के विभिन्न पैटर्न एवं स्तर परिलक्षित होते है| जिस प्रकार के पात्र उपन्यास में आते हैं उन पात्रों के चरित्र एवं संस्कार के अनुसार भाषा में परिवर्तन आता है| इस विशाल संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में एक इकाई है| हर व्यक्ति को बोलने का एक अलग लहजा होता है| जिस लहजे में पात्र स्वयं को अभिव्यंजित करता है उससे उस व्यक्ति के भाषिक संस्कारों का पता चलता है| पात्रानुरूप भाषा में भी परिवर्तन सहज रूप में देखा जा सकता है|

काशीजी में अपने उपन्यासों में भाषा के विशिष्ट रूपों का प्रयोग किया है| “अपना मोर्चा”, “काशी का अस्सी”, जैसे उपन्यास जटिल विषयों का उद्घाटन करने वाले है| इसके बाद के तीन उपन्यास हैं| “रेहन पर रग्घू”, महुआचरित”, “उपसंहार”|

पांचवाँ अध्याय

किसी भी देश या अंचल की पहचान वहाँ की भाषा, वेश-भूषा और गन्ध से होती है| बनारस एक कास्मोपालिटन नगर है| प्रत्येक मोहल्ले की अपनी भाषा है| अस्सी का गन्ध भांग है| उसकी भाषा का बुनियादी शब्द भोसड़ी है| चुतिया यह गाली भी और लाड प्यार भरा शब्द भी 'गुरु' वहाँ की नागरिकता का सूचक है| अस्सी का उत्पन्न लोक प्रिय शब्द है – 'चुतिया'| इसके आलवा "काशी का अस्सी' में भोजपुरी क्षेत्र के गाँवों के भूले-बिसरे शब्दों और मुहावरों ले उपन्यास को ताजा बना लिया गया है| काशी में गालियाँ, गालियाँ न रहकर बात-बात में कभी-कभी अपनी सहज उपस्थिति जता देती हैं| इसमें पाप-बोध, अश्लीलता या संकोच का कोई स्थान नहीं| इसमें काशी के सामान्य लोगों की भाषा का प्रयोग किया गया है| 'अपना मोर्चा' उपन्यास में विषय तीव्र होने के कारण भाषा में एक तीखापन आ गया है| लेकिन "रेहन पर रुधू' उपन्यास में समकालीन समस्या को दर्शाया गया है| इस उपन्यास में काशीजी ने अपने मस्तमौले फक्कड अंदाज एवं अलग भाषा प्रयोग के माध्यम से उपन्यास को जीवंतता प्रदान की है| पाठक उपन्यास की जीवत घटनाओं के साथ सहज ही बंध जाते है और परिस्थितियों की विडंबना और त्रासदी को महसूस कर लेते है| यही उपन्यास की सफलता और शक्ति है|

महुआचरित में काशीजी ने सरल एवं प्रतीकात्मक ढंग से उपन्यास को आगे बढ़ाया है| छत को एक सहेली के रूप में चित्रित किया है| सरल बात की सरल भाषा में प्रस्तुत करने में उनका बड़ा हाथ है| 'उपसंहार' उपन्यास का कथ्य तो पौराणिक है| कृष्ण के जीवन के अंतिम दिनों को आधार बनाकर इस उपन्यास का सृजन किया गया है| काव्यात्मक एवं वर्णनात्मक भाषा के द्वारा द्वारका का मोहक रूप प्रस्तुत किया गया है|

पांचवाँ अध्याय

"उस पार धुन्ध में डूबी हुई द्वारका, इस पार हरे हरे जंगल का अनन्त विस्तार, बीच में पश्चिमी सागर की उछलती-कूदती खाडी, जंगलों का विस्तार जहाँ खत्म होता है, वही से शुरू होता है रेट का मैदान| वह मैदान जंगल से उतरता है और थोड़ा चलकर समुन्द्र में गम हो जाता है|"[1]

काशीजी अपने पाँचों उपन्यासों में भाषा का जो रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है उससे हम उनकी भाषा, शैली एम शिल्प की पकड़ को समझ सकते हैं| भाषापरक विशिष्टता सचमुच स्रुजनातामकता की स्तरीयता को घोषित करने वाली ही है|

काशीनाथ सिंह के संस्मरण: शैली गत विशेषतायें

प्रत्येक संस्मरणकार की अपनी निजी शैली होती हैं, जिस के द्वारा उसमें कृतित्व, विचार एवं सौन्दर्यबोध की वृत्ति का आभास मिलता है| लेखक अपनी बात अपने ढंग से पाठकों के सामने रखता है| काशीनाथ सिंह का संस्मरण 'देख तमाशा लड़की का, एवं गुरुदेव को अंग: उर्फ़ बुढवा मंगल में वृत्तान्त शैली, विवेचन शैली, उद्बोधन शैली, हास्य व्यंग्य शैली, वार्तालाप शैली, बिम्ब एवं प्रतीक शैली है| उन्होंने पारंपरिक शैली का प्रयोग किया है लेकिन संस्मरणकार के रूप में उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हास्य-व्यंग्य, कटूक्तियाँ और प्रहारात्मक बिम्बधर्मी संकेतों की रचना| काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में गजब की पर्यवेक्षण-क्षमता परिलक्षित होती है| वरिष्ठ चरित्रों के अंकन करते वक्त भी पर्यावेक्षण शैली

[1] काशीनाथ सिंह उपसंहार: पृ: 9

विशेष का प्रयोग कियस गया है| अपने शिष्यों का आकलन भी उन्होंने बड़ी बारीकी एवं मार्मिकता से किया है|

काशीनाथ सिंह के संस्मरण साहित्य में व्यंग्य के विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं| काशीजी समकालीन साहित्यकारों के पाखण्ड को देखते हैं और ऐसे पाखण्डी साहित्यकारों पर धारदार छेड़ने से वे हिचकते नहीं| साहित्यिक संगोष्ठी में लेखक को जिन कटु अनुभवों का सामना करना पड़ता है उन अनुभवों को लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली में दिखाया है – " मुझे वहीँ पता चला कि विजयमोहन के पास भी अब एक दिल हो चला है जो 'इनकम टैक्स आफिसर' गोविन्द मिश्र के फ्रिज में बोतल की शक्ल में विराजता रहता है|"[1]

काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में जहाँ व्यंग्योक्तियों की भरमार है, वहीँ पर हास्य-रस भी देख सकते हैं| देख तमाशा लड़की का में शुरुआत से लेकर अंत तक यह संस्मरण अत्यंत रोचक तथा मजेदार बन पड़ा है| इस संस्मरण के प्रत्येक अनुच्छेद, प्रत्येक वाक्य यहाँ तक कि शुद्ध-शुद्ध में हास्य व्यंग्य की निर्मित हुई है|

काशीजी के संस्मरणों में एकरसता देखने को नहीं मिलती बल्कि आदि से अंत तक विषयवस्तु रूप बुनावट, भाव आदि में विविधता पायी जाती है| इस दृष्टि से काशीनाथ सिंह के संस्मरण हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक महत्व रखने वाले हैं| अतः यों कह सकते हैं कि काशीनाथ सिंह के संस्मरण 'ऐतिहासिक दस्तावेज' बन गए हैं|

<u>संस्मरण : भाषा-शिल्प-शैली</u>

[1] काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ : 128

पांचवाँ अध्याय

साहित्य की प्रत्येक विधा में भाषा का महत्व है| भाषा ही वह माध्यम है जिसके तहत लेखक पाठकों के अन्दर तक प्रवेश करता है| साहित्यकार के लिए कलात्मक विचारों के साथ साथ उपयुक्त शब्दों एवं सुन्दर भाषा का होना आवश्यक है| ऐसी भाषा जो पाठकों के हृदय पर अपना प्रभाव छोड़ सके| कथाकार काशीनाथ का संस्मरण साहित्य इस बात का दस्तावेज है| उनके संस्मरण इतने रोचक एवं लोकप्रिय बन जाने का प्रभाव कारण उनकी भाषा सहिली है|

भाषा वैशिष्ट्य

उनके के संस्मरणों में जितने पात्र आये हैं उन के चरित्र, संस्कार, एवं आचार विचार अलग अलग है उसी के अनुसार भाषा में परिवर्तन हुआ है| इनके संस्मरणों में भाषा का सहज एवं परिवर्तनशील रूप दिखाई देता है| पात्र विशेष के भाषाई संस्कारों के अनुरूप भाषा रूपायित हुई है| आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी पर लिखे गए संस्मरण में भाषा का क्लासिकल रूप सहज ही दृष्टिगत होता है| द्विवेदी जी के व्यक्तित्व के अनुरूप संस्मरण की भाषा भी उस व्यक्तित्व की गरिमा को रूपायित करने वाली है| शुरू में ऐसा लगता जैसे पंडित जी मंत्र बुदबुदा रहे हैं – मंद और गंभीर स्वर में! धीरे-धीरे वहाँ से उनका मनुष्य गायब हो जाता है नज़र आने लगता हिलौरे लेता हुआ एक अकुतोभय अगाध सागर-विश्व का सारा ज्ञान और भूमंडल का सारा रहस्य और ग्रहों की टिमटिम जिज्ञासा और जंगलों की निराली हरियाली और मनुष्य की निश्चल उन्फुल्लता समेटे हुए|"[1]

[1] काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ : 19

पांचवाँ अध्याय

काशीजी के संस्मरण की भाषा शैली जहाँ एक ओर संजीदगी एवं आभिजात्य से मुक्त है वहाँ इसकी ओर प्रसंगानुरूप स्थानीयता भी उसमे आ गई है| स्थानीयता की उपस्थिति के कारण भाषा में जीवन्तता आ गयी है| बनारस के लोकजीवन, लोक संस्कृति लोक संस्कारों को उजागर करनेवाले शब्दों के कारण भाषा में एक प्रकार की रागात्मकता एवं आत्मीयता का भाव निहित है| काशीजी जब बनारस के मुहल्ले अस्सी-चौराहा की सामान्य जनता का चित्रांकन करते हैं तब उनकी भाषा में मस्ती का भाव भरा हुआ दीख पड़ता है| अश्लील लगने वाली गालियों का भी अनायास प्रयोग उसमें होता है| अगर कोई भद्रजन इस संस्मरण को पढ़कर भला-बुरा मान ले तो इसमें लेखक का कोई दोष नहीं क्योंकि लेखक ने तो पहले ही चेतावनी दे रखी है – "मित्रों यह संस्मरण वयस्कों के लिए है, बच्चों और बूढों के लिए नहीं और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई का रिश्ता है| जो भाषा में गन्दगी, गाली, अश्लीलता और जाने क्या-क्या देखते हैं और जिन्हें हमारे मुहल्ले के भाषा विद 'परम' (चूतिया का पर्याय) कहते हैं, वे भी कृपया इसे पढ़कर अपना दिल न दुखायें|"[1]

समाज में प्रयुक्त होनेवाले किसी भी शब्द को हम अश्लील, गलत अथवा त्याज्य नहीं कह सकते| विभिन्न बोलियों में ऐसे शब्दों का उपयोग होता है| समाज के प्रत्येक अंग में चाहे वह शहर हो, क़स्बा हो या गाँव ऐसी शब्दावली का प्रयोग अपनी सहजता में स्वाभाविक है|

[1] काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ : 157

पांचवाँ अध्याय

काशीनाथ जी जब अस्सी चौराहे की सामान्य जनता को लेकर 'देख तमाशा लड़की का' संस्मरण फिर 'संतों के घर में झगरा भारी' जैसा कथा-रिपोर्ताज लिखते हैं तब उसमें भी एक आतंरिक रागात्मक भाव विद्यमान होता है| इन दो लेखों से पता चलता है कि लेखक लोकजीवन की सहज भाषा शैली के कितने निकट है| अच्छे और बुरे को मिलकर संशिलष्ट और समग्र देखने पर एक यथार्थवादी लेखक ऐसे शब्दों के प्रयोग के लिए विवश हो जाता है – जो सामान्य जन की दिनचर्या में शामिल होते हैं, भले शिष्टजनों के लेखन में वे अनुपस्थित हों|

संस्मरण विधा के पात्र वास्तविक जगत के पार होते हैं| काशीजी के संस्मरणों के ज्यादातर पात्र वे व्यक्ति हैं जिनसे हिन्दी पाठक भली-भाँती परिचित हैं| इसीलिए संस्मरण लेखन का काम कहानीकार-उपन्यासकार की अपेक्षा अधिक महीन एवं चुनौतीपूर्ण होता है| काशीनाथ सिंह के संस्मरणों के ज्यादातर पात्र जीवित व्यक्ति ही रहे हैं|

उन के संस्मरणों से संवादों का विशेष महत्व है| संवादों के माध्यम से लेखक मात्र व्यक्ति से परिचित नहीं कराता बल्कि उन की चारित्रिक विशेषताओं की ओर भी संकेत कराता है| इस संदर्भ में रामजी सिंह का उदाहरण दृष्टव्य है – "उन्होंने पूछा – 'वे लाल जी! हम तुझे पढाए, जो-जो नहीं आता था, तुझे, सब बाताये, लिखाए, रटाये, तू पास हो गया, हम कैसे फैले हो गए|' लाल जी बोले – गुरु, ऐसा है कि आप जो पढाए, वह ओ हम पढ़े ही| बाकी आपकी चोरी-चोरी भी कुछ पढ़े थे|"

उन्हें उसके उत्तर से संतोष नहीं हुआ| मुझसे पूछा – 'अंदाजा लगाओ तो जरा! क्या बात हो सकती है? इसमें अंदाजा लगाने जैसी कोई बात नहीं थी! 'ने', 'में', 'का', 'के', 'पर', 'से' आदि को वे फालतू और बेमतलब का सझते थे! सीधे-सीधे वाक्य में अड़ंगेबाजी के सिवा और कोई काम नहीं नज़र आता था इनको| लेकिन यह बताता तो लत खाता|"[1]

उपर्युक्त संवादों से रामजी सिंह के वार्तालाप शैली का पता चलता है| बेलाल जी, 'लिखाए', 'रटाये', 'कैसे ये' कुछ ऐसे शब्द है जो रामजी सिंह की भाषा के पूरबियेलहजे को दर्शाते हैं| पाठक इन वाक्यों-शब्दों के सहारे स्मरणीय व्यक्ति के भाषिक संस्कारों को जान लेते हैं|

अगर कोई पात्र विशेष ग्रामीण लहजे या अनपढ़ पात्र है तो उसकी भाषा-शैली भी आभिजन्य वर्ग से अलग और अनपढ़ होगी| अस्सी चौराहा के तन्नी गुरु की भाषा इसका उदहारण है – "तुम उस दिन गोपाल की दूकान पर मंडल-मंडल काहे चिल्ला रहे थे? .....तुम्हें याद है न! जब उस विपिया भोसड़ी के हार जगह से दुरदुराया और लतियाता जा रहा हो तो यही अस्सी भदैनी है फकीर है, देस की तकदीर है! और ससुरा दिल्ली गया तो हमारे ही उसमे डंडा कर दिया!"[2]

[1] काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ : 160

[2] काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ : 174

पांचवाँ अध्याय

सामान्य जनता के संवादों में जो चुलबुलापन, हास्य-व्यंग्य, जिन्दादिली है तो नामवर सिंह, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, त्रिलोचन, धूमिल जैसे पात्रों के संवादों में संजीदगी, शिष्टता शालीनता अभिव्यक्त हुई है|

काशीजी भाव के अनुसार भाषा का प्रयोग करता है| इसीलिए उनकी भाषा भावानुसारणी भाषा है| उसमे पात्रों, प्रसंगों के अनुसार आभिजत्य भाषा शैली, मध्यवर्गीय भाषा-संस्कार शैली और निम्नवर्गीय फक्कड शैली का प्रयोग मिलता है|

शब्दों के प्रयोग में भी काशीजी माहिर है| काशी जी ऐसे गद्य-लेखक हैं जो बखूबी जानते हैं कि कौन-सा शब्द किस जगह अपनी सार्थक अर्थ ग्रहण कर सकता है| विवेच्य संस्मरणों में विविध प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है| तत्सम, तद्भव, देशज, अंग्रेजी, उर्दू-फ़ारसी शब्दों के प्रयोग से एक समन्वय एवं संतुलन देखा जा सकता है|

वे अंग्रेज़ी शब्दों का देशीकरण तो अनेक जगह पर हुआ है| एक वाक्य है – "मैंने देखा है धूमिल अकेला शख्स है जो मुझे एक समीक्षक का भाई नहीं, एक सीरियस लेखक समझकर मिलता है और अपनी इस मुश्किलों और समस्याओं को 'शेयर' करना चाहता है|"[1]

संस्मरणों में ऐसे बहुतेरे वाक्यांश मिलेंगे जहाँ पर अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों का सटीक उपयोग हुआ है| यथा

'उसका मुड थोडा अपसेट हो जाता'

[1] काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ :

‘कहानियों का नेचर थोडा दूसरा है|”

घाटो पर जीने और रहने वाली पब्लिक परेशान”

‘तत्सम शब्दों का प्रयोग भी संस्मरणों में बहुत कम देखने को मिलता है| संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग काशीजी स्मरणीय व्यक्ति के अनुरूप करते है| द्विवेदी संबंधी कुछ वाक्यांश देखिए –

“सफ़ेद मूँछों के नीचे ईष्यत मुस्कान या अनायास निरछलहँसी’

धीरे-धीरे वहाँ से उनका मनुष्य गायब हो जाता है नजर आने लगता हिलोरे लेता हुआ एक अकुतोभय अगाध सागर|”

संस्मरणों में उर्दु-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है –

‘अजीब दीवानगी का माहोल था उन्हें देखने सुनने के लिए’

लेकिन धूमिल की हालत मुझसे ज्यादा खस्ती थी|”

काशीजी विभिन्न भाषाओं के शब्द अपनाते हैं इन शब्दों की ध्वनी पाठक सहज ही समझ लेते हैं| मुहावरेदार भाषा का प्रयोग भी किया गया है|

‘विजयमोहन ढेपी मार देते है|’

'इस पर काँव-काँव मचा ही था कि किसी ने अखबार का दूसरा पन्ना दिखाते हुए कहा|'

'अकनु भवन में त्रिलोचन से अपना चिमटा गाद रखा था|"

<u>नाटक</u>

विश्वयुद्ध ने मनुष्य के जीवन को बर्बाद कर डाला था| यही से असंगत नाटकों के निर्माण हुआ| असंगत नाटक व्यक्ति के भीतरी यथार्थ को व्यक्त करते हैं| असंगत नाटक परंपरा का पुनः मूल्यांकन करता है| जीवन की विदपताओं और विकृतियों को अपना आधार बनाकर असंगत नाटक लिखे गए थे| इसे व्यक्त करने के लिए नए प्रतीकों को अपनी रचनाओं में प्रयोग किया गया है| असंगत नाटकों में कथ्य बड़ा सूक्षम होता है| उसमें कार्य व्यापार अधिक रहता है| कथ्य में कोई क्रमबद्धता नहीं होती| इसके चरित्र विघटित और सामान्य होते है| इनमे बीमार, ऊबे, थके-हारे, विक्षप्त चरित्रों को विशेष स्थान दिया जाता है| असंगत नाटककार पारंपरिक भाषा को महत्व नहीं देते| इनकी भाषा अधिक महत्व देते है| इनकी रंग सज्जा बिलकुल साधारण तथा असम्बद्ध होती है| इनमें प्रतीकात्मक मंच को अधिक महत्व दिया जाता है|

काशीजी का 'घोआस' नाटक पहाड़ी क्षेत्र और उसके आस-पास के परिवेश को रेखांकित करता है| जीवन की निर्थकता एवं सत्रास को चित्रित किया गया है| याने कि नाटक के पूजी तथा नाजी – सब अपनी-अपनी समस्याओं से घिरे हुए हैं| इसे व्यक्त करने के लिए एक प्रतिक के रूप में 'कोई' को स्वीकार किया गया है| 'कोई' है जिसे सभी अपने हित

के लिए प्रयोग करते हैं लेकिन वह कौन है यह कोई नहीं जानता| इसका कथ्य में कोई क्रमबद्धता नहीं| 'घोआस' हमारी अकर्मण्यता को बड़े सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है| इसकी प्रतीकात्मकता बहुत ही सटीक है| असंगत नाटक के सभी तथ्य इसमें हम देख सकते हैं| इसमें कोई व्यवस्थित कथा नहीं है न कोई चरमोत्कर्ष| भीतर से कथा-सूत्र काफी कसा हुआ है| इसका संवाद अधिक गतिशील नहीं| यह नाटक बहुत 'स्लो' चलता है| इसमें कार्यव्यापार कम और कथोपकथन अधिक है| नाटक खुले मंच का है और तीनों अंकों का रंग स्थल भी एक ही है|

<u>आलोचना</u>

आलोचना भी रचना है' काशीजी की आलोचनात्मक पुस्तक है| इसमें अलग-अलग मुद्दों को लेकर अपने समय को समझाने और समझने की कोशिश की गयी है| अन्य आलोचनात्मक रचनाओं की तरह अपनी पाखण्डता को चित्रित करने का कार्य नहीं किया गया है| उन्होंने मूलतः एक कहानीकार होने के कारण कहानी कहने के अन्दास में इन लेखो का सृजन किया है| सरल भाषा एवं प्रयोगों के माध्यम से अपनी साहित्यिक मान्यताओं को चित्रित किया गया है|

कुल मिलकर हम कह सकते हैं कि काशीजी की रचनाएँ कथ्य के स्तर पर ही नहीं शिल्प के स्तर पर भी अपनी अलग अहमियत को बनाए रखने वाली हैं| उन्होंने अपने समय के नब्ज को पकड पाने तथा प्रभावात्मक ढंग से सृजनात्मक स्तर पर उन्हें प्रस्तुत करने में काबिलियत पायी है| इस प्रकार काशिजी ने यहाँ आधुनिकता के संदर्भ में सृजन के क्षेत्र में

प्रवेश किया तो भी समकालीन संदर्भ में भी वे अपने सक्रिय सान्निध्य के साथ उपस्थित हैं, अपने को समकालीन साबित करते हुए|

उपसंहार

समाज निरपेक्ष साहित्य की प्रासंगिकता संदिग्ध है| साहित्य में सामाजिक समस्याओं का अंकन अनिवार्य है| आधुनिक हिन्दी साहित्य इसके लिए पर्याप्त प्रमाण हैं| भारतेंदु से हिन्दी साहित्य आम आदमी का साहित्य बनता है| प्रत्येक समय के साहित्य में इन समाज का यथार्थ अनावृत होता है| रचनाकार समज में वर्तमान विसंगतियों के खिलाफ आवाज़ उठाता है| सामाजिक परिवर्तित के लिए एक व्यापक जन जागरण का कार्य भी करता है|

काशीनाथ सिंह एक ऐसा साहित्यकार है जिन्होंने अपने समय की जटिल समस्याओं को चित्रित करते हुए उसके प्रति अपनी सृजनात्मक विद्रोही मानसिकता की व्यक्ति दी है| काशीनाथ सिंह समकालीन साहित्य के एक जाने माने हस्ताक्षर हैं| उन्होंने पूरी समग्रता के साथ समसामयिक समस्या को अपनी रचना में समेटने का प्रयास किया है|

समकालीन कहानी ने जिस प्रकार जीवन और समाज की गहराई में जाकर उसके यथार्थ को प्रस्तुत किया है वैसे ही काशीजी ने भी अपनी रचनाओं के समय की गहराईयों में गोटा लगाया है| उनकी सभी कहानियों में समकालीन दौर की सभी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं|

समकालीन कहानीकार अपने समय और समाज के प्रति बिलकुल जागरूक है| अतः उसकी प्रत्येक रचना अपने समय के जीवन का दस्तावेज़ है| समाज की बदलती हुई परिस्थिति का प्रभाव व्यक्ति के मन पर भी इ गहराई से पड़ता है| उसकी दृष्टि परंपरागत रास्ते से हट गई| जीवन मूल्यों की अवधारणा में परिवर्तन हुआ| मानवीय संबंधो के आधार बने मूल्य बुध पर भी भारी आघात हुआ|

काशीनाथ सिंह की कहानी 'अपना रास्ता लो बाबा' में देवनाथ ऐसा पात्र है जिनके लिए आंव से आयें बाबा मुसीबत बन जाते हैं और स्वार्थ मोह वश बाबा उन्हें बेमतलब का लगता है| वर्तमान समय में मनुष्य इतने व्यस्त है कि दूसरों के दुःख-दर्द में हमदर्दी जताने के लिए उन्हें फुरसत नहीं है| समकालीन कहानी में संबंधो में आयें इस तनावपूर्ण एवं जटिल

परिस्थिति का चित्रण उपलब्ध है| इस वास्तविकता का चित्रण काशीनाथ सिंह की कई कहानियों की उल्लेखनीय विशेषता है|

आम आदमी के आत्मसंघर्ष और छोटी छोटी इच्छाओं और उनकी पूर्ति के असते में आ पड़नेवाली कठिनाईयों को प्रस्तुत करते हुए उन के जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने में काफी सफलता प्राप्त हुई हैं| काशीनाथ सिंह ने भी अपनी कहानियों में आम आदमी के संघर्ष और उससे बाहर निकलने की छटपटाहट को प्रस्तुत किया है|

आधुनिक युग में राजनीति जीवन के हर कार्यरत है उसने मानव व्यापार की हर दिशा को प्रभावित किया है| आज का राजनीतिक परिदृश्य की सबसे बड़ी विसंगति राजनीतिक व्यवस्था का भ्रष्ट होता है| भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के विविध रूप समकालीन कहानियों में दर्ज हुआ है| इसके साथ राजनीतिक नेताओं के भ्रष्ट आचरण और स्वार्थपरता को लेकर भी कई कहानियों की रचना हुई है| काशीनाथ सिंह ने भी अपनी कहानियों में राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त अनीतियों और विसंगतियों का पर्दाफाश किया है|

काशीजी ने पूरी समग्रता के साथ सामयिक समस्या को अपनी रचना में समेटने का प्रयास किया है| उनके उपन्यासों में नये नये मुद्दों को गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया है| सच्चा साहित्य सत्ता एवं समाज की आलोचना करके विपक्ष की भिमिका निभाता है| आज कॉपरेट पूँजी की घुसपैठ ने मानव को मानव को मानव से अलग कर दिया है| युवापीढ़ी अपनी संस्कृति, सभ्यता, परंपरा को भूलकर आगे बढ़ रही है| इस सांस्कृतिक अज्ञता से बचने के लिए अपनी संस्कृति एवं परंपरा के प्रति सजग होना जरुरी है|

'अपना मोर्चा' उपन्यास में छात्र आन्दोलन को चित्रित करने के साथ राजनीति किस प्रकार शैक्षणिक संस्थाओं की पवित्रता को नष्ट भ्रष्ट करता है उस यथार्थ की ओर भी इशारा किया गया है| उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि मौजूदा शिक्षा पद्धति से हमारा कोई लाभ नहीं| काशीजी उपन्यासों के माध्यम से समकालीन राजनीति, अतीत की राजनीति और भविष्य की राजनीति के यथार्थों को भी प्रस्तुत किया है| इसी अर्थ में 'काशी का अस्सी' समकालीन राजनीति का दस्तावेज है| उन्होंने यह भी दिखाया है कि बाबरी मस्जिद ध्वंस,

जातिवाद आदि को मायना बनाकर कैसे लोगों को उल्लू बना रहे हैं| चुनाव के समय के करतूतों के माध्यम से आज की राजनीति के खोखलेपन को दिखाया गया है|

संबंधों में आया हुए बदलाव पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच का संघर्ष आदि 'रेहन पर रग्घू' का प्रमुख विषय हैं| भूमंडलीकरण एक ऐसा जाल है जिसमे सब के सब फंस गए हैं| कोई भी चीज़ इससे बचती नहीं मानवा आत्मकेंद्रित गया है| वे रूपए को सभी बातों का आधार मानकर जीते हैं| वे रिश्तों की पवित्रता को भूलकर पैसा कमाने के लिए अपना जीवन बिताते हैं| आज की दुनिया में ऐसे लोगों को हम हर तरफ सकते हैं|

रेहन पर रग्घू और काशी का अस्सी, अपना मोर्चा उपन्यासों में उन्होंने भूमंडलीकरण के समय के लोगों के बीच के संबंधों एवं विघटनों को चित्रित किया है| इसमें रिश्तों में आये हुए बदलाव, सामयिक जीवन मूल्यों का बदलाव, नारी समस्या, विज्ञान का दुष्परिणाम, बाज़ारवाद, दलित समस्या, दहेज़ समस्या आदि का भी चित्रण हुआ है| आज़ादी के बाद साल बीत जाने पर भी, बहुत सारे परिवर्तनों के बावजूद समाज में दुरव्यवहार आज भी बढ़ता जा रहा है| जितने भी पढ़े लिखे होने पर भी उसके मन में अपनी संस्कृति एवं के प्रति आदर का भाव बहुत कम है| दूसरों को समझकर उन की संवेदनाओं को समझकर ही मनुष्य को आगे बढ़ना चाहिए| विस्थापन, विकल्पहीनता, संबंधगत कचोट, राजनीतिक अपराधिक गठबंधन, मानवीयता की क्षति आदि की पहचान उनको रचनाओं में की गयी| वे आज के चकाचौंध भरी छलनाओं के अन्दर का स्याह यथार्थ है| उपन्यास में मानवता की जिस संकट की स्थिति की अभिव्यक्ति हुई है वह भले ही पुरे समाज में व्याप्त न हो पर आसन्न ही है| इसलिए कुछ प्रस्तुत किया गया है वे सब समकालीन संदर्भ के ज्वलंत यथार्थ ही हैं जिससे हर क्षण आम आदमी टकराता रहता है|

काशीनाथ सिंह मूलतः कहानीकार के रूप में जाने जाते हैं| जीवन के उत्तरार्द्ध में वे संस्मरण लेखन की ओर अग्रसर हुए हैं| काशीजी के कहानी साहित्य तथा संस्मरण साहित्य को ध्यानपूर्वक पढने से एक बात विशेष रूप से सामने आती है कि उनके लेखन एवं व्यक्तित्व के जो पक्ष कहानियों अभिव्यक्त नहीं हो पाए थे वे अपने संस्मरणों में अभिव्यक्त हुए हैं| उनके संस्मरण युगीन परिवेश से संबद्ध हैं| उसमे उन्हें विशेष सफलता मिली है| संस्मरणों

के अधिकार पात्र बनारस शहर के निवासी हैं| उनके संस्मरणों की अलग खासियत यह है कि उस में बनारस नगर की और विशेष कर अस्सी चौराहे की सामान्य जनता की सक्रिय भागीदारी देखि जा सकती है| अतः उनके संस्मरण जीवंत एवं यथार्थवादी निकले हैं|

रचना की सफलता में संरचना पक्ष का विशेष योगदान है| अतः समकालीन रचनाकार शिल्प के परंपरागत ढांचे को छोड़कर नये शिल्प पद्धति की तलाश करते हैं| काशी जी ने भी अपने भावों को अत्यधिक स्पष्ट रूप से प्रकट करने के लिए नए नए शिल्प प्रयोगों को स्वीकार किया है| विषय और भाव के अनुरूप भाषा का भी प्रयोग उन्होंने किया है|

निष्कर्षतः हम यह कह सकते है कि काशी जी निम्न जन-जीवन का साहित्यकार हैं| उन्होंने अपने समय को अभिव्यक्त किया है| वे एक ऐसा साहित्यकार है जिन्होंने जन जीवन की जटिल समस्याओं को चित्रित करते हुए सामयिक समस्याओं से पाठकों को सतर्क बनाने का कार्य किया वे मात्र समस्या को प्रस्तुत नहीं करते थे बल्कि उसके प्रति अपनी विद्रोही मानसिकता एवं आशावादी दृष्टि को भी अभिव्यक्त करते थे| समकालीन रचनाओं के ज़रिए समाज में व्याप्त असंगतियों का पर्दाफाश करके अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को जाहिर किया है| इसलिए हम निसंदेह कह सकते हैं कि समकालीन दौर के सफल संस्कृतिकर्मियों में काशीनाथ सिंह अगुआ हैं| वे आम आदमी के प्रति तथा विचारधारा के प्रतिबद्ध अवश्य हैं|

पत्रिकाएँ

1	अनुशीलन		
2	आलोचना	जनवरी/मार्च	1989
3	आलोचना	जुलाई/दिसंबर	2001
4	आलोचना	अक्तूबर/दिसंम्बर	2003
5	आलोचना	अप्रैल/जून	2002
6	आलोचना	अक्तूबर/दिसंम्बर	2004
7	आलोचना	जनवरी/मार्च	2005
8	आलोचना	अक्तूबर/दिसंम्बर	2008
9	कथन	जुलाई/सितंबर	2000
10	कथन	नवंबर	2003
11	कथन	अप्रैल/जून	2005
12	कथन	जुलाई/सितंबर	2005
13	कथादेश	मार्च	2001
14	कथादेश	जून	2003
15	कथादेश	नवंबर	2003
16	कथादेश	मार्च	2005
17	कथादेश	सितंबर	2006
18	कथादेश	मार्च	2007
19	गगनांचल	अक्तूबर/दिसंम्बर	1996
20	गगनांचल	जनवरी/मार्च	2003
21	ज्योत्सना	सितंबर	1996
22	दस्तावेज	अप्रैल/जून	1986
23	दस्तावेज	अप्रैल/जून	2003
24	दस्तावेज	जुलाई/सितंबर	2001

25	दस्तावेज	अप्रैल/जून	2004
26	नई धारा	अक्तूबर/नवंबर	2006
27	नया ज्ञानोदय	मार्च	2004
28	नया ज्ञानोदय	मार्च	2005
29	नया ज्ञानोदय	अक्तूबर	2008
30	नया ज्ञानोदय	दिसंबर	2008
31	परिकथा	नवंबर/दिसम्बर	2006
32	परिकथा	जुलाई/अगस्त	2012
33	पक्षधर	जनवरी/अप्रैल	2008
34	भाषा	मार्च	1986
35	भाषा	जून	1998
36	भाषा	जनवरी/फरवरी	1992
37	भाषा	जनवरी/फरवरी	2001
38	भाषा	सितंबर/अक्तूबर	2005
39	भाषा	सितंबर/अक्तूबर	2008
40	वागर्थ	नवंबर	1998
41	वागर्थ	सितंबर	1998
42	वागर्थ	अप्रैल	1999
43	वागर्थ	जून	2002
44	वागर्थ	जुलाई	2002
45	वर्तमान साहित्य	सितंबर	1999
46	वर्तमान साहित्य	अक्तूबर	2006
47	वर्तमान साहित्य	जनुवरी/फरवरी	2006
48	वर्तमान साहित्य	मई	2006
49	वर्तमान साहित्य	दिसंबर	2007
50	समकालीन भारतीय साहित्य	अक्तूबर/दिसंबर	1995

51	समकालीन भारतीय साहित्य	जुलाई/आगस्त	1998
52	समीक्षा	अक्तूबर/दिसंबर	1987
53	समीक्षा	जनवरी/मार्च	1991
54	समीक्षा	जनवरी/फरवरी	1992
55	समीक्षा	नवंबर/सितंबर	1995
56	समीक्षा	जनवरी/मार्च	1997
57	समीक्षा	जुलाई/सितंबर	1999
58	समीक्षा	अक्तूबर/दिसंबर	1999
59	समीक्षा	जनवरी/मार्च	2001
60	समीक्षा	मई	2002
61	समीक्षा	जनवरी/मार्च	2004
62	समीक्षा	जनवरी/मार्च	2007
63	समीक्षा	जनवरी/मार्च	2008
64	साक्षात्कार	दिसंबर	1995
65	साक्षात्कार	नवंबर	1986
66	साक्षात्कार	मई	2002
67	साक्षात्कार	जून	2003
68	साक्षात्कार	अप्रैल	2005
69	साक्षात्कार	सितंबर/अक्तूबर	2006
70	साक्षात्कार	जून	2007
71	संग्रथन	फरवरी	1993
72	संग्रथन	जुलाई	1996
73	संग्रथन	दिसंबर	2007
74	संचेतना	मार्च	2000
75	संचेतना	मार्च	2003
76	संचेतना	सितंबर	2004

77	संचेतना	जून	2008
78	हंस	जनवरी	1999
79	हंस	फरवरी	1999
80	हंस	मार्च	1999
81	हंस	फरवरी	2000
82	हंस	सितंबर	2000
83	हंस	फरवरी	2001
84	हंस	जून	2002
85	हंस	जनवरी	2003
86	हंस	अक्तूबर	2003
87	हंस	जुलाई	2006
88	हंस	अप्रैल	2006
89	हंस	जनवरी	2007
90	हंस	मार्च	2007
91	हंस	अप्रैल	2008
92	हंस	जुलाई	2009
93	हंस	फरवरी	2010
94	हंस	मार्च	2010
95	हंस	अक्तूबर	2010
96	हंस	जनवरी	2011

संदर्भ ग्रन्थसूची

आधार ग्रंथ

1	अपना मोर्चा	काशीनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1972
2	आछे दिन पाछे गए	काशीनाथ सिंह वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2004
3	आलोचना भी रचना है	काशीनाथ सिंह किताब घर, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1996
4	उपसंहार	काशीनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2014
5	काशी का अस्सी	काशीनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2002
6	कहानी उपखान	काशीनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2009
7	घर का जोगी जोगडा	काशीनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 200
8	घोआस	काशीनाथ सिंह प्रतिमान प्रकाशन, नई दिल्ली

		प्रथम संस्करण 1984
9	महुआचरित	काशीनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2012
10	याद हो कि न याद हो	काशीनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1992
11	रेहन पर रुघू	काशीनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2008

सहायक ग्रंथ

1	आज की हिन्दी कहानी	विजयमोहन रचना प्रकाशन, इलहाबाद प्रथम संस्करण 1983
2	आज की हिन्दी कहानी और प्रतिक्रिया	मधुरेश सामयिक प्रकाशन, इलहाबाद प्रथम संस्करण 1971
3	आज का हिन्दी उपन्यास	डॉ. हेमराज कौशिक ललित प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1988
4	आधुनिक हिन्दी कहानी	गंगाप्रसाद विमल भारत मुद्रणालय दिल्ली प्रथम संस्करण 1978
5	आधुनिक हिन्दी का जीवन साहित्य	शांति खन्ना

		प्रभा प्रकाशन इलहाबाद प्रथम संस्करण 1986
6	आधुनिकता और मोहन राकेश	डॉ. उर्मिला मिस्र विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणासी
7	आठवें दसक के हिन्दी उपन्यासों में आधुनिक बोध	डॉ. शोभा देशपांडे चंद्रलोक प्रकाशन कानपुर प्रथम संस्करण
8	असंगत नाटक और रंगमंच	नरनारायण राय (सं) वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1981
9	उत्तर शती का हिन्दी उपन्यास	डॉ. एन. मोहनन जवहर पुस्तकालय मथुरा प्रथम संस्करण 2004
11	उपन्यास की शर्त	जगदीश नायारण श्रीवास्तव किताब घर प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 1993
12	उपन्यास स्वरूप और संवेदना	राजेन्द्र यादव वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1997
13	उपन्यास स्थिति और गति	डॉ. चन्द्रकांत बांदिवडेकर वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1993
14	कथासाहित्य के सौ बरस	(सं) विभूतिनारायण राय शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली
15	काशीनाथ सिंह का संस्मरणात्मक साहित्य	(प्र) संदीप लोलटीकर

विद्याप्रकाशन
कानपुर
प्रथम संस्करण 2005

16 कहानी नई कहानी — नामवर सिंह
लोक भारती प्रकाशन
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण 1966

17 कहानी कला विकास और इतिहास — डॉ. श्रीपतिशार्मा त्रिपाठी
नंदकिशोर एंड संस
प्रथम संस्करण 1962

18 कहानी की समाजशास्त्रिय समीक्षा — रमेश उपाध्याय
नमन प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1999

19 गद्य विन्यास और विकास — रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन
इलाहबाद
प्रथम संस्करण 1996

20 जाति धर्म और सांप्रदायिकता — शैलेन्द्र शैली
लोक जतन प्रकाशन
भोपाल
प्रथम संस्करण 2003

21 दलित चेतना साहित्य — रमणिका गुप्ता
नवलेखन प्रकाशन
हजारीबाग
प्रथम संस्करण 1996

22 दलित चेतना साहित्य एवं सामाजिक सरोकार — रमणिका गुप्ता
शिल्पायन प्रकाशन
उत्तर प्रदेश
प्रथम संस्करण 2002

23 दलित साहित्य का सौंदर्यशस्क्ष — ओमप्रकाश वाल्मीकी

24 दलित विमर्श — डॉ. नरसिह दास
चिन्तन प्रकाशन

		कानपूर प्रथम संस्करण 2007
25	नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर शब्दकार प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1978
26	नई कहानी संदर्भ और प्रकृति	देवी शंकर अवस्थी राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1973
27	बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध हिन्दी कहानी	डॉ. नरेन्द्र मोहन कादम्बरी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1996
28	बीसवीं शताब्दी का हिन्दी उपन्यास	विजयमोहन सिंह राजकमल प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2005
29	स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कहानी	(सं) डॉ. राजकुमार वर्मा राजकमल प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 1989
30	स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन	डॉ. भैरुलाल गर्ग चित्रलेखा प्रकाशन इलाहबाद प्रथम संस्करण
31	संस्मरण और संस्मरणकार	मनोरम शर्मा आराधना ब्रदर्स कानपुर प्रथम संस्करण 1988
32	स्मृतिचित्र	महादेवी वर्मा राजकमल प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 1973

33	समकालीन साहित्य चिन्तन	डॉ. रामदरश मिश्र प्रथम संस्करण 1986
34	समकालीन कहानी सोच और समझ	डॉ. पुष्पपाल सिंह आत्माराम एंड संस दिल्ली प्रथम संस्करण 1986
35	समकालीन कहानी की पहचान	नरेन्द्र मोहन प्रवीण प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 1978
36	समकालीन कहानी की भूमिका	विश्वंभरनाथ उपाध्याय स्मृति प्रकाशन इलाहबाद प्रथम संस्करण 1977
37	समकालीन रचना और आलोचना	(सं) रामस्वरूप द्विवेदी प्रतिभा प्रकाशन इलाहबाद प्रथम संस्करण 1988
38	समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि	सं) धनंजय अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहबाद प्रथम संस्करण 1970
39	सिलसिला	मधुरेश प्रथम संस्करण 1979
40	समकालीन कहानी न्या परिप्रेक्ष्य	पुष्पपाल सिंह सामयिक बुक्स नई दिल्ली प्रथम संस्करण
41	समकालीन कहानी उपन्यास	एन मोहनन वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2013
42	समकालीन हिन्दी कहानी	डॉ. ज्ञानवति अरोड़ा हिन्दी बुक सेंटर

नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1994
43 समकालीन हिन्दी कहानी डॉ. एन मोहनन (सं)
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 2007
44 समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास डॉ. अशोक भटिया
भावना प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 2003
45 समकालीन हिन्दी उपन्यास की आधुनिकता डॉ. प्रतिभा राय
हिमाचल पुस्तक भंडार
दिल्ली
प्रथम संस्करण 1992
46 समकालीन हिन्दी कहानी में समाज संरचना मोनिका हारित
श्याम प्रकाशन
जयपुर
प्रथम संस्करण 2001
47 साहित्य विधायें: पुनर्विचार हरिमोहन
प्रवीण प्रकाशन
दिल्ली
प्रथम संस्करण 1969
48 स्त्रीविमर्श ज्ञान की मीमांसा प्रभा खेतान
49 स्त्रीविमर्श का इतिहास राधाकुमार
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 2002
50 साहित्य सामाजिक संदर्भ शिवकुमार मिश्र
कला प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1977
51 समकालीन साहित्य चिंतन रामदरश मिश्र
ज्ञान गंगा प्रकाशन
नई दिल्ली

		प्रथम संस्करण 1995
52	भूमंडलीकरण और ग्लोबल मीडिया	जगदीश्वर चतुर्वेदी अनामिका पब्लिकेशन्स नई दिल्ली
		प्रथम संस्करण 2008
53	हिन्दी उपन्यास: आज	डॉ. के वनजा कोची विस्वविद्यालय कोची
		प्रथम संस्करण 2007
54	हिन्दी उपन्यास का इतिहास	गोपाल राय राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
		प्रथम संस्करण 2007
55	हिन्दी उपन्यास: जनवादी परंपरा	(सं) कुँवरपाल सिंह अजय बिसारिया नवचेतन प्रकाशन दिल्ली
		प्रथम संस्करण 2004
56	हिन्दी उपन्यास का विकास	मधुरेश सुमित प्रकाशन नई दिल्ली
		प्रथम संस्करण 1998
57	हिन्दी उपन्यास समकालीन परिदृश्य	महीप सिंह लिपि प्रकाशन नई दिल्ली
		प्रथम संस्करण 1980
58	हिन्दी उपन्यास में सामाजिक चेतना	डॉ. लालसाहब सिंह प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली
		प्रथम संस्करण 1998
59	हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना	कुँवरपाल सिंह हरिराम द्विवेदी पाण्डुलिपि
		प्रथम संस्करण 1989
60	हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धान्त	नरेन्द्र कोहली

वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1989

61 हिन्दी उपन्यास 1950 के बाद (सं) निर्माला जैन, नित्यानंद तिवारी
नेशसल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1987

62 हिन्दी कथा साहित्य में इतिहास डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग
अभिनव भारती प्रकाशन
इलाहबाद
प्रथम संस्करण 1974

63 हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यास और उपन्यासकार डॉ. अमर जासवाल
विद्या विहार
कानपूर
प्रथम संस्करण 1984

64 हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. नगेन्द्र
मयूर पेपर बैक्स
नोएडा
प्रथम संस्करण 1993

65 हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास डॉ. लक्ष्मिनारानयन लाल
साहित्य भवन लिमिडेट
प्रयाग
प्रथम संस्करण 1953

66 हिन्दी कहानी प्रक्रिया और पाठ सुरेन्द्र चौधरी
प्रथम संस्करण 1995

67 हिन्दी कहानी एक अंर्तयात्रा डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
गिरनार प्रकाशन
गुजरात
प्रथम संस्करण 1981

68 हिन्दी कहानी: एक अंतरंग परिचय उपेन्द्रनाथ अश्क
नीलम प्रकाशन
इलाहबाद
प्रथम संस्करण 1967

69 हिन्दी कहानी आठवाँ दशक मधुर उप्रेती

70	हिन्दी जीवन साहित्य सिद्धांत और अध्ययन	जागृति प्रकाशन अलीगढ प्रथम संस्करण 1984 भगवान शरण भरद्वाज भरतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 1960

PUBLIATION DETAILS

1. AJNEY KI SMRITHIYOM SE BUNA SAMSMARAN : “SMRITHI LEKHA” ISSN:2249_2844 ANUSEELAN JULY 2011
2. BARATEEYATHA KE SANDHARBH MEIN “OH AMERICA” ISSN:2249_2844 ANUSEELAN JANUARY 2012
3. KASHINATH SINGH KA SAMSMARAN SAHITHYA EK PARICHAY ISSN:2249_2844 ANUSEELAN